रामचरित मानस का प्रथम सोपान

बालकाण्ड

(मूल, व्याख्या एवं आलोचनात्मक प्रश्नोत्तर सहित)

टीकाकार

मिश्रीलाल डूसर, एम.ए., बी.एड

राजधानी प्रकाशन गृह

जयपुर

विशेष संस्करण] [मूल्य ३ ४

अनुक्रमणिका

(नोट—यूनीवर्सिटी परीक्षा में आये हुये सभी प्रश्न इस पुस्तक में उत्तर सहित दिये हैं।)

श्रीरामचरितमानस—वालकाण्ड

पाठ्य-क्रम मे निर्धारित अंश का सार

'रामचरितमानस' के 'वालकाण्ड का अंश जो द्वितीय वर्ष कला के पाठ्यक्रम मे निर्धारित है, केवल १८७ दोहे तक है। इस निर्धारित अंश का सार इस प्रकार है—

आरम्भ मे महाकवि तुलसी ने विभिन्न देवताओ की वदना कर 'मानस' की रचना का उद्देश्य 'स्वान्त. सुखाय' लिखा है। वे लिखते है—

'नानापुराणनिगमागम सम्मत यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा-
भाषानिबद्धमतिमञ्जुलमातनोति

तदनन्तर तुलसीदास ने गणेश, विष्णु, शिव आदि से प्रार्थना की है कि वे उन पर प्रसन्न हो। इसके वाद वे गुरु के चरण-कमलो की धूलि को प्रणाम करते हैं। सत्संग की महिमा का वर्णन कर वे ससार के सव जड-चेतन जीवो को 'सियाराममय' जानकर प्रणाम करते है। वे कहते हैं कि उनकी कविता गँवारु भाषा मे है और उसमे एक भी रस नही है, किन्तु वह राम के विमल यश से अंकित है, अत वह सज्जनो के द्वारा समादृत होगी।

राम-कथा आरम्भ करने से पूर्व तुलसीदास ने राम-नाम का महत्व प्रतिपादित किया है। राम सगुण भी हैं और निर्गुण भी। राम-कथा के आविर्भाव के सम्बन्ध मे तुलसीदासजी ने लिखा है कि इस कथा को सर्व-प्रथम शिवजी ने पार्वती से कहा, शिवजी ने ही वाद मे इसे काकभुशुण्डि को कहा और काकभुशुण्डि से यह कथा याज्ञवल्क्य ने सुनी और याज्ञवल्क्य ने इसे भरद्वाज मुनि को सुनाया और तुलसीदास ने इस कथा को अनेक वार गुरु के मुख से सुना। 'रामचरितमानस' की कथा सवादो के रूप मे चलती है और ये सवाद चार है—

(i) शिव-पार्वती-संवाद (ii) याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-सवाद (iii) काकभुशुण्डि-गरुड-सवाद और (iv) तुलसी जनता सवाद।

इस कथा का नाम 'रामचरितमानस' क्यो पडा क्योकि सर्वप्रथम यह कथा शकर के मानस मे उद्भूत हुई। शकर ने फिर अवसर पाकर इस कथा को सती को और बाद मे पार्वती को सुनाया। इसके बाद तुलसीदास ने 'मानस' शब्द का अर्थ मानसरोवर लेकर इसका मानसरोवर से रूपक बाँधा। इसके बाद तुलसीदास ने भरद्वाज-याज्ञवल्क्य के मिलन का सुन्दर वर्णन किया है। याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज के मन मे उत्पन्न हुए सदेह को दूर करने के लिए उन्हें शिव-पार्वती का संवाद कह सुनाया। उन्होंने कहा—

त्रेता युग की बात है। एक बार शिव सतीसहित अगस्त्य ऋषि के पास गये और वहाँ कुछ दिन ठहरे। उन्होंने वहाँ अगस्त्य से राम-कथा सुनी। उस समय राम सीता को खोजते हुए दडक वन मे विचरण कर रहे थे। लौटते समय शिव के हृदय मे राम-दर्शन की उत्कट लालसा उत्पन्न हुई। शिव ने कुसमय जानकर राम को अपना परिचय नहीं दिया और राम के दर्शन कर लिये। शिव को एक साधारण राजकुमार को प्रणाम करते एव पुलकित होते देख सती के मन मे सन्देह उत्पन्न हो गया। शिव ने सती के भ्रम को दूर करने की चेष्टा की, परन्तु सती का सदेह दूर नही हुआ। तब शिवजी ने सती से कहा कि 'तुम स्वय जाकर परीक्षा ले लो।' सती ने सीता का रूप धारण कर राम की परीक्षा ली और लौट आई तथा पूछने पर शिव से केवल यह कह दिया कि मैंने भी केवल आपकी तरह उन्हें प्रणाम किया। किन्तु शिवजी ने अपने ध्यान द्वारा सती ने जो चरित्र किया था, वह सब जान लिया। सती ने सीता का रूप बना कर परीक्षा ली थी, अत शिवजी ने मन मे निश्चय कर लिया कि वे अब सती के इस शरीर से भेंट नहीं करेंगे। सती ने भी अपना अपराध जान मन मे समझ लिया कि शिवजी ने उन्हें तज दिया है। कैलास पहुँच कर शिवजी ने एक वट-वृक्ष के नीचे समाधि लगाली। सत्तासी हजार वर्ष बीतने पर शिव ने समाधि भंग की। सती ने चरण-वन्दना की। शिव ने उन्हें अपने सामने आसन दे दिया और हरि-कथा कहने लगे।

उन्ही दिनो सती के पिता राजा दक्ष प्रजापति हुए। दक्ष ने एक बड़े यज्ञ

का आयोजन किया । उसने शिवजी तथा सती को छोडकर सबको आमन्त्रित किया । उसने अपनी सब अन्य लडकियो को भी बुलाया था । बिना बुलाये सती ने पितृ-गृह जाने की हठ ठानी । शिवजी ने अमगल की आशका से सती को अपने मुख्य गणो के साथ भेज दिया । किन्तु सती ने वहाँ पहुँच कर जब अपना और अपने पति का अपमान देखा, तब वह सहन न कर सकी और उसने योग-बल से अपने शरीर को भस्म कर डाला । शिवजी को जब यह समाचार मिला, तब उन्होने क्रुद्ध होकर वीरभद्र को भेजा । उसने जाकर यज्ञ का विध्वस किया और यज्ञ मे भाग लेने वाले देवताओ को यथायोग्य फल चखाया ।

सती ने देह छोडकर हिमाचल के घर मे मैना के गर्भ से जन्म लिया और पार्वती नाम पाया । नारद के उपदेश से पार्वती ने शिव को प्राप्त करने के लिए वन मे जाकर घोर तपस्या की । उसने सब कुछ त्याग दिया, यहा तक कि वृक्ष के सूखे पत्ते तक खाना छोड दिया, इसलिए उसका नाम 'अपर्णा' हो गया । उधर एक तारक नाम का ऐसा राक्षस उत्पन्न हुआ जिससे सब देवता हार चुके थे । तारक का वध केवल शिवजी के वीर्य से उत्पन्न पुत्र ही कर सकता था । किन्तु सती के मरने के बाद शिवजी समाधि लगा कर बैठ गये । देवताओ ने कामदेव को शिवजी की समाधि भग करने भेजा । कामदेव का बाण लगते ही शिवजी की समाधि भग हो गई, किन्तु क्रोध के मारे शिवजी का तीसरा नेत्र खुला और कामदेव भस्म हो गया । कामदेव की पत्नी रति जब विलाप करती हुई आई और शिवजी के चरणो मे गिर पडी, तब शिवजी ने उसे समझाया कि अब से उसका पति 'अनग' कहलायेगा और पूर्ववत् वह सब को व्यापेगा । द्वापर मे जब श्रीकृष्ण जन्म लेंगे, तब उनके पुत्र के रूप मे वह सशरीर अपने पति को प्राप्त करेगी ।

समाधि-भग होने के अनन्तर देवताओ ने शिवजी से पार्वती के साथ विवाह करने का अनुरोध किया । शिवजी ने सप्त ऋषियो को पार्वती की परीक्षा लेने भेजा । पार्वती परीक्षा मे सफल हो गई और उसका विवाह शिवजी के साथ सम्पन्न हो गया । अनेक प्रकार का दहेज लेकर शिवजी पार्वती के सहित कैलास पर आकर रहने लगे । बहुत दिन बीत जाने पर उनके

कार्तिकेय नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई जिसने तारक नाम के असुर का वध किया।

एक समय कैलास पर्वत पर शिवजी एक विशाल वट-वृक्ष के नीचे बैठे थे। पार्वती ने आकर शिवजी से पूछा कि जिस राम का नाम आप सदा जपा करते हैं, क्या वह दशरथ-सुत राम हैं या अन्य कोई ? पार्वती के सन्देह की निवृत्ति के लिए शिवजी ने उन्हें समझाया कि सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है। निर्गुण ही भक्त के प्रेम-वश सगुण हो जाता है। राम तो व्यापक ब्रह्म हैं, परमानन्द स्वरूप हैं, अनादि हैं, परमात्मा हैं, तब वे नर-शरीर धारण क्यों करते हैं ? इस पर शंकर ने पार्वती को समझाया कि राम के जन्म के अनेक कारण हैं और वे एक से एक विचित्र। शिव पार्वती से कहते हैं कि मैं तुमको काकभुशुण्डि और गरुड़ का संवाद सुनाता हूं, जिससे तुम्हें राम की अवतार-लीला का ज्ञान हो जायगा। "राम-जन्म के हेतु अनेका। परम विचित्र एक तें एका।"

(i) हरि के जय और विजय नाम के दो द्वारपाल थे। उन्होंने एक बार ब्रह्मा के मानस-पुत्रों को (सनक, सनन्दन आदि को) भीतर जाने से रोक दिया था। अत उन्होंने क्रुद्ध होकर उनको राक्षस बन जाने का शाप दे दिया। शाप का प्रमाण तीन जन्म के लिए था। अत: हरि ने अपने द्वारपालों के उद्धार हेतु शरीर धारण किया तीन बार—वराह का, नृसिंह का और राम का।

(ii) जलधर की पत्नी वृन्दा के शाप के कारण भगवान् को राम के रूप में अवतार लेना पड़ा।

(iii) नारद को एक बार मोह हो गया था। वह राजा शीलनिधि की कन्या विश्वमोहिनी को वरण करना चाहता था। हरि ने माँगने पर अपना हरि-रूप (बन्दर का रूप) नारद को दे दिया और स्वयंवर में जाकर विश्वमोहिनी को स्वयं वरण कर लाये। इस पर क्रुद्ध होकर नारद ने भगवान को शाप दे दिया—"जिस शरीर को धारण कर तुमने मुझे ठगा है, तुम भी वही शरीर धारण करो और तुम भी स्त्री के वियोग में दुखी हो।" भगवान ने नारद का शाप स्वीकार कर नर-तन धारण किया।

(iv) स्वायंभुव मनु तथा उनकी पत्नी शतरूपा को भगवान ने दर्शन

देकर वरदान दिया था कि वे उनके पुत्र रूप में जन्म लेंगे। स्वायंभुव मनु तथा शतरूपा अयोध्या के राजा-रानी बने और भगवान् स्वयं उनके पुत्र राम बने।

(४) राजा सत्यकेतु का पुत्र प्रतापभानु एक कपटी मुनि और कालकेतु राक्षस के चक्कर में फँस गया और ब्राह्मणों द्वारा उसे परिवार-सहित राक्षस बन जाने का शाप दे दिया गया। प्रतापभानु ने रावण के रूप में जन्म लिया। उसके तथा अन्य राक्षसों के अत्याचार से पीडित होकर देवताओं तथा पृथ्वी ने भगवान् से पुकार की और उनकी पुकार पर भगवान् ने अवतार लेकर असुरों का संहार किया तथा धर्म की संस्थापना की।

श्रीरामचरितमानस—बालकाण्ड

(व्याख्या भाग)

(श्लोक)

मूल—वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥१॥

शब्दार्थ—संघाना=समूहो की । वीणा=सरस्वती । विनायक=गणेशजी

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैं वर्ण और अर्थ के समूहो, रसे तथा छन्दो की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती तथा मगलो के करने वाले गणेश जं की प्रणाम करता हूँ ।

मूल—भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा स्वान्त-स्थमीश्वरम् ॥२॥

शब्दार्थ—याभ्या=जिन दोनो के । पश्यन्ति=देखते हैं । स्वान्त स्थम्= अपने अन्त करण मे स्थित ।

भावार्थ—मैं उन पार्वती और शंकर को प्रणाम करता हूँ, जो श्रद्धा और विश्वास स्वरूप हैं और जिन (दोनो) के विना सिद्ध लोग अपने अन्त करण मे स्थित ईश्वर को नहीं देख पाते ।

मूल—वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥३॥

शब्दार्थ—बोधमयं=ज्ञान मय । यमाश्रित=जिनके आश्रय में रहने वाला । वक्र=टेढा । वन्द्यते=वन्दना किया जाता है ।

भावार्थ—मैं उन ज्ञानमय तथा नित्य अर्थात् अविनाशी शकर रूपी गुरु को नमस्कार करता हूँ, जिनके आश्रय मे रहने वाला टेढा चन्द्रमा (द्वितीया का चन्द्रमा) भी सर्वत्र वन्दनीय माना जाता है ।

मूल—सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥४॥

शब्दार्थ—ग्राम=समूह। पुण्यारण्य=पवित्र वन। कवीश्वर=वाल्मीकि। कपीश्वर=हनुमान जी।

भावार्थ—श्री सीताराम के गुण-समूह रूपी पवित्र वन मे विहार करने वाले तथा विशुद्ध विज्ञानयुक्त कवीश्वर वाल्मीकि तथा हनुमानजी को मैं प्रणाम करता हूँ।

मूल—उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीता नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥५॥

भावार्थ—उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और संहार करने वाली, क्लेशो की हरने वाली तथा सम्पूर्ण कल्याणो की करने वाली श्रीरामचन्द्रजी की प्रियतमा श्री सीताजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

मूल—यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रम ।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावता
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥६॥

शब्दार्थ—अखिलम्=सम्पूर्ण। यत्सत्वात=जिनकी सत्ता मे। अमृषा इव=सत्य ही। भाति=प्रतीत होता है। अहेर्भ्रम=साप के भ्रम की तरह। भवाम्भोधे=ससार-सागर से। तितीर्षावताम्=तिरने की इच्छा वालो के। रामाख्यम्=जिनका नाम राम है। यत्पादप्लवम्=जिनके चरण नौका हैं।

भावार्थ—जिनकी माया से वशीभूत होकर सम्पूर्ण विश्व तथा ब्रह्मा आदि देवता तथा राक्षस रहते है, और जिनकी सत्ता से यह दृश्य-जगत् रस्सी मे सर्प के भ्रम की तरह सत्य-सा दृष्टिगोचर होता है, और जो लोग भव-सागर से पार जाने की इच्छा रखते हैं, उनके लिए जिनके चरण एकमात्र नौका हैं, जो समस्त कारणो के कारण हैं और जिनका राम नाम हैं, मैं उन हरि को प्रणाम करता हूँ।

मूल—नानापुराणनिगमागमसम्मत यद्
रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि ।

स्वान्त सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥७॥

शब्दार्थ—निगमागम=वेद और शास्त्र। निगदित=वर्णित। मञ्जुल=मनोहर। आतनोति=विस्तृत करता है।

भावार्थ—अनेक पुराण, वेद और शास्त्र से सम्मत तथा जो वाल्मीकि रामायण में वर्णित है और जो अन्यत्र भी उपलब्ध है, ऐसी राम-कथा को तुलसीदासजी अपने अन्त करण के सुख के लिए अत्यन्त मनोहर भाषा-रचना में विस्तार से कहते हैं।

मूल—जो सुमिरत सिधि होइ गण नायक करिवर वदन।
करहु अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन ॥१॥

शब्दार्थ—नायक=स्वामी। करिवर वदन=हाथी के मुख के समान सुन्दर मुख वाले। सदन=घर, धाम।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिनका स्मरण करने से सब कार्यों में सफलता मिलती है, जो गणों के स्वामी हैं और हाथी के मुख के समान सुन्दर मुख वाले हैं, वे गणेश जी, जो बुद्धि के सागर और शुभ गुणों के घर हैं, मुझ पर कृपा करें।

काव्य-सौन्दर्य—छन्द सोरठा तथा अलंकार काव्यलिङ्ग।

मूल—मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपा सो दयाल द्रवउ सकल कलिमल दहन ॥२॥

शब्दार्थ—बाचाल=बहुत अधिक बोलने वाला। द्रवउ=पिघलें, दया करें। कलिमल-दहन=कलि के पापों को जलाने वाले।

मूल—नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन वारिज नयन ।
करउ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन ।।३।।

शब्दार्थ—सरोरुह=कमल । तरुण=पूर्ण खिले हुए । अरुण=लाल । वारिज=कमल ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिनका नील कमल के समान श्याम वर्ण है तथा जिनके नेत्र पूर्ण खिले हुए लाल कमल के समान हैं और जो सदा क्षीर-सागर मे शयन करते हैं, वे भगवान् (नारायण) मेरे हृदय मे निवास करें

काव्य-सौन्दर्य—छन्द सोरठा, अलंकार वाचक लुप्तोपमा, छेकानुप्रास ।

मूल—कुंद इंदु सम देह उमा रमन करुना अयन ।
जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन ।।४।।

शब्दार्थ—कुंद=एक प्रकार का सफेद छोटा फूल । इन्दु=चद्रमा । उमा रमन=शिवजी । मयन-मर्दन=कामदेव का मर्दन करने वाले शिव । अयन=घर, धाम ।

भावार्थ—जिनका कुन्द के पुष्प और चन्द्रमा के समान (गौर) शरीर है, जो पार्वतीजी के प्रियतम और दया के धाम हैं और जिनका दीनो पर स्नेह है, वे कामदेव का मर्दन करने वाले (शकर भगवान) मुझ पर कृपा करें ।।४।।

काव्य-सौन्दर्य—छेकानुप्रास और वर्मलुप्तोपमा अलकार ।

मूल—वदउ गुरु पद कज कृपा सिंधु नररूप हरि ।
महामोह तम पुंज जासु वचन रवि कर निकर ।।५।।

शब्दार्थ—कंज=कमल । कर-निकर=किरणो का समूह ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मै उन गुरु महाराज के चरण-कमल की वन्दना करता हूँ, जो कृपा के समुद्र हैं और नर रूप मे श्रीहरि ही हैं और जिनके वचन महामोह रूपी घने अन्धकार को नाश करने के लिए सूर्य की किरणो के समान हैं ।

काव्य-सौन्दर्य—रूपक और यमक अलंकार । तीसरे-चौथे चरण मे परम्परित रूपक ।

मूल-चौ०—बंदउँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू ॥१॥
सुकृति संभु तन बिमल बिभूति। मंजुल मंगल मोद प्रसूती।
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किएँ तिलक गुन गन बस करनी।२।
श्रीगुर पद नख मनि गन जोति। सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती ॥
दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू ॥३॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ॥
सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।४।

शब्दार्थ—पदुम=कमल। अमिअ=अमृत। समन=नाश करने वाली। भव रुज=संसार के रोग। मंजुल=सुन्दर। मोद-प्रसूती=आनन्द की जननी। मुकुर=दर्पण। मोह=अज्ञान। ही=हृदय। भव-रजनी=संसार रूपी रात्रि। खानिक=खान।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं गुरु के चरण-कमल के रज की वन्दना करता हूँ। वह रज सुरुचि को उत्पन्न करने वाली सुवासित, सरस और अनुराग पूर्ण है। वह रज अमृत की जड़ी का सुन्दर चूर्ण है और जो संसार के जन्म-मरण आदि सब तरह के रोगों को नाश करने की शक्ति रखती है। वह रज पुण्यवान शंकर के शरीर पर लगी निर्मल विभूति है, वह सुन्दर है और आनन्द-मंगल की जननी है। वह रज भक्त के मन रूपी सुन्दर दर्पण के मैल को हरने वाली है। ऐसी रज का ललाट पर तिलक लगाने से वह सम्पूर्ण गुणों को वश में करने वाली है।

गुरु के चरणों के रज की वन्दना करने के पश्चात् अब तुलसीदास गुरु के चरणों के नाखूनों की ज्योति का महत्व बताते हैं। वे कहते हैं कि गुरु के नाखूनों की ज्योति मणियों के प्रकाश के समान है। उस नख-ज्योति का स्मरण करते ही हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। वह उत्तम प्रकाश मोह रूपी तम का नाश करने वाला है, और जिस व्यक्ति के हृदय में ऐसी दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाय तो उसे बड़ा भाग्यशाली समझना चाहिए। इस दिव्य दृष्टि को प्राप्त करते ही हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसार रूपी रात्रि के सब दोष-दुःख मिट जाते हैं तथा राम के चरित्र रूपी मणि-माणिक्य, गुप्त और

प्रकट, जो जहाँ जिस खान मे हैं, सब दिखाई देने लगते है ।

काव्य-सौन्दर्य—इन पक्तियो मे सुन्दर पद-मैत्री के साथ रूपक अलकार की अच्छी बहार है ।

मूल—जथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखत सैल बन, भूतल भूरि निधान ॥१॥

भावार्थ—जैसे सिद्धाञ्जन को नेत्रो मे लगाकर साधक, सिद्ध और सुजान वनो और पृथ्वी के अन्दर कौतुक से ही बहुत-सी खानें देखने लगते है, वैसे ही गुरु की चरण-रज एव नख-ज्योति के प्रसाद से शिष्य को सब कुछ सूझने लगता है ।

काव्य-सौन्दर्य—छन्द दोहा, अलंकार उदाहरण । 'साधक सिद्ध सुजान' मे वृत्यनुप्रास ।

मूल–चौ०–गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन । नयन अमिअ दृग दोष विभजन ॥
तेहि करि विमल विवेक विलोचन । बरनउं राम चरित भव मोचन ॥१॥
बंदउं प्रथम महीसुर चरना । मोह जनित ससय सब हरना ॥
सुजन समाज सकल गुन खानी । करउं प्रनाम सप्रेम सुबानी ॥२॥
साधु चरित सुभ चरित कपासू । निरस विसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । बदनीय जेहि जग जस पावा ॥३॥

शब्दार्थ—मृदु=कोमल । विभजन=नाश करने वाला । भवमोचन= सासारिक कष्टो से छुटकारा दिलाने वाला । महीसुर=ब्राह्मण । जनित=उत्पन्न विसद=उज्ज्वल । गुनमय=गुण वाला, ततुवाला । परछिद्र=दूसरो के गोपनीय स्थानो को, दूसरे के दोषो को ।

भावार्थ—(सिद्धाजन की तरह ही) गुरु की चरण-रज कोमल और सुन्दर अंजन है । वह नेत्रो के लिए अमृत है और नेत्रो के समस्त प्रकार के विकारो का नाश करने वाला है । तुलसीदास कहते हैं कि उस अंजन से विवेक रूपी नेत्रो को निर्मल करके मैं ससार रूपी बन्धन से छुटकारा दिलाने वाले रामचरित का वर्णन करता हूँ ।

सर्व-प्रथम मैं ब्राह्मणो के चरणो की वन्दना करता हूँ, क्योकि ये इस पृथ्वी के देवता हैं तथा अज्ञान-जनित सब सन्देहो को मिटाने वाले हैं ।

तदनन्तर मैं सब गुणों की खान सन्त-समाज को प्रेम-सहित सुन्दर वाणी से प्रणाम करता हूँ।

संत का चरित्र कपास के चरित्र (जीवन) के समान शुभ है, जिसका फल नीरस, विशद और गुणमय होता है। (कपास की डोडी नीरस होती है, सन्त-चरित्र में भी विषयासक्ति नहीं है, इससे वह नीरस है, कपास उज्ज्वल होता है, सन्त का हृदय भी अज्ञान और पाप रूपी अन्धकार से रहित होता है, इसलिए वह विशद है, और कपास में गुण (तन्तु) होते हैं इसी प्रकार संत का चरित्र भी सद्‌गुणों का भण्डार होता है, इसलिए वह गुणमय है।) [जैसे कपास का धागा सूई के किये हुए छेद को अपना तन देकर ढक देता है, अथवा कपास जैसे लोढे जाने, काते जाने और बुने जाने का कष्ट सहकर भी वस्त्र के रूप में परिणत होकर दूसरों के गोपनीय स्थानों को ढकता है, उसी प्रकार] सन्त स्वयं दुःख सहकर दूसरों के छिद्रों (दोषों) को ढकता है, जिसके कारण उसने जगत् में वन्दनीय यश प्राप्त किया है।

काव्य-सौन्दर्य-वृत्त्यनुप्रास, लाटानुप्रास (साधु चरित सुभ चरित कपासू) चौपाई संख्या ३ में श्लेष अलंकार।

मूल मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथ राजू॥
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा॥४॥
विधि निषेधमय कलि मल हरनी। करम कथा रविनंदनि बरनी॥
हरि हर कथा विराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥५॥
बटु बिस्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥६॥
अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥७॥

दो०—सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग॥२॥

शब्दार्थ—जंगम=चलता फिरता। सुरसरि=गंगा। रविनंदनी=यमुना (सूर्य की पुत्री)। बेनी=त्रिवेणी। देनी=देने वाली। बटु=अक्षय वट। समन=नाश करने वाला। सद्य=तत्काल। प्रगट=प्रत्यक्ष। मज्जहिं=स्नान करते हैं। अछत तनु=इस शरीर के रहते हुए ही।

भावार्थ—सत-समाज को तीर्थराज प्रयाग का रूप देते हुए तुलसीदास कहते है कि सत-समाज आनन्द और मगल का मूल है । यह ससार मे सचमुच चलता-फिरता तीर्थराज प्रयाग है, जहाँ राम-भक्ति रूपी गगा की धारा बहती है, ब्रह्म-विचार का प्रचार ही जहाँ सरस्वती (नदी) है तथा विधि-निषेधमय (यह कर्म करो यह न करो) कर्मो की कथा कलियुग के पापो को हरने वाली यमुना है, और विष्णु तथा महेश की कथा जहाँ त्रिवेणी के रूप मे सुशोभित है, जो सुनते ही आनन्द और मगल की देने वाली है । उस सत-समाज रूपी प्रयाग मे अपने धर्म मे अटल विश्वास ही अक्षय-वट है और शुभ कर्म ही उस तीर्थराज का परिवार है । वह सत-समाज रूपी प्रयागराज सब देशो मे, हर समय सबको, सहज ही प्राप्त हो सकने वाला है । जो कोई आदर-पूर्वक इसका सेवन करता है, उसके सारे क्लेश नष्ट हो जाते हैं । वह तीर्थराज अलौकिक और अकथनीय है, वह तत्काल फल देने वाला है और उसका प्रभाव प्रत्यक्ष है ।

तुलसीदास कहते हैं कि जो लोग इस सत-समाज रूपी तीर्थराज का प्रभाव प्रसन्न मन से सुनते हैं, सुनकर समझते है और फिर प्रेम के साथ उसमे गोते लगाते है, वे इस शरीर के रहते हुए ही चारो पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। प्राप्त कर लेते है ।

काव्य सौन्दर्य—अनुप्रास, रूपक और साग रूपक अलकार । सत-समाज पर तीर्थराज प्रयाग का कितना सुन्दर आरोप है ।

मूल—मज्जन फल पेखिअ ततकाला । काक होहिं पिक बकउ मराला ।।
मुनि आचरज करै जनि कोई । सतसगति महिमा नहिं गोई ।।१।।
बालमीक नारद घटजोनी । निज निज मुखनि कही निज होनी ।।
जलचर थलचर नभचर नाना । जे जड चेतन जीव जहाना ।।२।।

शब्दार्थ—मज्जन=स्नान । पिक=कोयल । बकउ=बगुला । मराला=हस । गोई=छिपी हुई । घटजोनी=अगस्त्य ऋषि । जहाना=संसार ।

भावार्थ—इस सत समाज रूपी तीर्थराज-प्रयाग मे स्नान करने का फल तत्काल देखने मे आता है । इसमे स्नान करके कौए कोकिल बन जाते हैं और बगुले हस बन जाते है अर्थात् दुष्ट भी सज्जन बन जाते है । यह बात सुन कर किसी को आश्चर्य नही करना चाहिए क्योकि सत्सगति की महिमा किसी से

छिपी नहीं है। वाल्मीकि, नारद और अगस्त्य ऋषि का उदाहरण आपके सामने हैं, इन्होंने स्वय अपने मुख से अपनी-अपनी करनी कही है। (सत्संग के फल-स्वरूप इन्होंने उच्चता प्राप्त की, ससार मे जल, स्थल और आकाश मे विचरण करने वाले जितने भी जड-चेतन जीव हैं उनमे)

मूल—मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहि पाई ॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ॥३॥

भावार्थ—उनमे से जिसने जिस समय जहाँ कहीं भी जिस किसी यत्न मे बुद्धि, कीर्ति सम्पत्ति, (ऐश्वय) और भलाई पाई जाती है, सो सब सत्संग का ही प्रभाव समझना चाहिये। वेदो मे और लोक में इनकी प्राप्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं बताया गया है।

मूल—बिनु सतसग बिवेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
सतसगत मुद मगल मूला। सोई फल सिधि सब साधन मूला ॥४॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई ॥
बिधि बस सुजन कुसगत परहीं। फनिमनि सम निज गुन अनुसरहीं ॥५॥

शब्दार्थ—मूला=जड। कुधात=लोहा। सुहाई=सुन्दर, सुहावना। फनि-मनि=साप की मणि।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि बिना सत्संग के भले-बुरे का ज्ञान नहीं होता और ऐसा ज्ञान जिसे 'विवेक' कहते हैं, बिना राम की कृपा के प्राप्त नहीं होता। सत्सगति, जो केवल राम-कृपा से ही सुलभ है, आनन्द-मंगल की जड है, तप-दानादि साधन उसके फूल हैं और सिद्धि उसका फल है। (सत्सगति को एक वृक्ष का रूप दिया गया है आनंद-मगल को उसकी जड, तप-दान आदि को उसके फूल और सिद्धि को उसका फल कहा गया है।

दुष्ट भी सत्सगति पाकर सुधर जाते हैं, जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सुहावना हो जाता है (सुन्दर सोना बन जाता है)। किन्तु दैवयोग से यदि कभी सज्जन कुसगति मे पड जाते हैं, तो वे वहा भी साप की मणि के समान अपने गुणों का ही अनुसरण करते हैं (अर्थात् जिस प्रकार साप का संसर्ग पाकर भी मणि उसके विष को ग्रहण नहीं करती तथा अपने सहज गुण प्रकाश को नहीं छोडती, इसी प्रकार साधु पुरुष दुष्टों के संग मे

रह कर भी दूसरो को प्रकाश ही देते है, दुष्टो का उन पर कोई प्रभाव नही पडता) ।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, विनोक्ति, रूपक, अर्थान्तरन्यास, उपमा आदि अलकार ।

मूल—विधि हरि हर कवि कोविद बानीं । कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मो सन कहि जात न कैसें । साक बनिक मनि गुन गन जैसें ।।६।।

शब्दार्थ—कोविद=पण्डित । बानी=सरस्वती । साक-बनिक=शाक-तरकारी वेचने वाला ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ज्ञानी पडित एव सरस्वती भी सत-महिमा का वर्णन करने मे सकुचाते हैं, तव भला मैं तो उसका वर्णन कर ही कैसे सकता हूँ । जिस प्रकार शाक-पात वेचने वाला मणि विशेष के गुणो को नही कह सकता, उसी प्रकार सत-महिमा का वर्णन मुझ से नही हो सकता ।

काव्य-सौन्दर्य—उदाहरण अलकार ।

मूल—दो०-बदउँ सत समानचित हित अनहित नहि कोइ ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगध कर होइ ।।६(क)।।
सत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु ।
बालविनय सुनि करिकृपा राम चरन रति देहु ।।३(क)।।

शब्दार्थ—हित-अनहित=मित्रता और शत्रुता । सुमन=फूल । कर=हाथ रति=प्रेम ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैं उन सज्जनो की वन्दना करता हूँ जो ससार मे साम्य भाव रखते हैं, उनकी न किसी से मित्रता होती है और न किसी से शत्रुता—वे सवका हित चाहते हैं यहा तक कि अपने अपकारी का भी । जैसे अजुली मे रखे सुगन्धित पुष्प दोनो ही हाथो को समान रूप से सुगधित करते हैं, वैसे ही सन्त भी शत्रु और मित्र दोनो ही की कल्याण-कामना करते है ।

सत सरल हृदय और जगत् के हितकारी होते है, उनके ऐसे स्वभाव और स्नेह को जानकर मैं विनय करता हूँ, मेरी इस बाल-विनय को सुन कर

कृपा करके श्रीरामजी के चरणों में मुझे प्रीति दें।

काव्य-सौन्दर्य—लाटानुप्रास, छेकानुप्रास, उदाहरण और पर्यायोक्ति अलंकार।

मूल-चौ०—बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ॥
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरे। उजरें हरष बिषाद बसेरे॥१॥
हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से॥
जे पर दोष लखहिं सहसाखी। पर हित घृत जिन्ह के मन माखी॥२॥
तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा॥
उदय केत सम हित सबही के। कुंभकरन सम सोवत नीके॥३॥
पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषि दलि गरहीं॥
बंदउँ खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनत पर दोषा॥४॥

शब्दार्थ—खलगन=दुष्टों को। सतिभाएँ=अच्छे भाव से। दाहिनेहु बाएँ=हित करने वाले के भी प्रतिकूल। बसेरें=बसने पर राकेस=चन्द्रमा। भट=योद्धा। सहसाखी=हजार आँखों से। कृसानु=अग्नि। महिषेसा=यमराज। धनेसा=कुबेर। केत=केतु (पुच्छल तारा)। हिम-उपल=ओले। गरहीं=गला देते हैं। बदन=मुख।

भावार्थ—सत वंदना करने के अनन्तर तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं सच्चे भाव से दुष्ट-समूह की भी वन्दना करता हूँ जो अकारण ही अपना हित करने वाले के भी प्रतिकूल आचरण करते हैं। दूसरों की हानि को ही जो अपना लाभ समझते हैं तथा दूसरों के उजड़ने में ही जिन्हें आनन्द आता है। और दूसरों को बसते देखकर जिन्हें विषाद होता है।

जो हरि और हर के यशरूपी पूर्णिमा के चन्द्रमा के लिये राहु के समान हैं। (अर्थात् जहाँ कहीं भगवान् विष्णु या शंकर के यश का वर्णन होता है, उसी में ये बाधा देते हैं)। और दूसरों की बुराई करने में सहस्रबाहु के समान वीर हैं। जो दूसरों के दोषों को हजार आँखों से देखते हैं और दूसरों के हितरूपी घी के लिये जिनका मन मक्खी के समान है (अर्थात् जिस प्रकार मक्खी घी में गिरकर उसे खराब कर देती है और स्वयं भी मर जाती है उसी प्रकार दुष्ट-जन दूसरों के बने बनाये काम को अपनी हानि करके भी बिगाड़ देते हैं)।

जो तेज मे अग्नि, क्रोध मे यमराज के समान हैं तथा जो पाप और अवगुण रूपी धन मे कुबेर के समान हैं। केतु के समान उदित होकर ये सबका हित करने वाले हैं (व्यंग्य-सबके हित-नाशक हैं)। ऐसे दुष्टो का तो कुम्भकर्ण के समान सोना ही अच्छा है।

ये दुष्ट जन दूसरो का अहित करने के लिए अपने शरीर तक का त्याग कर देते हैं। जैसे ओले खेती का नाश करके आप भी गल जाते हैं, वैसे ही दूसरो का काम बिगाडने मे ये अपना नाश तक कर देते हैं। मैं दुष्टो को शेष-नाग के समान हजार मुख वाला समझ कर प्रणाम करता हूँ, जो पराये दोषो का हजार मुखो से बडे रोष के साथ वर्णन करते है।

काव्य-सौन्दर्य—रूपक, उपमा, अनुप्रास अलकार। चौपाई सख्या ४ मे उदाहरण अलकार।

टिप्पणियाँ—

(i) राहु एक ग्रह है जो चन्द्रमा को ग्रसता है।

(ii) सहस्रबाहु एक राजा था, जिसने परशुराम के पिता जमदग्नि ऋषि को मारा था।

(iii) कुंभकर्ण एक राक्षस था रावण का भाई, जो छ महीने सोता था और एक दिन जगता था।

(iv) शेष एक नाग है जिसके हजार फण है, जिसके फणो पर यह पृथ्वी टिकी है।

मूल—पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना॥
बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक हित जेही॥५॥
बचन बज्र जेहि सदा पिआरा। सहस नयन पर दोष निहारा॥६॥
दो०—उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति।
जानि पानि जुग जोरि जन बिनती करइ सप्रीति॥४॥

शब्दार्थ—पर अघ=दूसरे के पाप या दोष। सक्र (शक्र)=इन्द्र। सतत=सदा। सुरानीक=(१) सुरा+नीक=अच्छी शराब, (२) सुर+अनीक=देवताओ की सेना। सहस=सहस्र (हजार)। पानि=हाथ। जुग=दोनो।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैं पुनः उन दुष्टो को राजा पृथु के

समान समझकर प्रणाम करता हूँ, जो दूसरे के पापों को दस हजार कानों से सुनते हैं। मैं फिर उन्हें इन्द्र के समान समझकर उनकी विनय करता हूँ जिनको सुरा (मदिरा) नीकी (अच्छी) और हितकारी मालूम देती है (इन्द्र के लिए भी सुर (देवताओं की) अनीक (सेना) हितकारी है)। जैसे इन्द्र को अपना हथियार वज्र प्यारा है, उसी तरह इन दुष्टों को वज्र-सम कठोर वचन प्रिय हैं और जैसे इन्द्र हजार नेत्रों से दूसरे के गुण को देखता है, वैसे ही ये दुष्ट भी हजार नेत्रों से दूसरे के दोषों को देखते हैं।

दुष्टों की यह रीति है कि वे चाहे कोई उनका मित्र हो या शत्रु या उदासीन, किसी का भी हित सुनकर जलते हैं। यह बात जानकर मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रेम-पूर्वक उनसे विनय करता हूँ।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, श्लेष, उपमा और तुल्ययोगिता अलंकार।

टिप्पणी—पृथु—एक इक्ष्वाकु वंशी राजा था जिसने भगवानन् का यश सुनने के लिए दस हजार कान माँगे थे।

मू०-चौ०-मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा॥
बायस पलिअहिं अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा॥१॥

शब्दार्थ—दिसि=तरफ से। निहोरा=विनती। भोरा=भूल। बायस=कौआ। निरामिष=मांस-त्यागी।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैंने तो अपनी ओर से उनकी विनय करने में कोई कसर छोड़ी नहीं है, किन्तु वे अपनी ओर से दुष्टता करने में नहीं चूकेंगे (क्योंकि उनका यह स्वभाव है)। कौए को चाहे जितने प्रेम से पालिए और खीर-खांड खिलाइए, परन्तु वह मांस-भक्षण नहीं छोड़ेगा—वैसे ही ये दुष्ट भी अपनी दुष्टता का परित्याग नहीं करेंगे।

काव्य-सौन्दर्य—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

मूल-बंदउँ संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं॥२॥
उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू॥३॥
भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती॥

सुधा सुधाकर सुरसरि साधू । गरल अनल कलिमल सरि व्याघू ।।४।।
गुन अवगुन जानत सब कोई । जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ।।५।।

शब्दार्थ—बीच=अन्तर । बिलगाही=अलग-अलग । जनक=उत्पन्न करने वाला । अपलोक=अपयश । सुरसरि=देव नदी (गगा) । गरल=जहर । अनल=अग्नि । कलिमल सरि=कर्म-नाशा नदी जिसमे स्नान करने से सब अच्छे कर्म नष्ट हो जाते हैं ।

भावार्थ—सतो और असतो की पृथक्-पृथक् वन्दना करने के बाद तुलसीदास अब दोनो की सम्मिलित वंदना करते हुए कहते हैं—मैं सत और असत दोनो के चरणो को प्रणाम करता हूँ, क्योकि दोनो ही दु ख देने वाले हैं। हाँ, इनके दु ख देने मे अन्तर अवश्य है । सज्जन तो जब बिछुडते है, तब प्राण हर लेते हैं और दुष्ट जब मिलते हैं, तब प्राण ले लेते हैं—सज्जन बिछुडने पर और दुष्ट मिलने पर समान दु ख देते हैं ।

दोनो (सत और असत) जगत् मे एक साथ पैदा होते हैं, पर [एक साथ पैदा होने वाले] कमल और जोक की तरह उनके गुण अलग अलग होते हैं । (कमल दर्शन और स्पर्श से सुख देता है, किन्तु जोक शरीर का स्पर्श पाते ही रक्त चूसने लगती है ।) साधु अमृत के समान (मृत्युरूपी ससार से उबारने वाला और असाधु मदिरा के समान (मोह, प्रमाद और जडता उत्पन्न करने वाला) है, दोनो को उत्पन्न करने वाला जगत्रूपी अगाध समुद्र एक ही है [शास्त्रो मे समुद्र मन्थन से ही अमृत और मदिरा दोनो की उत्पत्ति बतायी गयी है], किन्तु गुण इनके अलग-अलग हैं ।

भले और बुरे अपनी-अपनी करनी के अनुसार सुन्दर यश और अपयश की सम्पत्ति पाते हैं । अमृत, चन्द्रमा, गङ्गाजी और साधु एव विष, अग्नि, कलियुग के पापो की नदी अर्थात् कर्मनाशा और हिंसा करने वाला व्याध, इनके गुण-अवगुण सब कोई जानते हैं, किन्तु जिसे जो भाता है, उसे वही अच्छा लगता है ।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, लाटानुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश अलकार ।

मूल—दो०—भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु ।।
सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु ।।५।।

शब्दार्थ—अमरता=मृत को जीवित कर देने की शक्ति। मीचु=मृत्यु, जीवित को मार डालने की शक्ति।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जो भला होता है, वह भलाई को ही ग्रहण करता है और जो नीच होता है, वह नीचता को ग्रहण करता है—दोनों ही अपनी प्रकृति को नहीं छोड़ते। अमृत की सराहना मृत को जीवित करने में है और विष की जीवित को मार डालने में।

काव्य-सौन्दर्य—लाटानुप्रास और प्रतिवस्तूपमा अलंकार।

मू०-चौ०—खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥
तेहि तें कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥१॥
भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन दोष बेद बिलगाए॥
कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना॥२॥
दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू॥३॥
माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा॥
कासी मग सुरसरि क्रमनासा। मरु मारव महिदेव गवासा॥४॥
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगमागम गुन दोष बिभागा॥५॥

शब्दार्थ—गाहा=गाथा, कथाएँ। अवगाहा=अथाह। पोच=बुरे। माहुरु=जहर। मीचु=मृत्यु। लच्छि=लक्ष्मी, सम्पत्ति। अलच्छि=दरिद्रता। मग=मगध। क्रमनाशा=कर्मनाशा नदी। मरु=मारवाड़। मारव=मालव देश। महिदेव=ब्राह्मण। गवासा=कसाई। निगमागम=निगम (वेद) और आगम (शास्त्र)।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि दुष्टों के पापों और अवगुणों की तथा सज्जनों के गुणों की गाथाएँ समुद्र के समान अपार और अथाह हैं। इसलिए मैंने इनके कुछ ही गुण-दोषों का वर्णन किया है क्योंकि गुण और दोष की पहिचान हुए बिना लोग इनका संग्रह और त्याग नहीं कर सकते।

विधाता ने संसार में भले बुरे सब को पैदा किया है, परन्तु वेदों ने उनके गुण-दोषों का विवेचन कर उनको अलग-अलग कर दिया है। वेद, इतिहास और पुराण कहते हैं कि विधाता की यह सृष्टि गुण-अवगुण से बनी हुई

है, इसमे गुण हैं तो दोष भी।

दु:ख-सुख, पाप-पुण्य, दिन-रात, साधु-असाधु, सुजाति-कुजाति, दानव-देवता, ऊँच-नीच, अमृत-विष, सुजीवन (सुन्दर जीवन)-मृत्यु, माया-ब्रह्म, जीव-ईश्वर, सम्पत्ति-दरिद्रता, रक-राजा, काशी-मगध, गङ्गा-कर्मनाशा मारवाड-मालवा, ब्राह्मण-कसाई, स्वर्ग-नरक, अनुराग-वैराग्य, [ये सभी पदार्थ ब्रह्मा की सृष्टि मे है।] वेद-शास्त्रो ने उनके गुण-दोषो का विभाग कर दिया है ॥३-५॥

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, लाटानुप्रास और उल्लेख अलकार।

टिप्पणी—ऐसा माना जाता है कि काशी मे मरने पर मुक्ति प्राप्त होती है और मगध मे मरने पर नरक।

मूल–दो०—जड़-चेतन गुन-दोषमय विस्व कीन्ह करतार।
संत-हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार ॥६॥

भावार्थ—विधाता ने इस जड-चेतन विश्व को गुण-दोषमय रचा है; किन्तु संतरूपी हंस दोषरूपी जल को छोडकर गुणरूपी दूध को ही ग्रहण करते हैं ॥६॥

काव्य-सौन्दर्य—साग रूपक अलकार।

मूल-चौ–अस विवेक जऊ देइ विधाता। तब तजि दोष गुनहिं मनु राता ॥
काल सुभाउ करम बरिआई। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई ॥१॥
सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं ॥
खलउ करहिं भल पाइ सुसगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू ॥२॥
लखि सुबेष जग बचक जेऊ। बेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ ॥
उघरहिं अन्त न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू ॥३॥
किएहुँ कुबेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू ॥
हानि कुसंग सुसगति लाहू। लोकहुँ वेद विदित सब काहू ॥४॥

शब्दार्थ—राता=अनुरक्त होना। बरिआई=प्रबलता से। बंचक=ठग। जेऊ=जो। उघरहिं=भेद खुल जाने पर। लाहू=लाभ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जब विधाता गुण-दोष परखने का हंस का सा विवेक देता है, तब मन दोषो को छोड कर गुणो मे अनुरक्त होता है। काल, स्वभाव और कर्म की प्रबलता से भले लोग भी माया के वश मे

होकर भलाई करने से कभी-कभी चूक जाते हैं, किन्तु जो भगवान् के भक्त होते हैं, वे उस चूक को सुधार लेते हैं और दुःख-दोषों को मिटा कर निर्मल यश देते हैं। उसी प्रकार दुष्ट भी कभी-कभी उत्तम संगति पाकर भलाई कर डालते हैं, परन्तु उनका कभी भंग न होने वाला मलिन स्वभाव नहीं मिटता।

जो जग-वंचक हैं, वेषधारी ठग हैं, वे भी अपने वेष के प्रताप से सम्मान प्राप्त कर लेते और अपने को पुजवा लेते हैं, किन्तु कभी-न-कभी उनकी पोल खुले बिना नहीं रहती और अन्त मे उनका कपट-नाटक सामने आ ही जाता है—कालनेमि, रावण और राहु का उदाहरण सामने है।

किन्तु साधु यदि बुरे वेष मे भी हो, तो भी उसका सम्मान ही होता है। संसार मे जामवान् (रीछों के राजा) और हनुमान (जो एक वानर थे) इनके उदाहरण हैं। कुसंगति से सदा हानि होती है और सुसंगति से लाभ, यह बात लोक और वेद दोनों मे प्रसिद्ध है और इसे सब लोग जानते हैं।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और उदाहरण अलकार हैं।

टिप्पणी—(१) कालनेमि एक राक्षस था, रावण का मामा। इसने कपट-वेष धारण कर हनुमानजी को, जब वे संजीवनी बूटी लेने जा रहे थे, मार्ग मे रोकने का ढोंग रचा और भेद खुल जाने पर वह हनुमानजी के द्वारा मार डाला गया। (२) राहु ने जो एक राक्षस था, समुद्र-मथन के बाद देवताओं की पंक्ति मे बैठकर अमृत पी लिया था। किन्तु भेद खुलने पर विष्णु ने सुदर्शन चक्र से इसका सिर काट दिया—इसके रुण्ड और मुण्ड अलग अलग हो गये। परन्तु यह अमृत पी चुका था, अतः मरा नहीं—इसके दो रूप हो गये एक राहु और दूसरा केतु जो क्रमशः चन्द्रमा और सूर्य को ग्रसते हैं।

मूल—गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच जल संगा॥
साधु असाधु सदन सुक सारीं। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारीं॥५॥
धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवनदाता॥६॥

शब्दार्थ—सुक=तोता। सारी=मैना। कारिख=कालिमा। मंजु=सुन्दर। मसि=स्याही। अनल=अग्नि। अनिल=हवा। संघाता=संसर्ग। धूम=धुआँ।

भावार्थ—संगति का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। तुलसीदास कहते

हैं, देखिए, हवा के संसर्ग से धूल आकाश मे चढ जाती है उच्च की सगति कर उच्चता प्राप्त कर लेती है) परन्तु वही धूल नीचे की ओर वहने वाले जल से जव ससर्ग करती है, तब वह कीचड वन जाती है। इसी तरह जो तोता-मैना साधुओ के घरो मे पलते हैं, राम-नाम का स्मरण करते हैं और वे जो दुष्टो के घर मे पलते हैं, गिन-गिन कर गालियाँ निकालते हैं। तीसरा उदाहरण धुआँ का लीजिए। कुसंग (रसोई-घर) के कारण धुआँ कालिमा (कालोच) कहलाता है, किन्तु वही धुआँ सुसंग पाकर सुन्दर स्याही वन कर पुराण लिखने के काम मे आता है, और वही धुआँ जल, अग्नि और हवा के सयोग से ससार को जीवन (जल) देने वाला वादल वन जाता है।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, लाटानुप्रास और उदाहरण अलकार।

मूल—ग्रह भेपज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग ।
होहिं कुवस्तु सुवस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग ॥७(क)॥
सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद विधि कीन्ह ।
ससि सोपक पोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह ॥७(ख)॥
जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि ।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि ॥७(ग)॥
देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्व ।
वंदउँ किंनर रजनिचर कृपा करहु अव सर्व ॥७(घ)॥

शब्दार्थ—भेपज=ओषधि। पट=वस्त्र। सुलच्छन=चतुर। खग=पक्षी। दनुज=राक्षस। रजनिचर=राक्षस।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि वस्तु स्वयं भली या वुरी नही होती उसका सग उसको भला या वुरा वना देता है। ग्रह, औषधि, जल, हवा और वस्त्र ये संसार मे बुरा सग पाकर वुरे तथा अच्छा सग पाकर अच्छे पदार्थ वन जाते हैं। चतुर और विचारशील पुरुष इस वात को भले प्रकार जानते है।

देखिए एक महीने मे दो पक्ष होते हैं—शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष और दोनो मे ही प्रकाश और अंधकार बरावर रहता है, फिर भी विधाता ने इनके नाम मे भेद कर दिया है। एक को चन्द्रमा का वढाने वाला और दूसरे

को उसका घटाने वाला समझकर जगत् ने एक को सुयश और दूसरे को अपयश दे दिया।

तुलसीदास कहते हैं कि जगत् में जितने भी जीव हैं जड या चेतन, मैं उन्हें सियाराम मय जान कर उनके चरण-कमलों की सदा दोनों हाथ जोड़ कर वंदना करता हूँ।

देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, प्रेत, पितर, गंधर्व, किन्नर और निशाचर मैं सबको प्रणाम करता हूँ। अब सब मुझ पर कृपा करें।

काव्य सौन्दर्य—यथासंख्य, अनुप्रास, लाटानुप्रास और रूपक अलंकार।

मूल-चौ०— आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ वासी॥
सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥१॥
जानि कृपाकर किंकर मोहू। सबमिलि करहु छाडि छल छोहू॥
निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। तातें विनय करउँ सब पाहीं॥२॥
करन चहउँ रघुपति गुन गाहा। लघु मति मोरि चरित अवगाहा॥
सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ॥३॥
मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी। चहिअ अमिअ जग जुरइ न छाछी॥
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बालवचन मन लाई॥४॥
जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥
हँसिहहिं क्रूर कुटिल कुविचारी। जे पर दूषन भूषनधारी॥५॥

शब्दार्थ—आकर=खान, योनि। किंकर=दास। छोहू=प्रेम। पाहीं=पास। अवगाहा=अथाह। ढिठाई=धृष्टता।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि चौरासी लाख योनियों में चार प्रकार के जीव हैं—स्वेदज, अंडज, उद्भिज, जरायुज, जो जल, स्थल और आकाश में रहते हैं। मैं इन सब जीवों से युक्त इस संसार को 'सियाराम मय' जान कर दोनों हाथ जोडकर प्रणाम करता हूँ।

तुलसीदास इनसे प्रार्थना करते हैं कि ये सब कृपा कर मुझे अपना दास समझें और छल-कपट छोडकर मुझ पर अनुग्रह करें, मुझे अपने बुद्धि-बल का भरोसा नहीं है, इसलिए मैं सबके पास प्रार्थना करता हूँ।

मैं श्रीराम के गुणो का वर्णन करना चाहता हूँ, परन्तु मेरी बुद्धि तो बहुत छोटी है और रामचन्द्र जी का चरित्र अथाह है। मुझे कविता का एक भी अंग या उपाय नही सूझता है। मेरी बुद्धि तो दरिद्र है और मनोरथ राजा है।

मेरी बुद्धि तो अति नीची है और रुचि ऊँची तथा अच्छी है। इच्छा अमृत पीने की है पर जगत् मे जुडती छाछ भी नही। इसलिए सज्जनो से निवे-दन है वे कि मेरी धृष्ठता की ओर ध्यान न देकर मेरे बाल-वचनो कोमन लगा कर सुनें।

जब बच्चा तोतले वचन बोलता है, तब माता-पिता प्रसन्न मन से सुनते हैं, किन्तु जो लोग क्रूर, कुटिल और खोटे विचार वाले हैं, और जो दूसरे के दोषो को ही अपना आभूषण समझते हैं, वे उसके वचन सुनकर हँसेंगे।

काव्य सौन्दर्य— अनुप्रास। चौपाई सख्या ४ और ५ मे भाविक अल-कार।

मूल—निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका॥
जे पर भनिति सुनत हरषाहीं। ते वर पुरुष बहुत जग नाहीं॥६॥
जग बहु नर सर सरि सम भाई। जे निज बाढि बढ़हिं जल पाई॥
सज्जन सकृत सिंधु सम कोई। देखि पूर विधु बाढइ जोई॥७॥
दो०—भाग छोट अभिलाषु बड़ करउँ एक विस्वास।
पैहहिं सुख सुनि सुजन सब खल करिहहिं उपहास॥८॥

शब्दार्थ—नीका=अच्छा। भनिति=रचना। सकृत=विरला। पूर=पूर्ण। विधु=चन्द्रमा। पैहहिं=प्राप्त करेंगे।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि अपनी रचना (कविता), चाहे सरस हो या नीरस, किसको अच्छी नही लगती। किन्तु ऐसे उत्तम-प्रकृति के लोग संसार मे अधिक नही हैं जो दूसरे की रचना को सुनकर प्रसन्न हो।

हे भाई! जगत् मे तालावो और नदियो के समान मनुष्य ही अधिक हैं, जो जल पाकर अपनी ही बाढ से बढते हैं (अर्थात् अपनी ही उन्नति से प्रसन्न होते हैं) समुद्र-सा तो कोई एक विरला ही सज्जन होता है जो चन्द्रमा को पूर्ण

देखकर (दूसरो का उत्कर्ष देखकर) उमड पडता है।

तुलसीदास कहते हैं कि मेरा भाग्य तो छोटा है, परन्तु इच्छा बहुत बडी है। फिर भी मुझे एक विश्वास है और वह यह है कि मेरी इस कविता को सुन कर सज्जन सुख पायेंगे और जो दुष्ट हैं, वे इसकी हँसी उडावेंगे।

काव्य सौन्दर्य – अनुप्रास, उपमा और भाविक अलंकार।

मूल—चौ०—खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा॥
हंसहि बक दादुर चातकही। हँसहिं मलिन खल विमल बतकही॥१॥
कवित रसिक न राम पद नेहू। तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू॥
भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी॥२॥
प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहि कथा लागिहि फीकी॥
हरिहर पद रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुवरकी॥३॥
राम भगति भूषित जियँ जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी॥
कवि न होउँ नहिं वचन प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू॥५॥
आखर अरथ अलकृति नाना। छंद प्रबन्ध अनेक विधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा॥५॥
कवित विवेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें॥६॥
दो०—भनिति मोरि सब गुन रहित विस्व विदित गुन एक।
सो विचारि सुनिहहिं सुमति जिन्ह के विमल विवेक॥९॥

शब्दार्थ—कलकठ=कोयल। बक=बगुला। बतकही=बात, वाणी। खोरी =दोप। सामुझि=समझ। अलकृति=अलकार। आखर=अक्षर। सुमति=अच्छी बुद्धि वाले।

भावार्थ – तुलसीदास कहते हैं कि दुष्टो के हँसी उडाने से मेरा हित ही होगा, क्योकि कौए तो सदा कोयल को कठोर वचन बोलने वाली कहेंगे ही। इसी प्रकार बगुले हँसों की तथा मेढक पपीहे की हँसी उडाते हैं। इस तरह यदि मलिन मन वाले दुष्ट निर्मल वाणी सुनकर हँसते हैं तो इसमें आश्चर्य करने की कौनसी बात है ?

तुलसीदास कहते हैं कि जो लोग न तो कविता के आनन्द को जानते हैं और न जिनका राम के चरणो में प्रेम है, उनके लिए तो मेरी कविता हास्य-

रस की सामग्री ही उपस्थित करेगी। मेरी कविता प्रथम तो भाषा मे है (सस्कृत में नही), फिर मेरी बुद्धि भोली है, इसलिए मेरी रचना हँसने योग्य ही है। इसे पढकर कोई हँसता है तो दोष नही है।

जिन्हे न तो प्रभु के चरणो मे प्रेम है और न अच्छी समझ ही है, उनको यह कथा सुनने मे फीकी लगेगी। जिनकी श्रीहरि (भगवान विष्णु) और श्रीहर (भगवान शिव) के चरणो मे प्रीति है और जिनकी बुद्धि कुतर्क करने वाली नही है (जो श्रीहरि-हर मे भेद की या ऊंच-नीच की कल्पना नही करते), उन्हे श्रीरघुनाथजी की यह कथा मीठी लगेगी।

तुलसीदास कहते हैं कि जो सज्जन हैं, वह मेरी इस कथा को अपने हृदय मे राम-भक्ति से विभूषित जानकर सुन्दर वाणी से सराहना करते हुए सुनेंगे। तुलसीदास कहते हैं कि न तो मैं कवि हूँ और न बात कहने मे ही चतुर हूँ, मैं तो सब कलाओं और विद्याओ से हीन हूँ।

नाना प्रकार के अक्षर, अर्थ, अलकार, अनेक प्रकार की छन्द-रचना, भावो तथा रसो के अनेक भेद-प्रभेद कथा कविता के विभिन्न गुण-दोष—इस प्रकार काव्य-सम्बन्धी इन बातो से मैं अपरिचित हूँ—मैं काव्य-मर्मज्ञ या कलाकार नही हूँ। यह बात मैं औपचारिक रूप मे नही कहता, प्रत्युत कोरे कागज पर लिखकर अर्थात् शपथ-पूर्वक सच्ची-सच्ची कहता हूँ।

इसमे सदेह नही कि मेरी रचना सब गुणो मे रहित है। इसमे केवल एक ही जगत् प्रसिद्ध गुण है (राम-भक्ति का), उसी का विचार कर जो लोग अच्छी बुद्धि वाले एव निर्मल ज्ञान वाले हैं, वे इसे सुनेगें।

काव्य सौन्दर्य—पद-मैत्री, अनुप्रास की सुन्दर छटा, भाविक अलकार।

चौ०—एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा॥
मगल भवन अमगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥१॥
भनिति विचित्र सुकवि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥२॥
सब गुन रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी॥
सादर कहहिं सुनहि बुध ताही। मधुकर सरिस सत गुनग्राही॥३॥

जदपि कवित रस एकउ नाहीं । राम प्रताप प्रगट एहि माहीं ॥
सोइ भरोस मोरें मन आवा । केहिं न सुसंग बड़प्पनु पावा ॥४॥
धूमउ तजइ सहज करुआई । अगरु प्रसग सुगंध बसाई ॥
भनिति भदेस वस्तु भलि वरनी । राम कथा जग मंगल करनी ॥५॥

शब्दार्थ—पुरारी=शिवजी । भनिति=कविता, रचना । विधुवदनी=चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली । वसन=वस्त्र । मधुकर=भौंरा । अगरु=अगर (एक सुगंधित पदार्थ) । भदेश=भद्दी ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते है कि मेरी इस रचना मे राम का उदार नाम है जो अत्यन्त पवित्र, वेद और पुराणो का सार है, कल्याण का घर है, अमगलो का हरने वाला है तथा जिस नाम को पार्वती-सहित महादेव जी सदा जपा करते हैं ।

चाहे कविता कितनी ही अनूठी हो और चाहे वह कितने ही अच्छे कवि द्वारा रचि गई हो, किन्तु यदि वह राम के नाम से अ कित नही है तो वह इस तरह शोभा नहीं पा सकती जिस तरह चन्द्रमा के समान मुखवाली सुन्दर स्त्री मब प्रकार से सुसज्जित होने पर भी विना वस्त्रो के शोभा नही देती ।

इसके विपरीत, कुकवि की रची हुई सब गुणो से रहित कविता को भी राम के नाम एवं यश से अङ्कित जानकर, वुद्धिमान लोग आदर पूर्वक कहते और सुनते हैं, क्योकि सतजन भौंरे की भाँति गुण ही को ग्रहण करने वाले होते हैं ।

यद्यपि मेरी इस रचना मे कविता का एक भी रस नही है, तथपि इसमे श्रीरामजी का प्रताप प्रकट है । मेरे मन मे यही एक भरोसा है । भली सगति से भला, किसने वडप्पन नही पाया ?

धुआ भी अगर के संग से सुगन्धित होकर अपने स्वाभाविक कडुवेपन को छोड देता है । मेरी कविता अवश्य भद्दी है, परन्तु इसमे जगत् का कल्याण करने वाली रामकथारूपी उत्तम वस्तु का वर्णन किया गया है । (इससे यह भी अच्छी ही समझी जायगी) ॥५॥

काव्य-सौन्दर्य—लाटानुप्रास (मंगल-भवन अमंगल हारी) । चौपाई

संख्या दो मे दृष्टान्त अलकार । 'मधुकर सरिस सन्त गुणग्राही' मे उपमा ।

मूल—मंगल करनि कलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की ।
गति कूर कविता सरित की ज्यो सरित पावन पाथ की ।।
प्रभु सुजस संगति अनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी ।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी ।।

शब्दार्थ—कूर=टेढी, भद्दी । पाथ=जल । भूति=राख । भव=महादेव । पावनी=पवित्र करने वाली ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते है कि श्रीरघुनाथजी की कथा कल्याण करने वाली और कलियुग के पापो को हरने वाली है । मेरी इस भद्दी कविता रूपी नदी की चाल पवित्र जल वाली नदी (गङ्गाजी) की चाल की भाँति टेढी है । प्रभु श्रीरघुनाथजी के सुन्दर यश के सग से यह कविता सुन्दर तथा सज्जनो को मन को भाने वाली हो जायगी । श्मशान की अपवित्र राख भी श्रीमहादेव जी के अंग के संग मे सुहावनी लगती है और स्मरण करते ही पवित्र करने वाली होती है ।

काव्य-सौन्दर्य—हरिगीतिका छद, भाविक अलकार ।

मूल-दो०–प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम जस सग ।
दारु विचारु कि करइ कोउ बदिअ मलय प्रसग ।।१०(क)।।
स्याम सुरभि पय विसद अति गुनद करहि सब पान ।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहि सुनहि सुजान ।।१०(ख)।।

शब्दार्थ—दारु=लकडी । मलय=चन्दन । सुरभि=गाय । विसद=उज्ज्वल ग्राम्य=गवारू ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते है कि मेरी कविता राम के यश से अ कित होने कारण सबको अत्यन्त प्यारी लगेगी । मलय पर्वत के सग से काष्ठमात्र चन्दन बनकर वदनीय बन जाता है, फिर क्या कोई काष्ठ की तुच्छता का विचार करता है ?

श्यामा गौ का काली होने पर भी दूध उज्ज्वल और बहुत गुणकारी होता है । यही समभकर सब लोग उसे पीते हैं । इसी तरह गवारू भाषा मे होने पर भी श्रीसीता-रामजी के यश को बुद्धिमान लोग बडे चाव से गाते और

सुनते हैं ॥१०(ख)॥

काव्य-सौन्दर्य—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

मूल—चौ०—मनि मानिक मुकुता छवि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥१॥
तैसेहिं सुकवि कवित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं॥
भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई॥२॥
राम चरित सर बिनु अन्हवाएँ। सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ॥
कबि कोबिद अस हृदयँ बिचारी। गावहिं हरि जस कलि मल हारी॥३॥
कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना॥
हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना॥४॥
जौं बरषइ बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुतामनि चारू॥५॥

दो०—जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं राम चरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग॥११॥

शब्दार्थ—अहि=साँप। किरीट=मुकुट। अनत=अन्यत्र। बिधि भवन=ब्रह्म-लोक। बिहाई=छोडकर। सारद=सरस्वती, शारदा। कोविद=पण्डित। प्राकृत=साधारण। गिरा=सरस्वती। पोहिअहिं=पिरोयेंगे। ताग=डोरा, तागा।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मणि, माणिक और मोती क्रमशः साप, पर्वत और हाथी के सिर पर वैसी शोभा नही पाते जितनी वे राजा के मुकुट और युवती स्त्री के शरीर पर शोभा पाते हैं। इसी तरह बुद्धिमानो का कहना है कि सुकवि की कविता भी उत्पन्न और कहीं होती है और शोभा अन्यत्र पाती है। कवि के स्मरण करते ही, उसकी भक्ति के कारण, सरस्वती ब्रह्म-लोक को छोडकर दौडी आती है। उसके दौड कर आने के कारण जो थकावट होती है, वह रामचरित रूपी सरोवर से स्नान करने पर ही मिटती है, दूसरे करोडों उपायो से भी वह दूर नहीं होती। कवि और पण्डित अपने हृदय मे ऐसा विचार करके कलि के पापो को हरने वाले श्रीहरि के यश का ही गान करते हैं।

जब कवि लोग सनासे मनुष्यों का गुण-गान करते हैं, तब सरस्वती

सिर धुनकर पछताने लगती है (पछतावा इसलिए कि वह उनके बुलाने पर दौड़ कर क्यो आई ?) ज्ञानी लोग कहते हैं कि हृदय तो मानो समुद्र है, उसमे मति सीप है और सरस्वती स्वाति–नक्षत्र है। यदि श्रेष्ट विचार रूपी जल की वर्षा हो जाय तो मति रुपी सीप से उत्तम कविता रूपी सुन्दर मुक्तामणि उत्पन्न होती है।

तुलसीदास कहते हैं कि इस प्रकार उत्पन्न हुई कविता रूपी मुक्ता-मणियो को युक्ति से वेध कर तथा राम-नाम रूपी डोरे मे पिरो कर सज्जन लोग अपने निर्मल हृदय मे बड़े प्रेम से धारण करते हैं और शोभा पाते हैं।

काव्य-सौन्दर्य—चौपाई एक मे अनुप्रास और यथासंख्य अलंकार। चौपाई दो मे 'अनत अनत' मे लाटानुप्रास। चौपाई तीन मे रूपक अलकार। चौपाई चार-पाच में सांग रुपक। दोहे मे रूपक अलकार।

मूल–चौ०–जे जनमे कलि काल कराला। करतब बायस बेष मराला ॥
चलत कुपंथ बेद मग छांडे। कपट कलेवर कलि मल भांड़े ॥१॥
बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के ॥
तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरमध्वज धंधक धोरी ॥२॥
जौं अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ ॥
ताते मैं अति अलप बखाने। थोरे महुँ जानिहहिं सयाने ॥३॥
समुझि विविध विधि विनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी ॥
एतेहु पर करिहहिं जे असंका। मोहि ते अधिक ते जड मति रंका ॥४॥
कवि होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ ॥
कह रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा ॥५॥
जेहिं मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखें माहीं ॥
समुझत अमित राम प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई ॥६॥

शब्दार्थ—कराला=भयकर। बयस=कौआ। मराला=हंस। कलेवर =शरीर। किंकर=दास। धोरी=अग्रणी। खोरी=दोष। असका=शका। मति रंका=निर्बुद्धि। निरत=लीन। मारुत=हवा। तूल=रूई। कदराई=हिच-किचाना।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जो इस भयकर कलिकाल मे पैदा हुए हैं तथा जिनकी करनी तो कौए के समान है और वेप हंस जैसा, जो वेद-विहित मार्ग को छोडकर कुमार्ग पर चलते हैं, जो कपट की मूर्ति हैं और कलियुग के पापो के घडे हैं, जो राम के भक्त बनकर लोगो को ठगते हैं, जो धन के दास, क्रोध के पुतले और काम के गुलाम है, जो धीगा-मस्ती करने वाले और धर्म-ध्वजी अर्थात् महादम्भी हैं, जो कपट का धंधा करते हैं—ससार के ऐसे लोगो मे, तुलसीदास कहते हैं, सबसे पहले मेरी गिनती है। यदि मैं अपने सब अवगुणो को कहने लगूँ तो कथा बहुत ही बढ जायगी और मैं पार नही पाऊँगा। इसलिए मैंने अपनी बहुत ही कम अवगुणो का वर्णन किया है। जो समझदार लोग हैं, वे थोडे मे ही बहुत समझ जायेंगे।

तुलसीदास कहते है कि मेरी इस प्रकार की विनय को समझ कर, उस पर ध्यान देकर कोई भी इस कथा को सुनकर दोष नही देगा। इतने पर भी जो लोग शका करेंगे मैं समझता हूँ, वे मुझसे भी अधिक मूर्ख और बुद्धि के कंगाल है। मैं न तो कवि हूँ और न अपने आपको चतुर ही मानता हूँ। मैं अपनी बुद्धि के अनुसार राम के गुण गाता हूँ। कहाँ तो श्रीरामचन्द्रजी के अपार चरित्र और कहाँ संसार के माया-मोह मे फसी मेरी बुद्धि! जिस हवा से सुमेरु जैसे पहाड उड जाते हैं, भला उसके सामने रूई किस गिनती में। जब मेरा ध्यान श्रीराम की असीम प्रभुता की ओर जाता है, तब मेरे मन मे हिचकिचाहट पैदा होती है कि मैं उनकी कथा कह भी सकूँगा या नही।

काव्य-सौन्दर्य—पद-मैत्री और अनुप्रास की सुन्दर छटा। 'विविध विधि' मे यमक। चौपाई संख्या पाच मे निदर्शना अलकार।

मूल—दो०—सारद सेस महेस विधि आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरतर गान ॥१२॥

भावार्थ—सरस्वतीजी, शेपजी, शिवजी ब्रह्माजी, शास्त्र, वेद और पुराण—ये सब 'नेति-नेति' कहकर (पार नही पाकर 'ऐसा नहीं', 'ऐसा नही' कहते हुए) सदा जिनका गुणगान किया करते हैं ॥१२॥

काव्य-सौन्दर्य—विशेष अलकार, 'नेति-नेति' मे पुनरुक्ति-प्रकाश अलंकार।

मूल-चौ० सब जानत प्रभु प्रभुता सोई । तदपि कहें बिनु रहा न कोई ॥
तहाँ वेद अस कारन राखा । भजन प्रभाउ भाँति बहु भाषा ॥१॥
एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानन्द परधामा ॥
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना । तेहिं धरि देह चरित कृत नाना ॥२॥
सो केवल भगतन हित लागी । परम कृपाल प्रनत अनुरागी ॥
जेहि जन पर ममता अति छोहू । जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू ॥३॥
गई बहोर गरीब नेवाजू । सरल सबल साहिब रघुराजू ॥
बुध बरनहिं हरि जस अस जानी । करहिं पुनीत सुफल निज बानी ॥४॥
तेहिं बल मैं रघुपति गुन गाथा । कहिहउँ नाइ राम पद माथा ॥
मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई । तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई॥५॥

शब्दार्थ—भाषा=कहा है । अनीह=इच्छा-रहित । अज=अजन्मा । प्रनत=भक्त, शरणागत । छोहू=कृपा । कोहू=क्रोध । बहोर=लौटाने वाले, फिर से प्राप्त कराने वाले । गरीब-नेवाज़=दीनबन्धु । साहिब=स्वामी ।

भावार्थ—यद्यपि प्रभु श्रीरामचन्द्रजी की प्रभुता को सब ऐसी (अकथनीय) ही जानते हैं तथापि कहे बिना कोई नही रहा । इसमे वेद ने ऐसा कारण बताया है कि भजन का प्रभाव बहुत तरह से कहा गया है । (अर्थात् भगवान् की महिमा का पूरा वर्णन तो कोई कर नही सकता, परन्तु जिससे जितना बन पडे उतना भगवान् का गुणगान करना चाहिये । क्योंकि भगवान् के गुणगानरूपी भजन का प्रभाव बहुत ही अनोखा है, उसका नाना प्रकार से शास्त्रो मे वर्णन है । थोडा-सा भी भगवान् का भजन मनुष्यो को सहज ही तार देता है ।

तुलसीदास परमात्मा के स्वरूप के विषय मे कहते हैं कि परमात्मा एक है, इच्छा-रहित है, नाम-रूप-आकृति हीन है, अजन्मा है, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है । वह परम धाम है, सर्व-व्यापक है और विश्वरूप है । वही दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकार की लीला करता है । उसकी यह लीला केवल भक्तो के हित के लिए ही है । क्योंकि भगवान् परम कृपालु हैं और शरणागत के बडे प्रेमी हैं । उनकी अपने भक्तो पर ममता है, बडी कृपा है और जिस पर वे एक बार कृपा कर देते हैं, फिर उस पर वे कभी क्रोध नही करते ।

वे परमात्मा या प्रभु कौन हैं ? वे श्रीराम हैं जो गई हुई वस्तु को पुनः प्राप्त करा देते है, जो दीनों का पालन करने वाले हैं, जो सरल स्वभाव वाले हैं जो सर्व-शक्तिमान् और सबके स्वामी है। ऐसा समझकर ही बुद्धिमान लोग हरि का यश वर्णन करके अपनी वाणी को पवित्र और उत्तमफल देने वाली बनाते है।

उसी बल से (महिमा का यथार्थ वर्णन नहीं, परन्तु महान् फल देने भजन समझकर भगवत्कृपा के बल पर ही मैं श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में सिर नवाकर श्रीरघुनाथजी के गुणों की कथा कहूंगा। इसी विचार से [वाल्मीकि, व्यास आदि] मुनियों ने पहले हरि की कीर्ति गायी है। भाई ! उसी मार्ग पर चलना मेरे लिये सुगम होगा।

काव्य-सौन्दर्य—'प्रभु, प्रभुता' मे लाटानुप्रास अलंकार।

मूल—दो०—अति अपार जे सरित वर जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं ॥१३॥

शब्दार्थ—सेतु=पुल। पिपीलिकउ=चीटियाँ भी।

भावार्थ—जो अत्यन्त बड़ी श्रेष्ठ नदियाँ हैं, यदि राजा उन पर पुल बँधा देता है तो अत्यन्त छोटी चीटियाँ भी उन पर चढ़ कर बिना ही परिश्रम के पार चली जाती हैं [इसी प्रकार मुनियों के वर्णन के सहारे मैं भी श्रीराम चरित्र का वर्णन सहज ही कर सकूँगा]।

काव्य-सौन्दर्य—सुसिद्धि अलंकार।

मूल-चौ०-एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहउँ रघुपति कथा सुहाई ॥
ब्यास आदि कवि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना ॥१॥
चरन कमल बंदउँ तिन्ह केरे। पुरवहुँ सकल मनोरथ मेरे ॥
कलि के कबिन्ह करउँ परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा ॥२॥
जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषाँ जिन्ह हरि चरित बखाने ॥
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगें। प्रनवउँ सबहि कपट सब त्यागें ॥३॥

शब्दार्थ—पुंगव=श्रेष्ठ। केरे=के। पुरवहुँ=पूरा करें। ग्राम=समूह। अहहिं=हैं।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि इस प्रकार मैं मनोबल प्राप्त करके

श्रीरामचन्द्रजी की सुहावनी कथा को कहूँगा। व्यास आदि जिन श्रेष्ठ कवियों ने बड़े आदर के साथ भगवान् के सुयश का वर्णन किया है, मैं उनके चरण-कमलों को प्रणाम करता हूँ, वे मेरे सब मनोरथों को पूर्ण करें। मैं कलियुग के भी उन सब कवियों को जिन्होंने श्रीरामचन्द्रजी के गुण-समूह का वर्णन किया है, प्रणाम करता हूँ।

जो बड़े बुद्धिमान प्राकृत कवि हैं, जिन्होंने भाषा में ही हरि-चरित्र का वर्णन किया है—इस प्रकार के कवि जो हो गये हैं, मौजूद हैं और जो आगे होंगे, उन सबको मैं सब प्रकार से छल-कपट त्याग कर प्रणाम करता हूँ।

काव्य सौन्दर्य—भाविक और रूपक अलंकार।

मूल—होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू॥
जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कबि करहीं॥४॥
कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥
राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहि अँदेसा॥५॥
तुम्हरी कृपाँ सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सुहावनि टाट पटोरे॥६॥

शब्दार्थ—भनिति=कविता, रचना। भूति=सम्पत्ति। भदेसा=भद्दी। अँदेसा=सन्देह, चिन्ता। पटोरे=रेशम।

भावार्थ—तुलसीदास जिन कवियों का ऊपर उल्लेख किया गया है, उनसे प्रार्थना करते हुए कहते हैं—आप सब प्रसन्न होकर मुझे यह वरदान दीजिए कि मेरी कविता का साधु-समाज में सम्मान हो, क्योंकि जिस कविता का आदर बुद्धिमान लोग नहीं करते हैं, उसकी रचना का श्रम मूर्ख कवि व्यर्थ ही करते हैं।

कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है जो गङ्गाजी की तरह सबका हित करने वाली हो। श्रीरामचन्द्रजी की कीर्ति तो बड़ी सुन्दर (सबका अनन्त कल्याण करने वाली ही) है, परन्तु मेरी कविता भद्दी है। यह असामञ्जस्य है (अर्थात् इन दोनों का मेल नहीं मिलता), इसी की मुझे चिन्ता है।

परन्तु हे कवियो! आपकी कृपा से यह बात भी मेरे लिए सुलभ हो सकती है जैसे कि टाट पर भी रेशम की सिलाई सुहावनी लगती है।

मूल-दो०—सरल कबित कीरति बिमल सोई आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान॥१४(क)॥

सो न होइ बिनु बिमल मति मोहि मति बल अति थोर।
करहु कृपा हरि जस कहउँ पुनि पुनि करउँ निहोर ॥१४(ख)॥
कवि कोविद रघुवर चरित मानस मजु मराल।
बालविनय सुनि सुरुचि लखि मो पर होहु कृपाल ॥१४(ग)॥
सो०—बदउँ मुनि पद कंजु रामायन जेहि निरमयउ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित ॥१४(घ)॥

शब्दार्थ—बयर=बैर। मानस=मानसरोवर। मराल=हंस। कजु=कमल। सखर=(१) खर नाम के राक्षस के सहित (२) कठोर होने पर भी। दूषन=दूषण नाम का एक राक्षस, दोष।

भावार्थ—चतुर पुरुष उसी कविता का आदर करते हैं, जो सरल हो और जिसमे निर्मल चरित्र का वर्णन हो, तथा जिसे सुनकर शत्रु भी स्वाभाविक बैर को भूलकर सराहना करने लगें।

ऐसी कविता बिना निर्मल बुद्धि के नही होती और तुलसीदास कहते हैं कि मुझ मे बुद्धि-बल बहुत कम है। इसलिए बार बार मैं निहोरा करता हूँ कि हे कवियो! आप मुझ पर कृपा करें जिससे मैं हरि-यश का वर्णन कर सकूँ।

तुलसीदास कहते हैं कि हे कवियो और पडितो! आप राम चरित रूपी मानसरोवर के सुन्दर हंस है। आप मेरी सुन्दर रुचि देखकर एव मुझे बालक समझकर मेरी प्रार्थना पर ध्यान दें और मुझ पर कृपा करें।

अब मैं उन वाल्मीकि ऋषि के चरण कमलो की वन्दना करता हूँ जिन्होंने श्री रामायण की रचना की, जो खर (खर नामक राक्षस) सहित होने पर भी कोमल और सुन्दर है (खर अर्थात् कठोर नही है) तथा जो दूषण (राक्षस का नाम) सहित होने पर भी दूषण (दोष) रहित है (खर और दूषण नाम के दो राक्षस थे जो रावण के भाई थे—ये रामचन्द्रजी द्वारा मारे गये थे।)

काव्य-सौन्दर्य—प्रथम दोहे (क) मे विधि अलंकार। (ख) मे पर्यायोक्ति अलंकार। 'नति नति' मे लाटानुप्रास। 'पुनि पुनि' में पुनरुक्तिप्रकाश अलकार। (ग) मे रूपक अलंकार (घ) मे श्लेष से पुष्ट विरोधाभास अलकार।

मूल—बंदउँ चारिउ वेद भव वारिधि बोहित सरिस ।
जिन्हहि न सपनेहुँ खेद वरनत रघुवर विसद जसु ॥१४(ङ)॥
बंदउँ विधि पद रेनु भव सागर जेहि कीन्ह जहँ ।
संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल विष वारुनी ॥१४(च)॥
दो०—विवुध विप्र बुध ग्रह चरन बंदि कहउँ कर जोरि ।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि ॥१४(छ)॥

शब्दार्थ—बोहित=जहाज । सरिस = समान । विसद = निर्मल । धेनु= कामधेनु गौ । वारुनी=मदिरा । विवुध=देवता । बुध=बुद्धिमान, पण्डित । पुर-वहु=पूरा करें ।

भावार्थ—तुलसीदास चारो वेदो की वन्दना करते हैं, जो ससार रूपी समुद्र से पार उतारने के लिए जहाज के समान हैं और जिनको रामचन्द्र जी का पवित्र चरित्र वर्णन करने मे स्वप्न मे भी थकावट नही होती ।

तदनन्तर वे ब्रह्मा जी के चरणो की रज की बंदना करते हैं जिन्होंने ससार-सागर की रचना की है जिसमे से एक ओर सत रूपी अमृत, चन्द्रमा और कामधेनु निकले तथा दूसरी ओर दुष्ट रूपी विष और मदिरा प्रकट हुए ।

तुलसीदास देवता, ब्राह्मण, पण्डित और ग्रह इन सब के चरणो की वन्दना करके हाथ जोड कर कहते हैं कि ये सब मुझ पर प्रसन्न हो और मेरे सारे सुन्दर मनोरथो को पूरा करें ।

काव्य-सौन्दर्य—(ङ) मे रूपक, उपमा और ससृष्टि अलकार । (च) मे रूपक अलंकार । (छ) मे अनुप्रास ।

मूल-चौ०-पुनि बंदउँ सारद सुरसरिता । जुगल पुनीत मनोहर चरिता ॥
मज्जन पान पाप हर एका । कहत सुनत एक हर अविवेका ॥१॥
गुर पितु मातु महेस भवानी । प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी ॥
सेवक स्वामि सखा सिय पी के । हित निरुपधि सब विधि तुलसी के ॥२॥

शब्दार्थ—सारद=सरस्वती । जुगल=दोनो । मज्जन = स्नान करना । निरुपधि=कपट-रहित ।

भावार्थ—फिर मैं सरस्वती जी और देवनदी गंगा जी की वन्दना करता हूँ । दोनों पवित्र और मनोहर चरित्र वाली हैं । एक (गंगा जी) स्नान करने

और जल पीने से पापों को हरती हैं और दूसरी (सरस्वती जी) गुण-और यश कहने और सुनने से अज्ञान का नाश कर देती हैं।

श्री महेश और पार्वती को मैं प्रणाम करता हूँ, जो मेरे गुरु और माता-पिता हैं, जो दीनबन्धु और नित्य दान करने वाले हैं, जो सीतापति श्री रामचन्द्र जी के सेवक, स्वामी और सखा हैं तथा मुझ तुलसीदास का सब प्रकार से कपट-रहित (सच्चा) हित करने वाले हैं।

काव्य-सौन्दर्य—पद-मैत्री और अनुप्रास अलंकार।

मूल—कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा। सावर मंत्र जाल जिन्ह सिरिजा॥
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू॥३॥
सो उमेस मोहि पर अनुकूला। करिहिं कथा मुद मंगल मूला॥
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ बरनउँ राम चरित चित चाऊ॥४॥
भनिति मोरि सिव कृपाँ बिभाती। ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती॥
जे एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥५॥
होइहहिं राम चरन अनुरागी। कलि मल रहित सुमंगल भागी॥६॥
दो०—सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ॥१५॥

शब्दार्थ—गिरिजा=पार्वती। सावर= शावर। एक मंत्र। जाल=समूह। सिरिजा=रचा। उमेस=शिव। पसाउ = कृपा। बिभाती = सुशोभित। पसाउ= प्रसन्नता। फुर=सच।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि कलियुग को देख कर शिव-पार्वती ने संसार के हित के लिए शावर-मंत्र समूह की रचना की। उन मंत्रों के अक्षर बेमेल हैं, जिनका न ठीक तरह से अर्थ ही निकलता है और न उनका जप ही होता है, फिर भी शिव के प्रताप से जिनका प्रभाव प्रत्यक्ष है।

वे ही उमापति शिव मुझ पर प्रसन्न होकर इस राम-कथा को मंगल-मूल बनायेंगे। इस प्रकार पार्वती और शिव का स्मरण करके और उनका प्रसाद प्राप्त करके चाव भरे चित्त से मैं भगवान् राम के चरित्र का वर्णन करता हूँ।

मेरी कविता श्री शिव जी की कृपा से ऐसी सुशोभित होगी, जैसी तारा-गणों के सहित चन्द्रमा के साथ रात्रि शोभित होती है। जो इस कथा को प्रेम

सहित एवं सावधानी के साथ समझ-बूझ कर कहेंगे-सुनेंगे, वे कलियुग के पापो से रहित और सुन्दर कल्याण के भागी होकर श्री रामचन्द्र जी के चरणो के प्रेमी बन जायेंगे।

तुलसीदास कहते हैं कि स्वप्न मे भी यदि शिव-पार्वती मुझ पर प्रसन्न हो तो मैंने जो प्रभाव इस भाषा-कविता का कहा है, वह सब सच हो।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, भाविक, उत्प्रेक्षा और सभावना अलकार।

मूल-चौ०-बंदउँ अवध पुरी अति पावनि। सरजू सरि कलि कलुष नसावनि ॥
प्रनवउँ पुर नर नारि बहोरी। ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी ॥१
सिय निंदक अघ ओघ नसाए। लोक बिसोक बनाइ बसाए ॥
बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची ॥२॥
प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुसारू ॥
दसरथ राउ सहित सब रानी। सुकृत सुमंगल मूरति मानी ॥३॥
करउँ प्रनाम करम मन बानी। करहु कृपा सुत सेवक जानी ॥
जिन्हहि बिरचि बड़ भयउ बिधाता। महिमा अवधि राम पितु माता ॥४॥

शब्दार्थ—सरि=नदी। कलि-कलुस = कलियुग के पापो को नष्ट करने वाली। बहोरी=फिर। सिय-निन्दक=एक धोबी जिसने सीता के चरित्र मे सदेह प्रकट किया था। माची=फैल रही है। प्राची=पूर्व दिशा। तुषारू=पाला।

भावार्थ— तुलसीदास कहते है कि मै अति पवित्र अयोध्यापुरी एवं कलियुग के सम्पूर्ण पापो का विनाश करने वाली सरयू नदी की वन्दना करता हूँ। फिर मैं अयोध्यापुरी के उन नर-नारियो को, जिन पर श्री राम की अत्यधिक कृपा है, प्रणाम करता हूँ।

उन्होने [अपनी पुरी मे रहने वाले] सीता जी की निन्दा करने वाले (धोबी और उसके समर्थक पुर-नर-नारियों) के पाप समूह को नाश कर उनको शोक-रहित बना कर अपने लोक (धाम) मे बसा दिया। मैं कौसल्या रूपी पूर्व दिशा की वन्दना करता हूं, जिसकी कीर्ति समस्त ससार मे फैल रही है।

जहाँ (कौसल्या रूपी पूर्व दिशा) से विश्व को सुख देने वाले और दुष्ट रूपी कमलों के लिए पाले के समान श्री रामचन्द्र जी रूपी सुन्दर चन्द्रमा प्रकट हुए। सब रानियो सहित राजा दशरथ जी को पुण्य और सुन्दर कल्याण की

मूर्ति मान कर मैं मन, वचन और कर्म से प्रणाम करता हूँ। अपने पुत्र का सेवक जान कर वे मुझ पर कृपा करें, जिनको रच कर ब्रह्मा जी ने भी बडाई पायी तथा जो श्री राम जी के माता और पिता होने के कारण महिमा की सीमा हैं।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और रूपक अलकार।

मूल—सो०—बंदउँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ ॥१६॥

भावार्थ—मैं अवध के राजा श्री दशरथ जी की वन्दना करता हूँ, जिनका श्री राम जी के चरणों मे सच्चा प्रेम था, जिन्होंने दीनदयालु प्रभु के बिछुडते ही अपने प्यारे शरीर को मामूली तिनके की तरह त्याग दिया।

काव्य-सौन्दर्य—'तनु तृन' में छेकानुप्रास। उपमा अलंकार।

मूल—चौ०—प्रनवउँ परिजन सहि बिदेहू। जाहि राम पद गूढ सनेहू॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥१॥
प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना॥
राम चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥२॥
बंदउँ लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुख दाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका॥३॥
सेष सहस्रसीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन॥
सदा सो सानुकूल रह मो पर। कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर॥४॥
रिपुसूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी॥
महावीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना॥५॥

शब्दार्थ—परिजन=परिवार। बिदेहू=राजा जनक। गोई=गुप्त। लुबुध =लुभाया हुआ। जलजाता=कमल। सुभग=सुन्दर। सौमित्रि = लक्ष्मण। रिपु-सूदन=शत्रुघ्न। सूर=वीर।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैं परिवार के सहित राजा जनक को प्रणाम करता हूँ, जिनका श्री रामचन्द्र जी के चरणों में गुप्त प्रेम था। उस प्रेम को उन्होंने योग और भोग मे छिपा रखा था, परन्तु वह रामचन्द्र जी को देखते ही प्रकट हो गया।

भाइयो अब मैं सर्व-प्रथम भरत जी के चरणों मे प्रणाम करता हूँ, जिनके नियम और व्रत का वर्णन नही किया जा मकता। उनका मन रामचन्द्र जी के चरण-कमलो मे भौंरे की तरह लुभाया हुआ है जो उनके चरणो के सामीप्य को छोड कर कही नही जाता।

मैं श्री लक्ष्मण जी के चरण-कमलों को प्रणाम करता हूँ, जो शीतल, सुन्दर और भक्तों को सुख देने वाले हैं। श्री रघुनाथ जी की कीर्ति-रूपी विमल पताका मे जिनका (लक्ष्मण जी का) यश [पताका को ऊँचा करके फहराने वाले] दण्ड के समान है।

जो हजार सिर वाले और जगत् के कारण (हजार सिरों पर जगत् को धारण कर रखने वाले) शेष जी है, जिन्होंने पृथ्वी का भय दूर करने के लिए अवतार लिया, वे गुणों की खानि कृपासिन्धु सुमित्रानन्दन श्री लक्ष्मण जी मुझ पर सदा प्रसन्न रहें।

मैं श्री शत्रुघ्न जी के चरण-कमलों को प्रणाम करता हूँ, जो बडे वीर, सुशील और श्री भरत जी के पीछे चलने वाले है। मैं महावीर श्री हनुमान जी की विनती करता हूँ, जिनके यश का श्री रामचन्द्र जी ने स्वय (अपने श्रीमुख से) वर्णन किया है।

काव्य-सौन्दर्य—दूसरी चौपाई मे रूपक से पुष्ट उपमा, तीसरी में रूपक। अन्यत्र अनुप्रास अलकार।

मूल—सो०—प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर ॥१७॥

भावार्थ—मैं पवनकुमार श्री हनुमान जी को प्रणाम करता हूँ, जो दुष्ट-रूपी वन के भस्म करने के लिए अग्निरूप हैं, जो ज्ञान की घनमूर्ति हैं और जिनके हृदय-रूपी भवन में धनुष-बाण धारण किये श्री राम जी निवास करते हैं।

काव्य-सौन्दर्य—परम्परित रूपक अलकार।

मूल—चौ०—कपिपति रीछ निसाचर राजा। अंगदादि जे कीस समाजा॥
बदउँ सबके चरन सुहाए। अधम सरीर राम जिन्ह पाए॥१॥

रघुपति चरन उपासक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेते॥
बंदउँ पद सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे॥२॥
सुक सनकादि भगत मुनि नारद। जे मुनिबर बिग्यान बिसारद॥
प्रनवउँ सबहि धरनि धरि सीसा। करहु कृपा जन जानि मुनीसा॥३॥
जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ॥४॥
पुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बदउँ सब लायक॥
राजिवनयन धरें धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक॥५॥

शब्दार्थ—कपिपति=सुग्रीव। रीछ-राजा=जामवन्त। निशाचर-राजा=विभीषण। कीस=वानर। सुक=शुकदेव मुनि। धरनि=पृथ्वी। सनकादि=ब्रह्मा के चार मानस-पुत्र हैं—सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैं वानरो के राजा सुग्रीव, रीछो के राजा जामवन्त, राक्षसों के राजा विभीषण और अगद आदि वानर-समाज की वन्दना करता हूँ। इन लोगो ने अधम शरीर में भी राम को प्राप्त कर लिया। (नीच योनि में जन्म लेकर भी भगवद्भक्ति प्राप्त की।)

राम के चरणो की उपासना करने वाले जितने भी पशु-पक्षी, देवता, मनुष्य और राक्षस हैं, मैं उन सबके चरण-कमलो की उपासना करता हूँ—ये सब बिना कारण ही राम के दास हैं।

शुकदेव, सनक, सनन्दन आदि, नारद मुनि तथा अन्य जितने भी भक्त और ज्ञानी एवं श्रेष्ठ मुनि हैं, मैं पृथ्वी पर सिर झुका कर उन सबको प्रणाम करता हूँ। हे मुनीश्वरो! आप मुझे अपना दास समझ कर कृपा करें।

राजा जनक की पुत्री के, जो जगतमाता और करुणा-निधान भगवान राम की प्रिया हैं, दोनों चरण-कमलों को मनाता हूँ, जिनकी कृपा से मुझे निर्मल बुद्धि प्राप्त होगी।

फिर मैं मन, वचन और कर्म से कमल-नयन धनुष-बाणधारी, भक्तो की विपत्ति का नाश करने और उन्हे सुख देने वाले भगवान् श्री रघुनाथ जी के सर्व-समर्थ चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और रूपक अलकार।

मूल—दो०—गिरा अरथ जल वीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न ।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥१८॥

शब्दार्थ—गिरा=वाणी । वीचि=लहर । खिन्न=दीन-दुखी ।

भावार्थ — तुलसीदास कहते है कि जिस तरह वाणी और अर्थ तथा जल और जल की लहर कहने में ही भिन्न-भिन्न हैं, वास्तव में वे एक ही है, उसी तरह सीता और राम दोनो मे कोई भिन्नता नही है, मैं उनके चरणो की वन्दना करता हूँ, जिन्हे दीन-दुखी बहुत ही प्रिय हैं ।

काव्य-सौन्दर्य—उपमा, दृष्टान्त और लाटानुप्रास अलकार ।

मूल—चौ०—बंदउँ नाम राम रघुवर को । हेतु कृसानु भानु हिमकर को ॥
विधि हरि हरमय वेद प्रान सो । अगुन अनूपम गुन निधान सो ॥१॥

भावार्थ—मैं श्री रघुनाथ जी के नाम 'राम' की वन्दना करता हूँ, जो कृशानु (अग्नि), भानु (सूर्य) और हिमकर (चन्द्रमा) का हेतु अर्थात् 'र', 'आ' और 'म' रूप मे बीज है । वह 'राम' नाम ब्रह्मा, विष्णु और शिव-रूप है । वह वेदों का प्राण है, निर्गुण उपमा-रहित और गुणों का भण्डार है ।

मूल—महामंत्र जोइ जपत महेसू । कासीं मुकुति हेतु उपदेसू ॥
महिमा जासु जान गन राऊ । प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ ॥२॥

भावार्थ—जिस राम-नाम रूपी महामन्त्र को शिव जी सदा जपा करते हैं और जिसके उपदेश के प्रभाव से वे काशी में मुक्ति देते है, जिस राम-नाम की महिमा को गणेश जी जानते है और वे इस राम-नाम के प्रभाव से ही सब देवताओं में पहले पूजे जाते हैं ।

टिप्पणी—देवताओं मे सर्व-प्रथम किसकी पूजा की जाय, यह विवाद खडा होने पर ब्रह्मा ने कहा—जो सबसे पहले पृथ्वी की परिक्रमा कर आवे, वही प्रथम पूजा जाया करे । सब देवता अपने-अपने वाहनो पर सवार होकर पृथ्वी पर परिक्रमा करने चल दिये । गणेश जी भी चूहे पर सवार होकर चल पडे, परन्तु वे सब से पीछे रह गये । मार्ग मे नारदजी मिले । नारदजी ने गणेशजी से कहा—'राम-नाम' लिखकर परिक्रमा करलो और पितामह के पास चले जाओ । गणेश जी ने ऐसा ही किया । ब्रह्मा ने राम-नाम की महिमा जानकर गणेशजी को ही प्रथम पूज्यनीय ठहराया ।

मूल—जान आदिकवि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू।
सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेई पिय संग भवानी ॥३॥

भावार्थ—आदिकवि श्रीवाल्मीकि जी राम-नाम के प्रताप को जानते हैं, जो उल्टा नाम ('मरा', 'मरा') जप कर पवित्र हो गये। श्री शिवजी के इस वचन को सुनकर कि एक राम-नाम सहस्र नाम के समान है, पार्वती जी सदा अपने पति (श्री शिवजी) के साथ राम-नाम का जप करती रहती हैं।

टिप्पणी—(१) आदि कवि वाल्मीकि जाति से ब्राह्मण थे, इनका नाम रत्नाकर था। ये डाकू बन गये थे—लूट मार कर पेट भरते थे। एक ऋषि के उपदेश से ये राम का उल्टा नाम—'मरा, मरा' जपने लगे। ज्ञानोदय होने पर इन्होंने डाकू वृत्ति त्याग दी और साधु बन गये। सर्व-प्रथम रामायण की रचना इन्होंने ही की थी। ये 'आदि कवि' कहलाते हैं और इनकी रची रामायण 'आदि काव्य'।

उसकी ज्वाला से देवता जलने लगे। शिवजी ने राम का नाम लेकर विप-पान कर लिया। उनके कण्ठ मे पहुँचते ही राम-नाम के प्रभाव से विप अमृत हो गया।

मूल—दो०—बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास ॥१६॥

भावार्थ—श्री रघुनाथ जी की भक्ति वर्षा-ऋतु है, तुलसीदास जी कहते हैं कि उत्तम सेवकगण धान हैं और 'राम' नाम के दो सुन्दर अक्षर (रा और म) सावन-भादो के महीने हैं।

काव्य-सौन्दर्य—अलकार अनुप्रास और रूपक।

मूल—चौ०—आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥१॥
कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती॥२॥
नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता॥
भगति सुतिय कल करन बिभूषन। जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन॥३॥
स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम धर बसुधा के॥
जन मन मंजु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से॥४॥

शब्दार्थ—आखर=अक्षर। बरन-बिलोचन=वर्णों के नेत्र। जोऊ=जो। बिलगाती=भिन्न प्रतीत होती है। सघाती=साथ रहने वाले। कल=सुन्दर। करन-बिभूषण=कर्णफूल। पूषन=सूर्य। कमठ=कच्छप। कंज=कमल। जीह=जीभ। हलधर=बलराम।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि राम के नाम के ये दोनो अक्षर 'र' और 'म' मधुर और मनोहर हैं। ये सब वर्णों के नेत्र है और भक्तो के जीवन हैं। स्मरण करने के लिए ये सबको सुलभ हैं—हर एक बिना किसी कठिनाई के इनका स्मरण कर सकता है, ये सबको सुख देने वाले हैं। इस लोक मे ये लाभ को देते है और परलोक सुधारते हैं—मुक्ति देने वाले हैं।

ये कहने, सुनने और स्मरण करने मे बहुत ही अच्छे (सुन्दर और मधुर) हैं, तुलसीदास को तो श्रीराम-लक्ष्मण के समान प्यारे है। इनका ('र' और

'म' का) अलग-अलग वर्णन करने मे प्रीति बिलगाती है (अर्थात् बीज-मन्त्र की दृष्टि से इनके उच्चारण, अर्थ और फल में भिन्नता दीख पडती है), किन्तु ये जीव और ब्रह्म के समान सहज रूप से साथ-साथ रहने वाले है—ये एक-रस और एकरूप हैं।

ये दोनो अक्षर नर-नारायण के समान सुन्दर भाई हैं, ये जगत् का पालन और विशेष रूप से भक्तो की रक्षा करने वाले हैं। ये भक्तिरूपिणी सुन्दर स्त्री के कानो के सुन्दर आभूषण (कर्णफूल) हैं और जगत् के हित के लिए निर्मल चन्द्रमा और सूर्य हैं।

ये सुन्दर गति (मोक्ष) रूपी अमृत के स्वाद और तृप्ति के समान हैं, कच्छप और शेष जी के समान पृथ्वी के धारण करने वाले हैं, भक्तो के मन-रूपी सुन्दर कमल मे विहार करने वाले भौंरे के समान हैं और जीभ-रूपी यशोदा जी के लिए श्रीकृष्ण और बलराम जी के समान [आनन्द देने वाले] हैं।

काव्य-सौन्दर्य अनुप्रास, उपमा, रूपक और दृष्टान्त अलंकार।

मूल दो०—एकु छत्रु एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ ॥२०॥

भावार्थ– तुलसीदास जी कहते हैं—श्री रघुनाथ जी के नाम के दोनों अक्षर बड़ी शोभा देते हैं, जिनमें से एक (रकार) छत्र-रूप (रेफ ') से और दूसरा (मकार) मुकुटमणि (अनुस्वार ') रूप से सब अक्षरों के ऊपर विराजमान हैं।

पीछे सेवक चलता है, उसी प्रकार नाम के पीछे नामी चलता है। राम स्वय अपने नाम 'राम' का अनुगमन करते हैं, नाम लेते ही उपस्थित हो जाते है।

नाम और रूप—ईश्वर की ये दो उपाधि है ये दोनो अकथनीय और अनादि है और सुन्दर शुद्ध भक्ति-युक्त बुद्धि मे ही इनका दिव्य स्वरूप जानने मे आता है।

नाम और रूप, इन दोनो मे कौन बडा है और कौन छोटा यह कहना अपराध है। अत गुण-भेद के अनुसार साधु-जन स्वय इसे समझ लेंगे। रूप नाम के अधीन देखा जाता है, नाम के बिना रूप का ज्ञान नही होता।

मूल—रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें।।
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें।।३।।
नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी।।
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी।।४।।

शब्दार्थ—करतल गत=हथेली पर रखा हुआ। सुसाखी=सुन्दर साक्षी। दुभाषी=दुभाषिया।

भावार्थ—कोई-सा विशेष रूप बिना उसका नाम जाने हथेली पर रखा हुआ भी पहिचाना नही जा सकता और रूप के बिना देखे भी नाम का स्मरण किया जाय तो विशेष प्रेम के साथ वह रूप हृदय मे आ जाता है।

नाम और रूप की गति की कहानी विशेपता की कथा) अकथनीय है। वह समझने मे सुखदायक है, परन्तु उसका वर्णन नही किया जा सकता। निर्गुण और सगुण के बीच मे नाम सुन्दर साक्षी है और दोनो का यथार्थ ज्ञान कराने वाला चतुर दुभाषिया है।

मूल—दो०—राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर।।२१।।

भावर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं, यदि तू भीतर और बाहर दोनो ओर उजाला चाहता है तो मुख-रूपी द्वार की जीभ-रूपी देहली पर राम-नाम रूपी मणि-दीपक को रख।

काव्य-सौन्दर्य—रूपक अलकार।

मूल—चौ०—नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥१॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥२॥

शब्दार्थ—जीहँ=जीभ, जिह्वा। बिरति=विरक्त। बिरंचि-प्रपंच=ब्रह्मा द्वारा रचा गया यह दृश्य जगत्। अनामय = रोग-रहित। लय लाएँ=लौ लगा कर। अनिमादिक=अणिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य आदि आठ सिद्धियाँ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि ब्रह्मा के द्वारा रचे गए इस प्रपंच (दृश्यमान जगत्) से मुक्त हुए विरक्त योगीजन इस नाम को ही जीभ से जपते हुए मोह रूपी रात्रि में जागते रहते हैं और ब्रह्म-सुख का अनुभव करते हैं, जो नाम और रूप से रहित, अनुपम, अनिर्वचनीय और अनामय है।

जो परमात्मा के गूढ़ रहस्य को (यथार्थ महिमा को) जानना चाहते हैं वे (जिज्ञासु) भी नाम को जीभ से जप कर उसे जान लेते हैं। [लौकिक सिद्धियों के चाहने वाले अर्थार्थी] साधक लौ लगा कर नाम का जप करते हैं और अणिमादि [आठों] सिद्धियों को पाकर सिद्ध हो जाते हैं।

(जिह्वा के द्वारा नाम जप कर योगी-जन ब्रह्मानन्द प्राप्त करते हैं और साधक सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं।)

मूल—जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥३॥

भावार्थ—[संकट से घबड़ाये हुए] आर्त भक्त नाम-जप करते हैं तो उनके बड़े भारी बुरे-बुरे संकट मिट जाते हैं और वे सुखी हो जाते हैं। जगत् में चार प्रकार के (१-अर्थार्थी—धनादि की चाह से भजने वाले, २-आर्त—संकट की निवृत्ति के लिए भजने वाले, ३-जिज्ञासु—भगवान् को जानने की इच्छा से भजने वाले ४-ज्ञानी—भगवान् को तत्व से जान कर स्वाभाविक ही प्रेम से भजने वाले) रामभक्त हैं और चारों ही पुण्यात्मा, पाप-रहित और उदार हैं।

मूल—चहू चतुर कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा॥
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥४॥

शब्दार्थ—अधार=आधार । श्रुति=वेद । आन=अन्य ।

भावार्थ—इन चारो ही चतुर भक्तो को नाम का ही आधार है, इनमे ज्ञानी भक्त प्रभु को विशेष रूप से प्रिय हैं । यो तो चारो युगो मे और चारो ही वेदो मे नाम का प्रभाव है, परन्तु कलियुग मे विशेष रूप से है । इसमे तो [नाम को छोड कर] दूसरा कोई उपाय ही नही है ।

मूल—दो०—सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन ।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन ॥२२॥

शब्दार्थ—रस=आनन्द । पियूप=अमृत । ह्रद=सरोवर ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जो लोग सब प्रकार की कामनाओ से रहित हैं और राम-भक्ति के आनन्द मे मग्न हैं, उन्होने भी नाम के सुन्दर प्रेम रूपी अमृत के सरोवर में अपने मन को मछली बना रखा है, अर्थात् वे नाम रूपी सुधा का निरन्तर आस्वादन करते रहते हैं ।

काव्य-सौन्दर्य परम्परित रूपक अलकार ।

मूल—चौ०—अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥
मोरें मत बड नामु दुहू तें । किए जेहि जुग निज बस निज बूतें ॥१॥
प्रौढि सुजन जनि जानहिं जन की । कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की ॥
एकु दारुगत देखिअ एकू । पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥२॥
उभय अगम जुग सुगम नाम तें । कहेउँ नामु बड ब्रह्म राम तें ॥
ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी । सत चेतन घन आनँद रासी ॥३॥
अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी । सकल जीव जग दीन दुखारी ॥
नाम निरूपन नाम जतन तें । सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें ॥४॥

शब्दार्थ—जुग=दोनो । बूतें=बल । प्रौढि=साहस । दारुगत = काठ के भीतर । अछत=रहते हुए ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि ब्रह्म के दो स्वरूप है निर्गुण और सगुण । ये दोनों ही अकथनीय, अथाह, अनादि और अनुपम है, किन्तु मेरी सम्मति मे नाम इन दोनो से बडा है, जिसने अपने बल से निर्गुण और सगुण दोनो को अपने वश मे कर रखा है ।

तुलसीदास कहते है कि जो सज्जन है, वे इस बात को मेरा साहस या

धृष्टता न समझें। मैं अपने मन के विश्वास के आधार पर प्रेम और रुचि की बात कहता हूँ।

दोनो प्रकार के ब्रह्म का ज्ञान अग्नि के समान है। निर्गुण उस अप्रकट अग्नि के समान है जो काठ के अन्दर है, परन्तु दीखती नही, और सगुण उस प्रकट अग्नि के समान है जो प्रत्यक्ष दीखती है। [तत्त्वत दोनों एक ही हैं, केवल प्रकट-अप्रकट के भेद से भिन्न मालूम होती हैं। इसी प्रकार निर्गुण और सगुण तत्त्वत एक ही है। इतना होने पर भी] दोनो ही जानने में बडे कठिन है, परन्तु नाम से दोनो सुगम हो जाते है। इसी से मैंने नाम को [निर्गुण] ब्रह्म से और [सगुण] राम से बडा कहा है। ब्रह्म व्यापक है, एक है, अविनाशी है, सत्ता, चैतन्य और आनन्द की घन-राशि है।

ऐसे विकार-रहित प्रभु के हृदय मे रहते हुए भी ससार के सब जीव दीन और दुखी है। नाम का निरूपण करने से, अर्थात् नाम के यथार्थ स्वरूप, महिमा, रहस्य और प्रभाव के जान लेने पर श्रद्धा-पूर्वक नाम के जप करने से वही ब्रह्म इस प्रकार प्रकट हो जाता है जैसे रतन के जानने से उसका मूल्य और महत्व प्रकट हो जाता है।

काव्य-सौन्दर्य — अनुप्रास, लाटानुप्रास, उपमा, उल्लेख और उदाहरण अलकार।

मूल—दो०—निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड राम तें निज बिचार अनुसार ॥२३॥

भावार्थ—तुलसीदास कहते है कि इस प्रकार निर्गुण से नाम बडा है। बिना नाम निर्गुण का कोई विशेष महत्व नही। मेरे विचारो के अनुसार इसी प्रकार नाम सगुण राम से भी बडा है।

मूल-चौ०—राम भगत हित नर तनु धारी। सहि सकट किए साधु सुखारी॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहि मुद मंगलबासा॥१॥
राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
रिषि हित राम सुकेतुसुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी॥२॥
सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा॥
भंजेउ राम आपु भव चापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू॥३॥

दडक वन प्रभु कीन्ह सुहावन। जन मन अमित नाम किए पावन॥
निसिचर निकर दले रघुनदन। नामु सकल कलि कलुष निकदन॥४॥

शब्दार्थ—अनयासा=सहज ही मे। वासा=घर। तापस तिय=अहल्या (गौतम ऋषि की पत्नी)। सुकेतु-सुता=ताडका। विवाकी=समाप्त। भव-चापू=शिवधनुष। निकर=समूह। कलुष=पाप। निकदन=नाश करना। सवरी=शवरी (एक भीलनी जिसके झूठे वेर राम ने खाये थे।) गीध=जटायु नाम का गिद्ध पक्षी जिसने रावण से सीता को छुडाने के लिए प्रत्यन किया था। सुगति=मुक्ति। उधारे=उद्धार किया। गाथ=कथा।

भावार्थ—(इन पक्तियो मे तुलसीदास ने उन कारणो का उल्लेख किया है जो नाम को राम से भी बडा बताते हैं।) तुलसीदास कहते है कि राम ने भक्तो के लिए नर-तन धारण किया, अनेक सकट सह कर उन्होने साधुओ को सुखी बनाया। परन्तु भक्त लोग प्रेम से उनके नाम का जप करके सहज ही मे आनन्द और मगल के घर बन जाते हैं।

श्रीरामजी ने एक तपस्वी स्त्री (अहिल्या) को ही तारा, परन्तु नाम ने करोडो दुष्टो की बिगाडी बुद्धि को सुधार दिया। श्रीरामजी ने ऋषि विश्वामित्र के हित के लिये एक सुकेतु यक्ष की कन्या ताडका की सेना और पुत्र (सुबाहु) सहित समाप्ति की, परन्तु नाम अपने भक्तो के दोष दु ख और दुराशाओ का इस तरह नाश कर देता है जैसे सूर्य रात्रि का। श्रीरामजी ने तो स्वय शिवजी के धनुष को तोडा, परन्तु नाम का प्रताप ही ससार के सब भयो का नाश करने वाला है।

प्रभु श्रीरामजी ने [भयानक] दण्डक वन को सुहावना बनाया, परन्तु नाम ने असख्य मनुष्यो के मनो को पवित्र कर दिया। श्रीरघुनाथजी ने राक्षसो के समूह को मारा, परन्तु नाम तो कलियुग के सारे पापो की जड उखाडने वाला है।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, सहोक्ति, उदाहरण आदि अलकार।

मूल-दो०-सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ॥२४॥

शब्दार्थ—श्रीरघुनाथजी ने तो शवरी, जटायु आदि उत्तम सेवको को

ही मुक्ति दी, परन्तु नाम ने अगनित दुष्टो का उद्धार किया। नाम के गुणों की कथा वेदो मे प्रसिद्ध है।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलंकार।

मूल-चौ०–राम सुकंठ विभीषन दोऊ। राखे सरन जान सबु कोऊ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे। लोक बेद बर बिरिद बिराजे॥१॥
राम भालु कपि कटकु बटोरा। सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा॥
नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥२॥
राम सकुल रन रावनु मारा। सीय सहित निज पुर पगु धारा॥
राजा रामु अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बर बानी॥३॥
सेवक सुमिरत नामु सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती॥
फिरत सनेहँ मगन सुख अपनें। नाम प्रसाद सोच नहिं सपनें॥४॥
दो०–ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥२५॥

शब्दार्थ—सुकंठ=सुग्रीव। बिरिद=यश। नेवाजे=कृपा की। कटकु=सेना। बानी=सरस्वती। बटोरा=एकत्र की।

भावार्थ—श्रीरामजी ने सुग्रीव और विभीषण दो को ही अपनी शरण रखा, यह सब कोई जानते हैं, परन्तु राम के नाम ने अनेक गरीबो पर कृपा की है। नाम का यह सुन्दर यश लोक और वेद मे विशेष रूप से विदित है।

श्रीरामजी ने तो भालू और वन्दरों की सेना एकत्र की और समुद्र पर पुल बांधने के लिये थोडा परिश्रम नहीं किया, परन्तु राम का नाम लेते ही संसार-समुद्र सूख जाता है। सज्जनगण! मन मे विचार कीजिये [कि दोनो मे कौन बड़ा है]।

श्रीरामचन्द्रजी ने कुटुम्ब सहित रावण को युद्ध मे मारा, तब सीता सहित उन्होंने अपने नगर (अयोध्या) मे प्रवेश किया। राम राजा हुए, अवध उनकी राजधानी हुई, देवता और मुनि सुन्दर वाणी से जिनके गुण गाते हैं। परन्तु सेवक (भक्त) प्रेमपूर्वक नाम के स्मरणमात्र से बिना परिश्रम मोह की प्रबल सेना को जीत कर प्रेम-मग्न होकर अपने सुख मे विचरते हैं। नाम की कृपा से स्वप्न मे भी उन्हें कोई चिन्ता नहीं सताती।

इस प्रकार नाम [निर्गुण] ब्रह्म और [सगुण] राम दोनो से बडा है। यह वरदान देने वालो को भी वर देने वाला है। श्रीशिवजी ने अपने हृदय मे यह जानकर ही सौ करोड रामचरित्र मे से इस 'राम' नाम को [साररूप से चुनकर] ग्रहण किया है।

काव्य-सौन्दर्य—भवसिंधु मे रूपक अलकार। 'वर' शब्द की उसी अर्थ मे आवृत्ति होने से लाटानुप्रास अलकार। 'वेद वर विरिद विराजे' मे वृत्यनुप्रास। 'राजा रामु' तथा 'सुजन मन' मे छेकानुप्रास अलकार।

मूल-चौ०—नाम प्रसाद संभु अविनासी। साजु अमगल मंगल रासी॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥१॥
नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरिहर प्रिय आपू॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥२॥
ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥३॥
अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहौं कहाँ लगि नाम बडाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥४॥
दो०—नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु॥२६॥

शब्दार्थ—साजु=वेश-भूषा। प्रसादू=कृपा। ठाऊँ=स्थान। सगलानि=ग्लानि के साथ। अपतु=पतहीन, नीच। मुकुत=मुक्त। भाग तें=भाग के समान निकृष्ट।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि नाम की ही कृपा से शिवजी अविनाशी हैं, वे अमंगलीक वेश-भूषा धारण किये रहने पर भी मगल की राशि माने जाते है। शुकदेवजी, सनक-सनन्दन आदि ब्रह्मा के मानस-पुत्र, सिद्ध लोग मुनिवृन्द एव योगीगण सब नाम के प्रसाद से ही ब्रह्मानन्द भोगते हैं।

नाम के प्रताप को नारदजी ने जाना है। हरि सारे संसार को प्यारे हैं, हरि को हर प्यारे हैं और नारदजी हरि और हर दोनो को प्यारे हैं। प्रहलाद की तरफ देखिए।। नाम जपने से भगवान ने प्रहलाद पर विशेष कृपा की जिससे वे भक्त-शिरोमणि बन गये।

ध्रुव ने विमाता के वचनो से दुखी होकर भगवान के नाम को जपा और एक अचल और अनुपम स्थान प्राप्त किया। हनुमान ने पवित्र नाम का स्मरण करके ही राम को अपने वश मे कर लिया।

नाम का प्रभाव अमित है। अजामिल जैसे नीच व्यक्ति, गज और गणिका (वेश्या आदि भी हरि के नाम के प्रभाव से मुक्त हो गये। नाम की महिमा कितनी है, स्वयं राम भी नाम के गुणो का वर्णन नही कर सकते हैं, मैं तो उन्हें कह ही कैसे सकता हूँ।

तुलसीदास कहते हैं कि कलियुग मे राम का नाम कल्पतरु (मनचाहा पदार्थ देने वाला) और कल्याण का निवास (मुक्ति का घर) है, जिसका स्मरण करने से भाग-सा (निकृष्ट) तुलसीदास तुलसी के समान [पवित्र] हो गया अथवा तुलसी-पत्र के समान भगवान् का प्यारा हो गया।

काव्य सौन्दर्य—अनुप्रास, लाटानुप्रास (तुलसी तुलसीदास मे) 'नाम राम को निवासु' मे रूपक अलकार।

मूल—चौ० चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका॥
बेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू॥१॥
ध्यानु प्रथम जुग मख विधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥२॥

शब्दार्थ—बिसोका=शोक-रहित। सुकृत=पुण्य। मख=यज्ञ। पयोनिधि=समुद्र।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि [केवल कलियुग की ही बात नहीं है,] चारो युगो मे, तीनो कालो मे और तीनो लोको मे नाम को जपकर जीव शोक-रहित हुए हैं। वेद, पुराण और सतों का मत यही है कि समस्त पुण्यों का फल श्रीरामजी मे [या राम नाम मे] प्रेम होना है।

पहले (सत्य) युग मे ध्यान से, दूसरे (त्रेता) युग में यज्ञ से और द्वापर में पूजन से भगवान् प्रसन्न होते हैं, परन्तु कलियुग केवल पाप की जड और मलिन है, इसमें मनुष्यों का मन पाप रूपी समुद्र मे मछली बना हुआ है (अर्थात् पाप से कभी अलग होना ही नही चाहता, इसमे ध्यान, यज्ञ और पूजन नहीं बन सकते)।

काव्य-सौन्दर्य—'पाप पयोनिधि जन मन मीना' मे परम्परित रूपक अलकार।

मूल—नाम कामतरु काक कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥३॥
नहिं कलि करम न भगति विवेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥
कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू॥४॥

शब्दार्थ—समन=नाश करने वाला। अभिमत=मनोवाछित फल। कालनेमि=एक राक्षस का नाम।

भावार्थ—ऐसे कराल (कलियुग के) काल मे तो नाम ही कल्पवृक्ष है, जो स्मरण करते ही संसार के सब जजालो को नाश कर देने वाला है। कलियुग मे यह राम नाम मनोवाछित फल देने वाला है, परलोक का परम हितैषी और इस लोक का माता पिता है अर्थात् परलोक मे भगवान् का परमधाम देता है और इस लोक में माता-पिता के समान सब प्रकार से पालन और रक्षण करता है)।

तुलसीदास कहते हैं कि कलियुग में न कर्म सहायक होता है और न भक्ति ही और न ज्ञान ही कुछ फल देना है। कलियुग में तो केवल राम का नाम ही आधार है। कपट की खान कलिरूपी कालनेमि राक्षस को मारने के लिए केवल राम-नाम रूपी हनुमान ही चतुर एव समर्थ है अर्थात् कलि का प्रभाव केवल राम-नाम से ही नष्ट हो सकता है।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और परम्परित रूपक अलकार।

मूल-दो०—राम नाम नर केसरी कनककसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल॥२७॥

शब्दार्थ——नर-केसरी=नृसिंह। कनककसिपु=हिरण्यकशिपु। सुरसाल=देवताओ का शत्रु। दलि=नष्ट करके।

भावार्थ—राम नाम श्रीनृसिंह भगवान् है, कलियुग हिरण्यकशिपु है और जप करने वाले जन प्रहलाद के समान हैं, यह राम नाम देवताओ के शत्रु (कलियुग-रूपी दैत्य) को मारकर जप करने वालो की रक्षा करेगा॥२७॥

काव्य सौन्दर्य—रूपक से पुष्ट उदाहरण अलकार।

मूल-चौ०-भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥
सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा । करउँ नाइ रघुनाथहि माथा ॥१॥
मोरि सुधारिहि सो सब भाँती । जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती ॥
राम सुस्वामि कुसेवकु मोसो । निज दिसि देखि दयानिधि पोसो ॥२॥

शब्दार्थ—भायँ-कुभायँ=अच्छे भाव या बुरे भाव से । अनख=क्रोध । नाइ=झुकाकर । अघाती=तृप्त होती । पोसो=पालन करो ।

शब्दार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिस राम के नाम को प्रेम या भक्ति से अथवा वैर-भावना से, क्रोध से या आलस्य से किसी भी तरह जपते ही दशों दिशाओं मे मनुष्य का कल्याण होता है, उसी राम-नाम का स्मरण करके तथा श्रीरघुनाथजी को प्रणाम कर मैं उनके गुणो का वर्णन करता हूँ । वे भगवान राम मेरी बिगडी सब प्रकार से सुधार लेंगे वे इतने कृपालु हैं कि उनकी कृपा करते नहीं अघाती । तुलसीदास कहते हैं कि राम जैसा उत्तम स्वामी और मुझ जैसा बुरा सेवक । फिर भी दयानिधि ने (मेरी ओर न देख कर) अपनी ही ओर देखा और मेरा पालन किया है ।

काव्य-सौन्दर्य—लाटानुप्रास तथा अनुप्रास अलकार ।

मूल—लोकहुँ वेद सुसाहिब रीति । बिनय सुनत पहिचानत प्रीति ॥
गनी गरीब ग्राम नर नागर । पंडित मूढ़ मलीन उजागर ॥३॥
सुकबि कुकबि निज मति अनुहारी । नृपहि सराहत सब नर नारी ॥
साधु सुजान सुसील नृपाला । ईस अंस भव परम कृपाला ॥४॥
सुनि सनमानहि सबहि सुबानी । भनिति भगति नति गति पहिचानी ॥
यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ । जान सिरोमनि कोसलराऊ ॥५॥
रीझत राम सनेह निसोतें । को जग मंद मलिनमति मोतें ॥६॥

शब्दार्थ—सुसाहिब=स्वामी । गनी=अमीर । उजागर=यशस्वी । भव=उत्पन्न । भनिति=कथन, वाणी । नति=विनय । प्राकृत=ससारी । निसोतें=सच्च, विशुद्ध ।

भावार्थ—लोक और वेद में भी अच्छे स्वामी की यही रीति प्रसिद्ध है कि वह विनय सुनते ही प्रेम को पहचान लेता है । अमीर-गरीब, गँवार, नगर निवासी, पण्डित-मूर्ख, बदनाम-यशस्वी –

सुकवि-कुकवि, सभी नर-नारी अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार राजा की सराहना करते हैं। और साधु बुद्धिमान् सुशील, ईश्वर के अंश से उत्पन्न कृपालु राजा –

सबकी सुनकर और उनकी वाणी, भक्ति, विनय और चाल को पहचान कर सुन्दर (मीठी) वाणी से सबका यथायोग्य सम्मान करते है। यह स्वभाव तो ससारी राजाओ का है, कोसलनाथ श्रीरामचन्द्रजी तो चतुरशिरोमणि हैं।

श्रीरामजी तो विशुद्ध प्रेम से ही रीझते हैं, पर जगत् मे मुझ से बढकर मूर्ख और मलिन बुद्धि और कौन होगा ?

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, लाटानुप्रास अलकार।

मूल–दो०–सठ सेवक की प्रीति रुचि रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किए जलजान जेहिं सचिव सुमति कपि भालु ॥२८(क)॥

तथापि कृपालु श्रीरामचन्द्रजी मुझ दुष्ट सेवक की प्रीति और रुचि को अवश्य रक्खेंगे, जिन्होने पत्थरो को जहाज और बन्दर-भालुओ को बुद्धिमान् मन्त्री बना लिया ॥२८(क ॥

हौंहु कहावत सबु कहत राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास ॥२८(ख)॥

शब्दार्थ—उपल=पत्थर। जलजान=जहाज। सुमति=बुद्धिमान। उपहास=निन्दा।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यद्यपि मैं दुष्ट हूँ, फिर भी मुझे आशा है कि कृपालु राम मुझ सेवक की प्रीति और रुचि को अवश्य रखेंगे। क्योंकि उन्होने पत्थरो को जलमान (जहाज) बना दिया था तथा बन्दरो और रीछो को बुद्धिमान मन्त्री बना लिया था।

सब लोग मुझे श्रीरामजी का सेवक कहते है और मैं भी [बिना लज्जा-सकोच के] कहलाता हूँ (कहने वालो का विरोध नही करता), कृपालु श्रीरामजी इस निन्दा को सहते है कि श्रीसीतानाथजी-जैसे स्वामी का तुलसीदास-सा सेवक है दोनो मे जमीन-आसमान का अन्तर है।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलकार।

मूल-चौ०-अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी ॥
समुझि सहम मोहि अपडर अपनें। सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपनें ॥१॥
सुनि अवलोकि सुचित चख चाही। भगति मोरि मति स्वामि सराही ॥
कहत नसाइ होइ हियँ नीकी। रीझत राम जानि जन जी की ॥२॥
रहित न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की ॥
जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली।।३॥

शब्दार्थ—ढिठाई=धृष्टता। खोरी=दोष। सुधि=स्मरण। चख=नेत्र। नसाइ=बुरी। जन जी की=भक्त के हृदय की। सय=सौ। सुकंठ=सुग्रीव।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यह मेरी बहुत बडी ढिठाई और दोष है, मेरे पाप को सुनकर नरक ने भी नाक सिकोड ली है (अर्थात् नरक मे भी मेरे लिये ठौर नही है। यह समझकर मुझे अपने ही कल्पित डर से डर हो रहा है, किन्तु भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने तो स्वप्न मे भी इस पर (मेरी इस ढिठाई और दोष पर) ध्यान नही दिया।

प्रत्युत मेरे प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने तो इस बात को सुनकर, देखकर और अपने सुचित्तरूपी चक्षु ने निरीक्षण कर मेरी भक्ति और बुद्धि की [उलटे] सराहना की। क्योकि कहने मे चाहे बिगड जाय (अर्थात् मैं चाहे अपने को भगवान् का सेवक कहता-कहलाता रहूँ, परन्तु हृदय मे अच्छापन होना चाहिये। (हृदय मे तो अपने को उसका सेवक बनने योग्य नही मानकर पापी और दीन ही मानना हूँ यह अच्छापन है।) श्रीरामचन्द्रजी भी दास के हृदय की [अच्छी] स्थिति जानकर रीझ जाते हैं।

प्रभु के चित्त मे अपने भक्तो की हुई भूल-चूक याद नहीं रहती है (वे उसे भूल जाते हैं) और उनके हृदय [की अच्छाई—नीकी] को सौ-सौ बार याद करते रहते हैं। जिस पाप के कारण उन्होंने बालि को व्याध की तरह मारा था, वैसी ही कुचाल फिर सुग्रीव ने चली।

टिप्पणी—बाली किष्किंधा का वानर राजा, सुग्रीव का बडा भाई। रामचन्द्रजी ने वाली को इसलिए मारा था कि उसने सुग्रीव की पत्नी को अपने घर मे घाल लिया था, परन्तु सुग्रीव ने भी वाली की मृत्यु के बाद अपने भाई की विधवा पत्नी को अपने घर मे डाल लिया था।

मूल–सोइ करतूति विभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी॥
ते भरतहि भेंटत सनमाने। राजसभाँ रघुवीर बखाने॥४॥

भावार्थ—वही करनी विभीषण की थी, परन्तु श्रीरामचन्द्रजी ने स्वप्न मे भी उसका मन में विचार नहीं किया। उलटे भरतजी से मिलने के समय श्रीरघुनाथजी ने उनका सम्मान किया और राजसभा में भी उनके गुणो का बखान किया।

मूल–दो०–प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सीलनिधान॥२९(क)॥
राम निकाईं रावरी है सबही को नीक।
जौं यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक॥२९(ख)॥
एहि बिधि निज गुन दोष कहि सबहि बहुरि सिरु नाइ।
बरनउँ रघुबर बिसद बिसद जसु सुनि कलि कलुष नसाइ॥२९(ग)॥

शब्दार्थ—सीलनिधान=सुन्दर स्वभाव वाले। निकाईं=अच्छाई, भलाई। रावरी=आपकी। कलुष=पाप।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि रामचन्द्रजी तो पेड के नीचे और बन्दर पेड की डालियो पर, किन्तु राम ने ऊँच-नीच का विचार त्याग कर उन बन्दरो को भी अपने समान बना लिया। तुलसीदास कहते है कि राम के समान सुन्दर स्वभाव वाला स्वामी कही भी नही है।

हे राम! आपकी अच्छाई सबका भला करने वाली है। यदि यह बात सत्य है तो तुलसीदास का भी अवश्यमेव भला होगा।

इस प्रकार अपने गुण-दोषो को कह कह कर और सबको फिर सिर नवाकर मैं श्रीरघुनाथजी का निर्मल यश वर्णन करता हूँ, जिसके सुनने से कलियुग के पाप नष्ट हो जाते हैं।

मूल–चौ०–जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई॥
कहिहउँ सोइ संबाद बखानी। सुनहुँ सकल सज्जन सुखु मानी॥१॥
संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥
सोइ सिव कागभुसुण्डिहि दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा॥२॥

शब्दार्थ—जागबलिक=याज्ञवल्क्य ऋषि। सुहाई=सुन्दर। उमहि=

पार्वती को। चीन्हा=पहचाना।

भावार्थ—तुलसीदास कहते है कि जिस सुन्दर कथा को याज्ञवल्क्य ऋषि ने भरद्वाज को सुनाई थी, मैं उसी सवाद का वर्णन करूँगा। सब सज्जन सुख का अनुभव करते हुए उसका श्रवण करें।

सर्व-प्रथम शिवजी ने इस सुन्दर चरित्र की रचना की। फिर कृपा करके उन्होने इसे पार्वती को सुनाया। वही चरित्र फिर शिवजी ने काकभुशुण्डि को राम-भक्ति का अधिकार जानकर सुनाया।

काव्य सौन्दर्य—'सुनहुँ सकल सज्जन सुखु मानी' मे वृत्यनुप्रास अलकार।

मूल–तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥
ते श्रोता बकता समसीला। सवँदरसी जानहिं हरिलीला॥३॥
जानहिं तीनि काल निज ग्याना। करतल गत आमलक समाना॥
औरउ जे हरि भगत सजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं विधि नाना॥४॥

शब्दार्थ—समसीला=समान शील या बुद्धि वाले। आमलक=आँवला।

भावार्थ—काकभुशुण्डिजी से फिर उसे याज्ञवल्क्यजी ने पाया और उन्होने फिर उसे भरद्वाजजी को गाकर सुनाया। वे दोनो वक्ता और श्रोता (याज्ञवल्क्य और भरद्वाज) समान शीलवाले और समदर्शी हैं और श्रीहरि की लीला को जानते हैं।

वे अपने ज्ञान से तीनो कालो की बातो को हथेली पर रक्खे हुए आँवले के समान (प्रत्यक्ष जानते हैं और भी जो सुजान (भगवान् की लीलाओ का रहस्य जानने वाले) हरि भक्त हैं, वे इस चरित्र को नाना प्रकार से कहते, सुनते और समझते हैं।

मूल–दो०–मैं पुनि निज गुर सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेऊँ अचेत॥३०(क)॥
श्रोता बकता ग्याननिधि कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझौं मैं जीव जड़ कलि मल ग्रसित विमूढ़॥३० ख)॥

भावार्थ—फिर वही कथा मैंने वाराह-क्षेत्र में अपने गुरुजी से सुनी; परन्तु उस समय मैं लड़कपन के कारण बहुत बे समझ था, इससे उसको उस प्रकार (अच्छी तरह) समझा नहीं।

श्री राम जी की गूढ कथा के वक्ता (कहने वाले) और श्रोता (सुनने वाले) दोनो ज्ञान के खजाने (पूरे ज्ञानी) होते हैं। मैं कलियुग के पापो से ग्रसा हुआ महामूढ जड जीव भला उसको कैसे समझ सकता था ?

मूल—चौ०—तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा ॥
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरें मन प्रबोध जेहिं होई ॥१॥

भावार्थ—तो भी गुरु जी ने जब बार-बार कथा कही, तब बुद्धि के अनुसार कुछ समझ मे आयी। वही अब मेरे द्वारा भाषा मे रची जायगी, जिससे मेरे मन को सन्तोष हो।

मूल — जस कछु बुधि बिबेक बल मेरें। तस कहिहउँ हियँ हरि के प्रेरें ॥
निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥२॥
बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुष बिभंजनि॥
रामकथा कलि पंनग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी ॥३॥

शब्दार्थ — तरनी=नौका। रंजनि=प्रसन्न करने वाली। पन्नग=सांप। भरनी=मोरनी, छछूंदर सांप उतारने का एक मन्त्र। अरनी = एक प्रकार की लकडी जिससे रगड कर अग्नि पैदा की जाती है। बुध=बुद्धिमान।

भावार्थ — तुलसीदास कहते हैं कि जितनी मेरी बुद्धि है और जितना मुझ मे विवेक-बल है, मैं उसी के अनुसार हरि की प्रेरणा से कहूँगा। जिस कथा का मैं वर्णन करने जा रहा हूँ, वह कथा मेरे सन्देह, अज्ञान और भ्रम को हरने वाली है और यह कथा संसार रूपी नदी को पार करने के लिए नौका है।

राम-कथा पण्डितो को विश्राम देने वाली, सब मनुष्यो को प्रसन्न करने वाली और कलियुग के पापो का नाश करने वाली है। राम-कथा कलियुग रूपी सांप के लिए मोरनी है और विवेक रूपी अग्नि के प्रकट करने के लिए अरणि (मन्थन की जाने वाली लकडी) है, (अर्थात् इस कथा से ज्ञान की प्राप्ति होती है)।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और रूपक अलकार।

मूल — रामकथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई ॥
सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि। ४॥

असुर सेन सम नरक निकंदिनि । साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि ॥
संत समाज पयोधि रमा सी । बिस्व भार भर अचल छमा सी ॥५॥

शब्दार्थ — कामदगाई=कामधेनु=गौ । मूरि=जड़ी । सुहाई=सुन्दर । सुधा-तरगिनी=अमृत की नदी । बिबुध-कुल=देवताओं का समूह । गिरिनंदिनी=पार्वती । रमा=लक्ष्मी । छमा=पृथ्वी ।

भावार्थ — राम-कथा कलियुग में सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली कामधेनु गौ है और सज्जनों के लिए सुन्दर सजीवनी जड़ी है । पृथ्वी पर यही अमृत की नदी है, जन्म-मरण रूपी भय का नाश करने वाली और भ्रम रूपी मेढकों को खाने के लिए सर्पिणी है ।

यह राम-कथा असुरों की सेना के समान नरकों का नाश करने वाली और साधुरूप देवताओं के कुल का हित करने वाली पार्वती (दुर्गा) है । यह सत-समाज रूपी क्षीर-समुद्र के लिए लक्ष्मी जी के समान है और सम्पूर्ण विश्व का भार उठाने में अचल पृथ्वी के समान है ।

काव्य-सौन्दर्य—उपमा रूपक और उल्लेख अलकार ।

मूल—जम गन मुहँ मसि जग जमुना सी । जीवन मुकुति हेतु जनु कासी ॥
रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी । तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी ॥६॥
सिवप्रिय मेकल-सैल-सुता सी । सकल सिद्धि सुख संपति रासी ॥
सदगुन सुरगन अंब अदिति सी । रघुबर भगति प्रेम परिमिति सी ॥७॥
दो०—रामकथा-मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु ।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु ॥३१॥

शब्दार्थ—मसि=स्याही, कालिमा । पावनि=पवित्र । हुलसी=तुलसीदास की माता का नाम । मेकल-सैल-सुता = नर्मदा नदी । अदिति = देवताओं की माता । परमिति=सीमा । सुभग=सुन्दर ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यह कथा यमदूतों के समूह के मुख पर कालिख लगाने के लिए, अर्थात् यमदूतों का मुँह काला करने के लिए संसार में यमुना के समान है तथा जग-जीवों को मुक्ति प्रदान करने के लिए यह काशी के समान है । यह कथा स्वयं राम को पवित्र तुलसी के समान प्रिय है और तुलसीदास के लिए यह उनकी माता हुलसी के समान हृदय से हित करने वाली है ।

यह राम-कथा शिव जी को नर्मदा के समान प्यारी है। यह सब सिद्धियो की तथा सुख-सम्पत्ति की राशि है। सद्गुण रूपी देवताओ के उत्पन्न और पालन-पोषण करने के लिए माता अदिति के समान है। श्री रघुनाथ जी की भक्ति और प्रेम की परम सीमा-सी है।

तुलसीदास कहते हैं कि राम-कथा मदाकिनी नदी है, निर्मल (शुद्ध) चित्त चित्रकूट है और सुन्दर स्नेह वन है, जहाँ सीता और राम विहार करते हैं।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, उपमा, रूपक और उल्लेख अलकार।

मूल—चौ०—रामचरित चितामनि चारू। संत सुमति तिय सुभग सिंगारू॥
जग मंगल गुनग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥१॥
सदगुर ग्यान बिराग जोग के। बिबुध बैद भव भीम रोग के॥
जननि जनक सिय राम प्रेम के। बीज सकल ब्रत धरम नेम के॥२॥
समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के॥
सचिव सुभट भूपति बिचार के। कुंभज लोभ उदधि अपार के॥३॥
काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जन मन बन के॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के॥४॥

शब्दार्थ — गुण-ग्राम = गुण-समूह। विबुध-बैद = देवताओ के वैद्य अश्विनीकुमार। कुंभज=अगस्त्य ऋषि। कोह=क्रोध। करिगन=हाथियो का समूह। सावक=शावक=बच्चे। पुरारि=महादेव। कामद = कामना पूर्ण करने वाले। दवारि=दावानल।

भावार्थ—तुलसीदास कहते है कि यह राम-चरित्र सुन्दर चिन्तामणि रत्न है और सन्त-पुरुषो की मति रूपी कामिनी का सुन्दर श्रृंगार है। श्री राम के गुण-समूह जगत् का कल्याण करने वाले, और मुक्ति, धन, धर्म और परम धाम के देने वाले हैं। ये गुण ज्ञान, वैराग्य और योग की शिक्षा देने के लिए सद्गुरु हैं और ससार रूपी भयंकर रोग का नाश करने के लिए देव-वैद्य अश्वनीकुमार हैं। ये सीता-राम के प्रति प्रेम या भक्ति उत्पन्न करने वाले माता-पिता हैं और सम्पूर्ण व्रत धर्म और नियमो के बीज हैं।

राम के ये गुण पाप, सताप और शोक का नाश करने वाले हैं, इस

लोक और परलोक के पालक हैं (दोनो लोको को सुधारने वाले हैं)। ये विचार रूपी राजा के शूरवीर मन्त्री हैं तथा लोभ रूपी समुद्र को सोखने के लिए ये अगस्त्य मुनि हैं। भक्तो के मन रूपी वन मे विचरने वाले काम-क्रोधादि कलि के पाप रूपी हाथियो को मारने के लिए ये सिंह-शावक हैं। ये महादेव जी के परम पूज्य और सबसे प्यारे अतिथि हैं और दरिद्रता रूपी दावानल को बुझाने के लिए ये कामना पूर्ण करने वाले मेघ हैं।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, लाटानुप्रास, रूपक और उल्लेख अलंकार।

मूल—मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥
हरन मोह तम दिनकर कर से। सेवक सालि पाल जलधर से॥५॥
अभिमत दानि देवतरु वर से। सेवत सुलभ सुखद हरि हर से॥
सुकवि सरद नभ मन उडगन से। रामभगत जन जीवन धन से॥६॥
सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जग हित निरुपधि साधु लोग से॥
सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से॥७॥

शब्दार्थ—ब्याल=सर्प। कुअंक भाल के=भाग्य की बुरी रेखाएँ। दिनकर-कर=सूर्य की किरणे। सालि=धान। अभिमत=मनोवाछित। देवतरु=कल्पवृक्ष। उडगन = तारे। निरुपधि=छल-रहित। मानस=मानसरोवर। मराल=हंस। तरंग=लहर।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि राम के ये गुण विषय रूपी साँप का जहर उतारने के लिए मन्त्र और महामणि हैं। ये ललाट पर लिखे हुए कठिनता से मिटने वाले बुरे लेखों (मन्द प्रारब्ध) को मिटा देने वाले हैं। अज्ञान रूपी अन्धकार के हरण करने के लिए सूर्य-किरणों के समान और सेवक रूपी धान के पालन करने के मेघ के समान हैं।

मनोवाछित वस्तु देने मे श्रेष्ठ कल्पवृक्ष के समान हैं और सेवा करने मे हरि-हर के समान सुलभ और सुख देने वाले हैं। सुकवि रूपी शरद् ऋतु के मन रूपी आकाश को सुशोभित करने के लिए तारागण के समान और श्री राम जी के भक्तो के तो जीवन-धन ही है।

ये महान् भोगो के समान सम्पूर्ण पुण्यो के फल हैं। ये संसार का यथार्थ हित करने मे साधु-सन्तो के समान हैं, सेवको के मन रूपी मानसरोवर के लिए

ये हंस के समान है और पवित्र करने के लिए ये गगा की तरगो की माला के तुल्य हैं ।

काव्य-सौन्दर्य — 'दिनकर-कर' मे यमक, अनुप्रास, उपमा, रूपक और उल्लेख अलकार ।

मूल—दो०—कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाषंड ।
दहन राम गुन ग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड ॥३२(क)॥

भावार्थ — श्री राम जी के गुणो के समूह कुमार्ग, कुतर्क, कुचाल और कलियुग के कपट, दम्भ और पाखण्ड के जलाने के लिए वैसे ही हैं जैसे ईंधन के लिए प्रचण्ड अग्नि ।

काव्य-सौन्दर्य—वृत्यनुप्रास और उदाहरण अलकार ।

मूल—रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु ।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु ॥३२(ख)॥

शब्दार्थ—राकेस-कर=चन्द्रमा की किरणे । लाहु=लाभ । कुमुद=रात्रि-विकासी कमल ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते है कि राम का चरित्र पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणो के समान सबको सुख देने वाला है । परन्तु सज्जन रूपी कुमुद और चकोर रूपी चित्त के लिए तो यह विशेष हितकारी और लाभदायक है ।

काव्य-सौन्दर्य — छेकानुप्रास (रामचरित राकेस मे), वृत्यनुप्रास तथा रूपक अलंकार ।

मूल—चौ०—कीन्हि प्रस्न जेहि भाँति भवानी । जेहि बिधि संकर कहा बखानी ॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई । कथा प्रबंध बिचित्र बनाई ॥१॥
जेहिं यह कथा सुनी नहिं होई । जनि आचरजु करै सुनि सोई ॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी । नहिं आचरजु करहिं अस जानी ॥२॥
रामकथा कै मिति जग नाहीं । असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं ॥
नाना भाँति राम अवतारा । रामायन सत कोटि अपारा ॥३॥
कलपभेद हरिचरित सुहाए । भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए ॥
करिअ न संसय अस उर आनी । सुनिअ कथा सादर रति मानी ॥४॥

दो०—राम अनंत अनत गुन अमित कथा विस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह के विमल विचार ॥३३॥

शब्दार्थ—सिति=सीमा, पार। प्रतीति=विश्वास। कल्प=ब्रह्मा का एक दिन कल्प कहलाता है। रति=प्रेम।

शब्दार्थ—भौमवार=मगलवार। मधुमासा = चत्रमास। श्रुति=वेद। मज्जहिं=स्नान करते है।

भावार्थ—तुलसीदास कहते है कि इस प्रकार सब सन्देहो को दूर करके और गुरु-महाराज की चरण-रज को सिर पर धारण करके तथा पुन एक बार हाथ जोड कर मैं सबकी विनती करता हूँ, जिससे इस राम-कथा के रचने मे कोई दोप न आवे।

मैं अब आदर-पूर्वक शिव जी को सिर झुका कर श्री रामचन्द्र जी के गुणो की निर्मल कथा कहता हूँ। श्री हरि के चरणो पर सिर रख कर मैं इस कथा का आरम्भ सवत् १६३१ मे करता हूँ।

चैत्र मास की नवमी तिथि मगलवार को श्री अयोध्या जी मे यह चरित्र प्रकाशित हुआ। जिस दिन श्री राम जी का जन्म होता है, वेद कहते है कि उस दिन सारे तीर्थ वहाँ (श्री अयोध्या जी मे) चले आते है।

असुर, नाग, पक्षी, मनुष्य, मुनि और देवता सब अयोध्या जी मे आकर श्री रघुनाथ जी की सेवा करते है। बुद्धिमान् लोग जन्म का महोत्सव मनाते है और श्री राम जी की सुन्दर कीर्ति का गान करते हैं।

सज्जनो के बहुत से समूह उस दिन श्री सरयू जी के पवित्र जल मे स्नान करते है और हृदय मे सुन्दर श्याम-शरीर श्री रघुनाथ जी का ध्यान करके उनके नाम का जप करते है।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और रूपक अलकार।

मूल—चौ०—दरस परस मज्जन अरु पाना। हरइ पाप कह वेद पुराना॥
नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकइ सारदा विमलमति॥१॥
राम - धामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त विदित अति पावनि॥
चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजें तनु नहि संसारा॥२॥
सब विधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धिप्रद मगल खानी॥
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥३॥

शब्दार्थ—परस=स्पर्श करना। पाना=जल पीना। रामधामदा=राम के परमधाम को देने वाली। खानि=प्रकार।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि वेद और पुराणो का मत ऐसा है कि

सरयू नदी का दर्शन, स्पर्श, स्नान और जल-पान पापो को हर लेता है। यह नदी अत्यन्त पवित्र है और इसकी महिमा अमित है, उसका पार कोई नही पा सकता है — यहां तक कि निर्मल बुद्धि वाली सरस्वती भी इसकी महिमा का वर्णन नही कर सकती।

यह शोभायमान अयोध्यापुरी श्री रामचन्द्र जी के परमधाम की देने वाली है, सब लोको मे पवित्र है और अत्यन्त प्रसिद्ध है। जगत् मे [अण्डज, स्वेदज, उद्‌भिज्ज और जरायुज] चार खानि (प्रकार) के अनन्त जीव हैं, इनमे से कोई भी अयोध्या जी मे शरीर छोडते हैं वे फिर संसार मे नही आते (जन्म-मृत्यु के चक्कर से छूट कर भगवान् के परमधाम मे निवास करते हैं)।

इस अयोध्यापुरी को सब प्रकार से मनोहर, सब सिद्धियो की देने वाली और कल्याण की खान समझ कर मैंने इस निर्मल कथा का आरम्भ किया, जिसके सुनने से काम, मद और दम्भ नष्ट हो जाते हैं।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलकार।

टिप्पणी—चारि खानि से अभिप्राय चार प्रकार के जीव हैं — अण्डज, स्वेदज, उद्‌भिज और जरायुज।

मूल — रामचरितमानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा॥
मन करि विषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौं एहिं सर परई॥४॥

भावार्थ — इसका नाम रामचरितमानस है, जिसके कानो से सुनते ही शान्ति मिलती है। मन रूपी हाथी विषय रूपी दावानल मे जल रहा है, वह यदि इस रामचरितमानस रूपी सरोवर मे आ पडे तो सुखी हो जाय।

टिप्पणी—यहां 'मानस' शब्द श्लिष्ट है, इसके दो अर्थ हैं—(१) रामचरितमानस काव्य और (२) मानसरोवर झील।

काव्य-सौन्दर्य—श्लेष और रूपक अलंकार।

मूल — रामचरितमानस मुनि भावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन॥
त्रिविध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन॥५॥
रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥
तातें रामचरितमानस बर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर॥६॥
कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई॥७॥

दो०—जस मानस जेहि बिधि भयउ जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहउँ प्रसंग सब सुमिरि उमा बृषकेतु ॥३५॥

शब्दार्थ—मुनि-भावन=मुनियो को अच्छा लगने वाला। बिरचेउ=रचा। दावन=नाश करने वाला। कुलि=सब। मानस=मन। वृपकेतु=महादेव।

भावार्थ — तुलसीदास कहते है कि मुनियो को प्रिय लगने वाला यह 'रामचरितमानस' सुन्दर और पवित्र है, जिसे महादेव जी ने रचा। यह तीनो प्रकार के दोपो वात, पित्त और कफ से उत्पन्न दोष) और तीनो प्रकार के दु खो (दैहिक, दैविक और भौतिक) एवं दरिद्रता का नाश करने वाला है, और यह कलियुग की कुचालो और उसके सम्पूर्ण पापो को नप्ट करने वाला है।

महादेव जी ने इसे रच कर अपने मन मे रखा और सुअवसर पाकर उन्होने इसे पार्वती को कहा। इसीलिए शिव जी ने अपने हृदय मे विचार कर तथा मन मे प्रसन्न होकर इसका नाम 'रामचरितमानस' रखा। मैं उसी सुख देने वाली सुन्दर राम-कथा को कहता हूँ। हे सज्जनो! इसे मन लगा कर आदरपूर्वक सुनिए।

यह 'रामचरितमानस' जैसा है, जिस प्रकार बना है और जिस हेतु से जगत् मे इसका प्रचार हुआ, अब वही सब कथा मैं श्री उमा महेश्वर का स्मरण करके कहता हूँ।

काव्य-सौन्दर्य—वृत्यनुप्रास अलकार।

मूल–चौ०–सभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कवि तुलसी॥
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी॥१॥
सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥२॥
लीला सगुन जो कहहिं बखानि। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई॥३॥
सो जल सुकृत सालि हित होई। राम भगत जन जीवन सोई॥
मेधा महि गत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन॥४॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥५॥

दो०— सुठि सुन्दर संवाद बर बिरचे बुद्धि विचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि ॥३६॥

शब्दार्थ—हुलसी=विकसित हुई। अगाध=गहराई। बारी=जल। सुकृति =सत्कर्म सालि=धान। मेधामहि=बुद्धि रूपी पृथ्वी। सकिलि = सिमट कर। सुमानस = अच्छा हृदय। थिराना = स्थिर होना। चिराना=पुराना। सुभग= सुन्दर। एहि=इस। चारु=सुन्दर।

भावार्थ — तुलसीदास कहते हैं कि शिवजी की कृपा से उनके हृदय में सुन्दर बुद्धि का विकास हुआ, जिससे यह तुलसीदास रामचरितमानस का रचयिता बना। अपनी बुद्धि के अनुसार तो मैंने इसे मनोहर ही बनाया है, किन्तु कहीं इसमें यदि भूल-चूक रह गई हो तो सज्जन अच्छे मन से इसे सुन कर इसमें आप सुधार कर लें।

आगे की पंक्तियों में 'मानस' का सरोवर से रूपक बाँधते हुए तुलसीदास कहते हैं—

सुन्दर बुद्धि ही भूमि है, हृदय उसमें गहरा स्थान है, वेद-पुराण समुद्र हैं और साधु-संत मेघ हैं। ये साधु-सत रूपी बादल श्री राम के सुयश रूपी सुन्दर, मधुर, मनोहर और मंगलकारी जल की वर्षा करते हैं।

सगुण लीला का जो विस्तार से वर्णन करते हैं, वही राम-सुयश रूपी जल की निर्मलता है, जो मल का नाश करती है; और जिस प्रेमाभक्ति का वर्णन नहीं किया जा सकता, वही इस जल की मधुरता और सुन्दर शीतलता है।

वह (राम-सुयश रूपी) जल सत्कर्म रूपी धान के लिए हितकर है और श्री राम जी के भक्तों का तो जीवन ही है। वह पवित्र जल बुद्धि रूपी पृथ्वी पर गिरा और सिमट कर सुहावने कान रूपी मार्ग से चला और मानस (हृदय) रूपी श्रेष्ठ स्थान में भर कर वहीं स्थिर हो गया। वही पुराना होकर सुन्दर, रुचिकर, शीतल और सुखदायी हो गया।

इस कथा में बुद्धि से विचार कर जो चार अत्यन्त सुन्दर और उत्तम संवाद (भुशुण्डि-गरुड़, शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भारद्वाज और तुलसीदास और संत) रचे हैं, वे ही इस पवित्र और सुन्दर सरोवर के चार मनोहर घाट हैं।

टिप्पणी—वह भक्ति जो प्रेम-भाव से की जाती है, प्रेमा भक्ति कहलाती है, इसे वैष्णव-भक्ति भी कहते हैं।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और साग रूपक अलकार।

मूल–चौ० सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा॥१॥
राम सीय जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम॥
पुरइनि सघन, चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई॥२॥
छंद सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरद सुबासा॥३॥

शब्दार्थ—प्रबन्ध=काड। सोपान=सीढी। माना=प्रसन्न हो जाना। अगुन=गुण-रहित, गुणातीत। बीचि=लहर। पुरइनि=कमलिनी। पराग=पुष्प-रज। मकरद=पुष्प-रस।

भावार्थ—सात काण्ड ही इस मानस-सरोवर की सुन्दर सात सीढियाँ हैं, जिनको ज्ञानरूपी नेत्रों से देखते ही मन प्रसन्न हो जाता है। श्रीरघुनाथजी की निर्गुण (प्राकृतिक गुणो से अतीत) और निर्बाध (एकरस) महिमा का जो वर्णन किया जायगा, वही इस सुन्दर जल की अथाह गहराई है।

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी का यश अमृत के समान जल है। इसमें जो उपमाएँ दी गयी हैं, वही तरङ्गों का मनोहर विलास है। सुन्दर चौपाइयाँ ही इसमे घनी फैली हुई पुरइन (कमलिनी) हैं और कविता की युक्तियाँ सुन्दर मणि (मोती) उत्पन्न करने वाली सुहावनी सीपियाँ हैं।

जो सुन्दर छन्द, सोरठे और दोहे हैं, वही इसमे बहुरगे कमलो के समूह सुशोभित हैं। अनुपम अर्थ, ऊँचे भाव और सुन्दर भाषा ही पराग (पुष्परज), मकरन्द (पुष्परस) और सुगन्ध हैं।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और रूपक अलंकार।

मूल–सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ग्यान बिराग बिचार मराला॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहुभाँती॥४॥
अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी॥
नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा॥५॥

सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते विचित्र जलविहग समाना ॥
संतसभा चहुँ दिसि अवँराई। श्रद्धा रितु बसंत सम गाई ॥६॥

शब्दार्थ—मजुल=सुन्दर। अलि-माला=भौंरो की पंक्ति। अवरेब=व्यंग्य, उक्ति की वक्रता। चारी=चार। विहग=पक्षी। अवँराई=अमराई, आम बगीचियाँ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि इस सरोवर मे सत्कर्मों (पुण्यो) के पुञ्ज भौंरों की सुन्दर पंक्तियाँ हैं; ज्ञान, वैराग्य और विचार हंस हैं। कविता की ध्वनि, वक्रोक्ति, गुण और जाति ही अनेको प्रकार की मनोहर मछलियाँ हैं।

अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—ये चारो, ज्ञान-विज्ञान का विचार के कहना, काव्य के नौ रस, जप, तप योग और वैराग्य के प्रसग—ये सब इस सरोवर के सुन्दर जलचर जीव हैं।

सुकृती (पुण्यात्मा) जनो के, साधुओ के और श्री राम नाम के गुणो का गान ही विचित्र जल-पक्षियो के समान है। संतो की सभा ही इस सरोवर के चारो ओर की अमराई (आम की बगीचियाँ) हैं और श्रद्धा वसन्त ऋतु के समान कही गई है।

भगति निरूपन विविध विधाना। छमा दया दम लता विताना ॥
सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरि पद रति रस बेद बखाना ॥७॥
औरउ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहुबरन विहंगा ॥८॥
दो०—पुलक वाटिका बाग बन सुख सुविहंग विहारु।
माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु ॥३७॥

शब्दार्थ—दम=इन्द्रियो का वश मे करना। विताना=मंडप। सम=शम (मन को वश मे करना)। जम=यम (संयम)—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। नियम—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि अनेक प्रकार से भक्ति का निरूपण, क्षमा, दया और दम इसके तट पर लताओं के मंडप हैं। शम, यम और नियम इसके फूल हैं, ज्ञान इसका फल है और श्रीहरि के चरणों में प्रेम

प्रेम ही इस ज्ञान रूपी फल का रस है—ऐसा वेदों ने कहा है। इस रामचरितमानस में और भी अनेक प्रसग और कथाएँ हैं वे तोते, कोयल आदि अनेक रग के पक्षी हैं।

कथा मे जो रोमाञ्च होता है वही वाटिका, बाग और वन है, और जो सुख होता है, वही सुन्दर पक्षियो का विहार है। निर्मल मन ही माली है जो प्रेमरूपी जल से सुन्दर नेत्रों द्वारा उनको सींचता है।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और रूपक अलकार।

मूल-चौ०—जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥
सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुरवर मानस अधिकारी॥१॥
अति खल जे विषई बग कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा॥
संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न विषय कथा रस नाना॥२॥
तेहि कारन आवत हियँ हारे। कामी काक बलाक बिचारे॥
आवत एहिं सर अति कठिनाई। राम कृपा बिनु आइ न जाई॥३॥
कठिन कुसग कुपंथ कराला। तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला॥
गृह कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम सैल बिसाला॥४॥
बन बहु बिषम मोह मद माना। नदीं कुतर्क भयकर नाना॥५॥
दो०—जे श्रद्धा संबल रहित नहिं सतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ॥३८॥

शब्दार्थ—सभारे=सावधानी से। सबुक=घोघे। भेक=मेढक। बलाक=बगुले। हरि=सिंह। ब्याला=साँप। सबल=मार्ग-व्यय।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जो इस 'रामचरित-मानस' को सावधानी से गाते है, वे ही इस सरोवर के चतुर रखवाले हैं, और जो स्त्री-पुरुष सदा आदर के साथ इसे सुनते हैं, वे ही इस सुन्दर सरोवर के उत्तम अधिकारी देवता है।

जो अति दुष्ट और विषयी है वे अभागे बगुले और कौए हैं जो इस सरोवर के समीप नही जाते। क्योकि यहाँ (इस मानस सरोवर मे) घोघे, मेढक और सेवार के समान विषय-रस की नाना कथाएँ नही हैं।

इसी कारण बेचारे कौए और बगुलेरूपी विषयी लोग यहाँ आते हुए

हृदय मे हार मान जाते हैं। क्योंकि इस सरोवर तक आने मे कठिनाइयाँ बहुत हैं। श्रीरामजी की कृपा बिना यहाँ नही आया जाता।

इस सरोवर तक पहुँचने मे घोर कुसग ही भयकर मार्ग है और कुसगियो के वचन ही बाघ, सिंह और साँप है जिनके कारण मार्ग मे सदा डर बना रहता है। घर गृहस्थी के जो काम-धन्धे हैं तथा अनेक तरह की झझटें और जंजाल ही अत्यन्त दुर्गम विशाल पर्वत हैं जो मार्ग मे विघ्न उपस्थित करते हैं। मोह, मद और मान ही बडे-बडे बीहड वन हैं और नाना प्रकार के कुतर्क ही मार्ग को रोकने वाली भयानक नदियाँ हैं।

जिनके पास श्रद्धारूपी राह-खर्च नही है और सतो का साथ नही है और जिनको श्रीरघुनाथजी प्रिय नही हैं, उनके लिये यह मानस अत्यन्त ही अगम है। (अर्थात् श्रद्धा, सत्सग और भगवत्प्रेम के बिना कोई इसको नही पा सकता)

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और रूपक अलंकार। 'मानस'-सरोवर तक पहुँचने मे मार्ग मे क्या-क्या कठिनाइयाँ आती है, इसका कितना सुन्दर रूपक बाँधा गया है।

मूल-चौ०—जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहिं नींद जुडाई होई॥
जडता जाड़ बिषम उर लागा। गएहुँ न मज्जन पाव अभागा॥१॥
करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवइ समेत अभिमाना॥
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निंदा करि ताहि बुझावा॥२॥
सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही॥
सोइ सादर सर मज्जनु करई। महा घोर त्रयताप न जरई॥३॥

शब्दार्थ—जुडाई होई=शीत ज्वर (जूडी) आ जाती है। जडता जाड= मूर्खता रूपी जाडा। बहोरि=फिर। बुझावा=समझाता है। जरई=जलता है।

भावार्थ—उपर्युक्त मानस-सरोवर के सदर्भ मे तुलसीदास कह रहे हैं कि यदि कोई व्यक्ति कष्ट उठा कर उस सरोवर तक पहुँच भी जाता है, तो उसे वहाँ पहुँचते ही निद्रा रूपी शीत-ज्वर आ घेर लेता है और उसके हृदय मे भयकर मूर्खता रूपी जाडा लगना आरम्भ हो जाता है, जिससे वह अभागा वहाँ जाकर भी उसमें स्नान नहीं कर पाता।

उससे उस सरोवर मे न स्नान किया जाता है और न उसका जलपान। ऐसी स्थिति मे वह अभिमान सहित लौट आता है। फिर यदि कोई उससे [वहाँ का हाल] पूछने आता है, तो वह [अपने अभाग्य की बात न कह कर] सरोवर की निन्दा करके उसे समझाता है।

ये सारे विघ्न उसको नही व्यापते (बाधा नही देते) जिसे श्रीरामचन्द्रजी सुन्दर कृपा की दृष्टि से देखते हैं। वही आदरपूर्वक इस सरोवर मे स्नान करता है और महान् भयानक त्रिताप से (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तापो से) नही जलता।

काव्य सौन्दर्य—अनुप्रास और रूपक।

मूल–ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह कें राम चरन भल भाऊ॥
जो नहाइ चह एहिं सर भाई। सो सतसग करउ मन लाई॥४॥

भावार्थ—जिनके मन मे श्रीरामचन्द्रजी के चरणो मे सुन्दर प्रेम है, वे इस सरोवर को कभी नही छोडते। हे भाई ! जो इस सरोवर मे स्नान करना चाहे वह मन लगाकर सत्सग करे।

मूल–अस मानस मानस चख चाही। भइ कवि बुद्धि बिमल अवगाही॥
भयउ हृदयँ आनन्द उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥५॥

भावार्थ—ऐसे मानस-सरोवर को हृदय के नेत्रो से देखकर और उसमे गोता लगाकर कवि की बुद्धि निर्मल हो गयी, हृदय मे आनन्द और उत्साह भर गया और प्रेम तथा आनन्द का प्रवाह उमड आया।

काव्य-सौन्दर्य— 'मानस मानस' मे यमक अलंकार।

मूल–चली सुभग कविता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो॥
सरजू नाम सुमगल मूला। लोक वेद मत मजुल कूला॥६॥
नदी पुनीत सुमानस नदिनि। कलिमल तृन तरु मूल निकदिनि॥७॥
दो०—श्रोता त्रिविध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल।
सतसभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल॥३९॥

शब्दार्थ—सुभग=सुन्दर। भरिता=भरी हुई। कूला=किनारे। सुमानस-नन्दिनी=मानस-सरोवर की कन्या। निकदिनी=नाश करने वाली।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि उक्त प्रेम और आनन्द के प्रवाह में

से वह सुन्दर कविता रूपी नदी वह निकली जिसमें श्रीरामजी का निर्मल यश रूपी जल भरा है। इस (कविता रूपिणी नदी) का नाम सरयू है जो सम्पूर्ण सुन्दर मङ्गलो की जड है। लोकमत और वेदमत इसके दो सुन्दर किनारे हैं।

यह सुन्दर मानस-सरोवर की कन्या सरयू नदी बडी पवित्र है और कलि युग के [छोटे-बडे] पाप रूपी तिनको और वृक्षो को जड से उखाड फेंकने वाली है।

तीनो प्रकार के (मुक्त, मुमुक्षु और विषयी) श्रोताओ का समाज ही इस नदी के दोनो किनारो पर बसे हुए पुर, नगर और ग्राम हैं, और सब सुन्दर मगलो की जड संत-समाज ही अनुपम अयोध्या है।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और रूपक अलकार।

चौ०—रामभगति सुरसरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानदु सोन सुहावन॥१॥
जुग बिच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा॥
त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी॥२॥
मानस मूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजन मन पावन करिही॥
बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर तीर बन बागा॥३॥
उमा महेस बिबाह बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती॥
रघुबर जनम अनन्द बधाई। भवँर तरंग मनोहरताई॥४॥
दो०—बालचरित चहु बन्धु के बनज बिपुल बहुरंग।
नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारि बिहंग॥४०॥

शब्दार्थ—सानुज=छोटे भाई लक्ष्मण-सहित। देवधुनि=गगा। समुहानी=सामने की तरफ। बनज=कमल। बारि-बिहग=जल-पक्षी। तीर=तट तीर=आस-पास।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि उत्तम कीर्ति रूपी सुहावनी सरयू नदी राम-भक्ति रूपी गगा मे जाकर मिल गई। छोटे भाई लक्ष्मण-सहित श्रीराम के युद्ध का पवित्र यश रूपी सुहावना महानद सोन उसमे आ मिला।

सरयू और सोन इन दोनो के बीच मे भक्ति-रूपी गंगा की धारा, जो ज्ञान और वैराग्य से युक्त है, सुशोभित हो रही है। इस प्रकार तीनो तापों

(दैहिक, दैविक और भौतिक) को भयभीत करने वाली यह नदी तीनमुखी होकर रामस्वरूप रूपी समुद्र की ओर जा रही है।

तुलसीदास कहते हैं कि एक तो यह कीर्तिरूपी सरयू मानस (रामचरित मानस) से निकली है, दूसरे यह राम-भक्ति रूपी गंगा में जाकर मिली है, इसलिए यह सुनने वाले सज्जनों के मन को पवित्र कर देगी। इसके बीच-बीच में जो अनेक प्रकार की विचित्र कथाएँ हैं, वे ही मानो नदी-तट के आस-पास वन और बाग स्थित हैं।

इस कथा में शिव-पार्वती के विवाह का उल्लेख है। शिव पार्वती के विवाह के बराती ही मानो इस नदी के असंख्य जल-जन्तु हैं। श्रीराम-जन्म का आनन्द और बधाई ही मानो इस नदी के भँवर और तरंगे हैं।

चारों भाइयों के जो बालचरित्र हैं, वे ही इसमें खिले हुए रंग-बिरंगे बहुत-से कमल हैं। महाराज श्रीदशरथजी तथा उनकी रानियों और कुटुम्बियों के सत्कर्म (पुण्य) ही भ्रमर और जल-पक्षी हैं ॥४॥

काव्य-सौन्दर्य—सांग रूपक। 'तीर तीर' में यमक। 'जनु सरि ... बागा' में उत्प्रेक्षा। इतने लम्बे-लम्बे रूपक बाँधना तुलसी की प्रतिभा और कल्पना-शक्ति के परिचायक है।

मूल—चौ०—सीय स्वयंवर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई ॥
नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिबेका ॥१॥
सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई ॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध राम बर बानी ॥२॥
सानुज राम बिबाह उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू ॥
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं ॥३॥
राम तिलक हित मंगल साजा। परब जोग जनु जुरे समाजा ॥
काई कुमति केकई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी ॥४॥
दो०—समन अमित उतपात सब भरत चरित जपजाग।
कलि अघ खल अवगुन कथन ते जलमल बग काग ॥४१॥

शब्दार्थ—पटु=विचार-पूर्ण। अनुकथन=पीछे की जाने वाली चर्चा, उत्तर। सुकृति=पुण्यात्मा। भृगुनाथ=परशुरामजी। रिसानी=क्रोध। परब जोग

पर्व के समय । समन=शांत करने वाला । जाग=यज्ञ । जलमल=कीचड ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि श्रीसीताजी के स्वयंवर की जो सुन्दर कथा है वही इस नदी में सुहावनी छवि छा रही है । अनेकों सुन्दर विचारपूर्ण प्रश्न ही इस नदी की नावें हैं और उनके विवेक युक्त उत्तर ही चतुर केवट हैं ।

इस कथा को सुनकर पीछे जो आपस मे चर्चा होती है, वही इस नदी के सहारे-सहारे चलने वाले यात्रियो का समाज शोभा पा रहा है। परशुरामजी का क्रोध इस नदी की भयानक धारा है और श्रीरामचन्द्रजी के श्रेष्ठ वचन ही सुन्दर बँधे हुए घाट हैं ।

छोटे भाइयो के सहित राम के विवाह का उत्साह ही इस कथा-नदी का सुन्दर उभार है और वह सब किसी को सुख देने वाला है। इस कथा के कहने-सुनने में जो हर्ष और रोमाञ्च होता है, वे ही पुण्यात्मा पुरुष हैं जो प्रसन्न मन से इस नदी में स्नान करते हैं ।

राम के राज-तिलक के लिए जो माँगलिक साज सजाये गये, वही मानो पर्व-योग है, जिसके कारण इस नदी पर यात्री-समूह एकत्र हुआ है । कैकेयी की बुद्धि ही इस नदी की काई है, जिसके कारण अनेक प्रकार की विपत्तियाँ आईं-राम वन-गमन, दशरथ-मरण आदि ।

सम्पूर्ण अनगिनत उत्पातो को शान्त करने वाला भरतजी का चरित्र ही नदी-तट पर किया जाने वाला जपयज्ञ है । कलियुग के पापो और दुष्टो के अवगुणो के जो वर्णन हैं वे ही इस नदी के जल का कीचड और बगुले-कौए हैं ।

काव्य-सौन्दर्य—रूपक, उत्प्रेक्षा अनुप्रास अलकार ।

मूल-चौ०—कीरति सरित छहूँ रितु रूरी । समय सुहावनि पावनि भूरी ॥
हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू । सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू ॥१॥
बरनव राम विवाह समाजू । सो मुद मगलमय रितुराजू ॥
ग्रीषम दुसह राम वन गवनू । पंथकथा खर आतप पवनू ॥२॥
बरषा घोर निसाचर रारी । सुरकुल सालि सुमंगलकारी ॥
राम राज सुख बिनय बड़ाई । बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई ॥३॥

सती सिरोमनि सिय गुन गाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा।
भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एकरस बरनि न जाई ॥४॥

दो०—अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास।
भायप भलि चहु बंधु की जल माधुरी सुवास ॥४२॥

शब्दार्थ—रूरी=सुन्दर। हिम=हेमन्त ऋतु। सैलसुता=पार्वती। रितु-राजू=वसन्त। खर=प्रखर, तेज। आतप=धूप। रारी=युद्ध। सालि=धान। पाथा=जल। भायप=भाईपन। सुवास=सुगन्ध।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यह कीर्ति रूपी नदी छहो ऋतुओ मे ही सुन्दर रहती है। हर समय यह सुहावनी और अत्यन्त पवित्र रहती है। इस कथा मे शिव-पार्वती का विवाह ही हेमन्त ऋतु है और राम-जन्म का उत्सव सुखदायी शिशिर ऋतु है। रामचन्द्रजी के विवाह के समाज का वर्णन ही आनन्द मगलमय वसन्त है। राम का वन-गमन ही असहनीय ग्रीष्म ऋतु है तथा मार्ग की जो कथा है, वही कडी धूप और लू है।

राक्षसो के साथ घोर युद्ध ही वर्षा ऋतु है, जो देवकुलरूपी धान के लिये सुन्दर कल्याण करने वाली है। रामचन्द्रजी के राज्य काल का जो सुख, विनम्रता और वडाई है वही निर्मल सुख देने वाली सुहावनी शरद् ऋतु है।

सती-शिरोमणि सीता के गुणो की जो कथा है, वही इस जल का निर्मल और अनुपम गुण है। भरत का स्वभाव ही इस नदी की सुन्दर, शीतलता है जो सदा एक रस बनी रहती है और जिसका वर्णन नही किया जा सकता।

चारो भाइयो का परस्पर देखना, बोलना, मिलना, एक-दूसरे से प्रेम करना, हँसना और सुन्दर भाईपना इस जल की मधुरता और सुगन्ध है।

काव्य सौन्दर्य—अनुप्रास और रूपक अलंकार।

मूल—चौ०—आरति विनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारि न थोरी॥
अदभुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पिआस मनोमल हारी॥१॥
राम सुप्रेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी॥
भव श्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा॥२॥

काम कोह मद मोह नसावन । बिमल बिबेक बिराग बढावन ।।
सादर मज्जन पान किए तें । मिटहिं पाप परिताप हिए तें ।।३।।
जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए । ते कायर कलिकाल बिगोए ।।
तृषित निरखि रबि कर भव बारी । फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी ।।४।।

शब्दार्थ—आरति=दुःख । सुबारि=उत्तम जल । कलुष=पाप । दुरित=पाप । कोह=क्रोध । मानस=मन, हृदय । बिगोये=ठगे गये, बिगाड़े गये । रबि-कर-भव बारी=सूर्य की किरणो से उत्पन्न जल अर्थात् चमकती बालू रेत ।

भावार्थ—मेरा आर्तभाव, विनय और दीनता इस सुन्दर और निर्मल जल का कम हलकापन नहीं है (अर्थात् अत्यन्त हलकापन है) यह जल बड़ा ही अनोखा है, जो सुनने से ही गुण करता है और आशारूपी प्यास को और मनके मैल को दूर कर देता है।

यह जल श्री रामचन्द्रजी के सुन्दर प्रेम को पुष्ट करता है, कलियुग के समस्त पापो और उनसे होने वाली ग्लानि को हर लेता है। संसार के (जन्म-मृत्यु रूप) श्रम को सोख लेता है, सन्तोष को भी सन्तुष्ट करता है और पाप, ताप, दरिद्रता और दोषो को नष्ट कर देता है।

यह जल काम, क्रोध, मद और मोह का नाश करने वाला और निर्मल ज्ञान और वैराग्य को बढाने वाला है। इसमे आदरपूर्वक स्नान करने से और इसे पीने से हृदय मे रहने वाले सब पाप-ताप मिट जाते हैं।

जिन्होंने इस (राम-सुयशरूपी) जल से अपने हृदय को नही धोया, वे कायर कलिकाल के द्वारा ठगे गये। जैसे प्यासा हिरन सूर्य की किरणो के रेत पर पड़ने से उत्पन्न हुए जल के भ्रम को वास्तविक जल समझकर पीने को दौड़ता है और जल न पाकर दुखी होता है, वैसे ही वे (कलियुग से ठगे हुए) जीव भी [विषयो के पीछे भटककर] दुखी हुए डोलते हैं।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, रूपक और उपमा अलकार।

मूल—दो०—मति अनुहारि सुबारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ ।
सुमिरि भवानी संकरहि कह कवि कथा सुहाइ ।।४३(क)।।
अब रघुपति पद पंकरुह हियँ धरि पाइ प्रसाद ।
कहउँ जुगल मुनिबर्य कर मिलन सुभग संबाद ।।४३(ख)।।

भावार्थ—भरद्वाज याज्ञवल्क्य ऋषि से कह रहे हैं—हे नाथ ! जिस प्रकार से मेरा यह भारी भ्रम मिट जाय, आप वही कथा विस्तारपूर्वक कहिये। इस पर याज्ञवल्क्यजी मुसकराकर बोले, श्रीरामचन्द्रजी की प्रभुता को तुम जानते हो।

तुम मन, वचन और कर्म से श्रीरामजी के भक्त हो। तुम्हारी चतुराई को मैं जान गया हूँ। तुम श्रीरामजी के रहस्यमय गुणों को सुनना चाहते हो; इसी से तुम ने ऐसा प्रश्न किया है मानो बडे ही मूढ हो।

हे तात ! तुम आदरपूर्वक मन लगाकर सुनो, मैं श्रीरामजी की सुन्दर कथा कहता हूँ। बडा भारी अज्ञान विशाल महिषासुर है और श्रीरामजी की कथा [उसे नष्ट कर देने वाली] भयकर काली देवी हैं।

श्रीरामजी की कथा चन्द्रमा की किरणों के समान है, जिसे सन्त रूपी चकोर सदा पान करते है। ऐसा ही सन्देह जैसा तुम ने किया है, पार्वतीजी ने किया था, तब महादेवजी ने विस्तार से उसका उत्तर दिया था।

अब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार वही उमा और शिवजी का संवाद कहता हूँ। वह जिस समय और जिस हेतु से हुआ, उसे हे मुनि ! तुम सुनो, तुम्हारा विषाद मिट जायगा।

काव्य-सौन्दर्य—रूपक और अनुप्रास अलकार।

मूल–चौ०–एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं॥
संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी॥१॥
राम कथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी॥
रिषि पूछी हरिभगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई॥२॥
कहत सुनत रघुपति गुन गाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा॥
मुनि सन बिदा मांगि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छकुमारी॥३॥
तेहि अवसर भंजन महिभारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा॥
पिता बचन तजि राजु उदासी। दडक बिन बिचरत अबिनासी॥४॥

शब्दार्थ—कुंभज=अगस्त्य। पाही=पास। गिरिनाथा=शिवजी। अखिलेश्वर=सारे ससार के स्वामी।

भावार्थ—(अब भरद्वाज को याज्ञवल्क्यजी शिव-सती की कथा सुना रहे हैं)—

एक बार त्रेता युग में शिवजी अगस्त्य ऋषि के पास गये। उनके साथ जगज्जननी भवानी सतीजी भी थी। ऋषि ने सम्पूर्ण जगत् के ईश्वर जानकर उनका पूजन किया।

मुनिवर अगस्त्यजी ने विस्तार-पूर्वक राम-कथा कही और शिवजी ने उसे सुनकर परम सुख का अनुभव किया। फिर ऋषि ने शिवजी से सुन्दर हरि-भक्ति पूछी और शिवजी ने मुनि को उसका अधिकारी जानकर अगस्त्य को हरि-भक्ति का रहस्य समझाया।

राम के गुण-समूह की चर्चा करते हुए शिवजी कुछ काल तक अगस्त्य के यहाँ ठहरे। फिर मुनि से विदा माग कर दक्षकुमारी सती के साथ शिवजी अपने घर कैलाश-पर्वत को चल दिये।

उन दिनो पृथ्वी पर पृथ्वी का भार उतारने के लिए भगवान् राम ने रघुवंश मे अवतार लिया था। अविनाशी भगवान् अपने पिता के वचनो को प्रमाण मान कर राज्य छोड कर उदासीन-वृत्ति से दण्डक वन मे विचरण कर रहे थे।

मूल–दो०–हृदयँ बिचारत जात हर केहि बिधि दरसनु होई।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ ।।४८(क)।।

भावार्थ—शिवजी हृदय मे विचारते जा रहे थे कि भगवान् के दर्शन मुझे किस प्रकार हो। प्रभु ने गुप्त रूप से अवतार लिया है, मेरे जाने से सब लोग जान जायँगे।

मूल–सो०–संकर उर अति छोभु, सती न जानहिं मरमु सोइ।
तुलसी दरसन लोभु, मन डरु लोचन लालची ।।४८(ख)।।

भावार्थ–श्री शंकर के हृदय मे इस बात को लेकर बडी खलबली उत्पन्न हो गयी, परन्तु सतीजी इस भेद को नही जानती थी। तुलसीदासजी कहते हैं कि शिवजी के मन मे [भेद खुलने का] डर था, परन्तु दर्शन के लोभ से उनके नेत्र ललचा रहे थे।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलंकार।

मूल–चौ०–रावन मरन मनुज कर जाचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साचा ।।
जौं नहिं जाउँ रहइ पछितावा। करत बिचारु न बनत बनावा ।।१।।

एहि विधि भए सोचबस ईसा । तेही समय जाइ दससीसा ॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा । भयउ तुरत सोइ कपटकुरंगा ॥२॥
करि छलु मूढ़ हरी बैदेही । प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही ॥
मृग बधि बंधु सहित हरि आए । आश्रमु देखि नयन जल छाए ॥३॥
बिरह बिकल नर इव रघुराई । खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई ॥
कबहूँ जोग बियोग न जाकें । देखा प्रगट बिरह दुखु ताकें ॥४॥

शब्दार्थ—जाँचा=माँगा । बनावा=युक्ति, उपाय । कुरंगा=मृग । बैदेही=सीता । बिपिन=वन ।

भावार्थ—याज्ञवल्क्य भरद्वाज कह रहे हैं—रावण ने तपस्या करके ब्रह्माजी से अपनी मृत्यु मनुष्य के हाथ से मागी थी । भगवान् विधाता के वचनो को सत्य करना चाहते थे । शिवजी मन मे विचार कर रहे थे कि यदि मैं उनके पास नही जाता हूँ तो पछतावा रह जायगा । कोई उपाय ठीक नही जँच रहा था । इस प्रकार शिवजी अपने मन मे चिन्ता कर रहे थे । उसी समय नीच रावण ने मारीच नामक राक्षस को साथ लिया और वह (मारीच) तुरन्त ही कपट का मृग (सोने का हिरण) बन गया ।

मूर्ख (रावण) ने छल करके सीताजी को हर लिया । उसे श्रीरामचन्द्रजी के वास्तविक प्रभाव का कुछ भी पता न था । मृग को मार कर, भाई लक्ष्मण सहित श्रीहरि आश्रम मे आये और उसे खाली देखकर (अर्थात् वहाँ सीताजी को न पाकर) उनके नेत्रो मे आँसू भर आये ।

श्रीरघुनाथजी मनुष्यो की भाँति विरह से व्याकुल हैं और दोनो भाई वन मे सीता को खोजते हुए फिर रहे हैं । जिनको कभी कोई सयोग-वियोग नहीं होता उनमे भी प्रत्यक्ष विरह का दु ख देखा गया ।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, उपमा और विरोधाभास अलकार ।

मूल-दो०—अति बिचित्र रघुपति चरित जानहिं परम सुजान ।
जे मतिमंद बिमोह बस हृदयँ धरहिं कछु आन ॥४९॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजी का चरित्र बडा ही विचित्र है, उसको पहुँचे हुए ज्ञानी जन ही जानते हैं । जो मन्द बुद्धि हैं, वे तो विशेष रूप से मोह के वश होकर हृदय मे कुछ दूसरी ही बात समझ बैठते है ।

मूल—चौ०—सतु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हियँ अति हरषु विसेषा॥
भरि लोचन छविसिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी॥१॥
जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन॥
चले जात सिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता॥२॥
सती सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेहु विसेषी॥
संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥३॥
तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा॥
भए मगन छवि तासु विलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी॥४॥

दो०—ब्रह्म जो व्यापक विरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत वेद॥५०॥

शब्दार्थ—छवि=शोभा। चिन्हारी=परिचय। मनोज-नशावन=शिव (कामदेव को नष्ट करने वाले)। विरज=माया-रहित। अज=अजन्मा। अकल=अगोचर। अनीह=इच्छा-रहित।

भावार्थ—याज्ञवल्क्य भरद्वाज ऋषि से कह रहे हैं—श्रीशिवजी ने उसी अवसर पर श्रीरामजी को देखा और उनके हृदय में बहुत भारी आनन्द उत्पन्न हुआ। उन शोभा के समुद्र (श्रीरामचन्द्रजी) को शिवजी ने नेत्र भर देखा, परन्तु अवसर ठीक न जानकर परिचय नहीं किया।

जगत् के पवित्र करने वाले सच्चिदानन्द की जय हो, इस प्रकार कह कर कामदेव का नाश करने वाले शिवजी चल पड़े। कृपानिधान श्रीशिवजी बार-बार आनन्द से पुलकित होते हुए सतीजी के साथ चले जा रहे थे।

सती ने जब शिवजी की ऐसी स्थिति देखी, तब उसके मन में बड़ा भारी सन्देह उत्पन्न हो गया कि जो शिव जगद्वन्द्य हैं, जगत् के स्वामी हैं, और जिनको सब देवता, मनुष्य और मुनि लोग सिर झुकाते हैं, उन्होंने एक राजपुत्र को "सच्चिदानन्द परम धाम" कह कर प्रणाम किया। उसकी छवि देख कर वे ऐसे मोहित हो गये कि अब तक उनके हृदय में रोकने से भी प्रेम नहीं रुकता—वे प्रेम-मग्न हो रहे हैं।

जो ब्रह्म, सर्व व्यापक, माया रहित, अजन्मा, अगोचर, इच्छा रहित और भेद रहित है, और जिसे वेद भी नहीं जानते, क्या वह देह धारण

शब्दार्थ—पंकरुह्=कमल । गनि=विचारकर ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार इस सुन्दर जल के गुणो पर विचार करके तथा इसमे अपने मनको स्नान कराकर तथा शिव और पार्वती का स्मरण करके इस कथा का आरम्भ करता हूँ ।

मैं अब श्रीरघुनाथजी के चरण-कमलो को हृदय मे धारण कर और उनका प्रसाद पाकर दोनो श्रेष्ठ मुनियो के मिलन का सुन्दर सवाद वर्णन करता हूँ ।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और रूपक अलंकार ।

मूल-चौ०—भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा । तिन्हहि राम पद अति अनुरागा ॥
तापस सम दम दया निधाना । परमारथ पथ परम सुजाना ॥१॥
माघ मकरगत रवि जब होई । तीरथपतिहिं आव सब कोई ॥
देव दनुज किंनर नर श्रेनीं । सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं ॥२॥
पूजहिं माधव पद जलजाता । परसि अखय बटु हरषहिं गाता ॥
भरद्वाज आश्रम अति पावन । परम रम्य मुनिबर मन भावन ॥३॥
तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा । जाहिं जे मज्जन तीरथ राजा ॥
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा । कहहिं परसपर हरि गुन गाहा ॥४॥
दो०—ब्रह्म निरूपन धरम बिधि बरनहिं तत्त्व बिभाग ।
कहहिं भगति भगवंत कै संजुत ग्यान बिराग ॥४४॥

शब्दार्थ—मकरगत=मकर राशि पर । श्रेणी=समूह । जलजात=कमल । संजुत=युक्त ।

भावार्थ—(यहाँ से भरद्वाज और याज्ञवल्क्य का मिलन एव राम-कथा की चर्चा का प्रसग आरम्भ होता है ।)

भरद्वाज मुनि प्रयाग मे बसते हैं और उनका श्रीराम के चरणो मे अत्यन्त प्रेम है । वे तपस्वी हैं तथा शम, दम और दया के निधान है और परमार्थ के मार्ग मे बडे ही सज्जन हैं ।

जब माघ-मास मे सूर्य मकर राशि पर आता है, तब सब लोग तीर्थराज प्रयाग को आते हैं । देवता, दैत्य, किन्नर तथा मनुष्य सब समूहो मे आकर आदर-पूर्वक त्रिवेणी मे स्नान करते हैं ।

वे वहाँ श्रीवेणीमाधवजी के चरण कमलों को पूजते हैं और अक्षय वट का स्पर्श कर उनके शरीर पुलकित होते हैं। भरद्वाजजी का आश्रम बहुत ही पवित्र, परम रमणीय और श्रेष्ठ मुनियों के मन को भाने वाला है।

जो ऋषि-मुनि प्रयाग में स्नान करने जाते हैं, उनका समाज भरद्वाज मुनि के आश्रम में एकत्र होता है। प्रातःकाल सब उत्साह-पूर्वक स्नान करते हैं और आपस में भगवान् के गुणों की चर्चा करते हैं।

वे ब्रह्म का निरूपण, धर्म का विधान और तत्त्वों के विभाग का वर्णन करते हैं तथा ज्ञान-वैराग्य से युक्त भगवान् की भक्ति का कथन करते हैं।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलंकार।

मूल—चौ०—एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं। पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं॥
प्रति संवत अति होइ अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनिबृन्दा॥१॥
एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए॥
जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी॥२॥
सादर चरन सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे॥
करि पूजा मुनि सुजसु बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बानी॥३॥
नाथ एक संसउ बड़ मोरें। करगत बेदतत्त्व सबु तोरें॥
कहत सो मोहि लागत भय लाजा। जौं न कहउँ बड़ होइ अकाजा॥४॥
दो०—संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न बिमल बिबेक उर गुर सन किएँ दुराव॥४५॥

शब्दार्थ—मज्जि=स्नान करके। जागबलिक=याज्ञवल्क्य। टेकी=पकड़ कर। दुराव=छिपाव।

भावार्थ—सब लोग एकत्र होकर वहाँ माघ के महीने भर स्नान करते हैं और फिर सब अपने-अपने आश्रमों को लौट जाते हैं। प्रतिवर्ष इसी प्रकार प्रयाग में आनन्द होता है। मकर-स्नान करके मुनिगण चले जाते हैं।

एक बार ऐसा हुआ कि जब सब मुनि मकर भर स्नान करके अपने-अपने आश्रमों को लौट गये, तब भरद्वाज मुनि ने चरण पकड़ कर याज्ञवल्क्य मुनि को रोक लिया।

आदर-पूर्वक भरद्वाज ने उनके चरण-कमल धोये और उनको अत्यन्त

पवित्र आसन पर बिठाया। मुनि की पूजा करके फिर उनके सुयश का वर्णन किया। तदनन्तर भरद्वाज ऋषि ने अत्यन्त पवित्र और कोमलवाणी से याज्ञवल्क्य को निवेदन किया।

हे नाथ ! मेरे मन मे एक बडा सन्देह है, वेदो का तत्त्व सब आपकी मुट्ठी मे है। (अर्थात् आप ही वेद का तत्त्व जानने वाले होने के कारण मेरा सन्देह निवारण कर सकते हैं) पर उस सन्देह को कहते मुझे भय और लाज आती है। भय इसलिये कि कहीं आप यह न समझें कि मेरी परीक्षा ले रहा है, लाज इसलिये कि इतनी आयु बीत गयी, अब तक ज्ञान न हुआ) और यदि नहीं कहता तो बडी हानि होती है [क्योकि अज्ञानी बना रहता हूँ।]

हे प्रभो ! सतलोग ऐसी नीति कहते हैं और वेद, पुराण तथा मुनिजन भी यही बतलाते हैं कि गुरु के साथ छिपाव करने से हृदय मे निर्मल ज्ञान नही होता।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और रूपक।

चौ०—अस विचारि प्रगटउँ निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू ॥
राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा ॥१॥
संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ग्यान गुन रासी ॥
आकर चारि जीव जग अहहीं। कासीं मरत परम पद लहहीं ॥२॥
सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेसु करत करि दाया ॥
रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही ॥३॥
एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा ॥
नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा। भयउ रोषु रन रावनु मारा ॥४॥

दो०—प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि ॥४६॥

शब्दार्थ—मोहू=अज्ञान। छोहू=प्रेम, स्नेह। आकर=प्रकार, जाति के। अहहीं=हैं। परम पद=मुक्ति। सोपि=वह भी। अपर=अन्य, दूसरा। त्रिपुरारि=महादेव।

भावार्थ—भरद्वाज याज्ञवल्क्य से कह रहे हैं—यही सोचकर मैं अपना अज्ञान प्रकट करता हूँ। हे नाथ ! सेवक पर कृपा करके इस अज्ञान का नाश

कीजिये। संतों, पुराणों और उपनिषदों ने राम-नाम के असीम प्रभाव का गान किया है।

कल्याणस्वरूप, ज्ञान और गुणों की राशि, अविनाशी भगवान् शम्भु निरन्तर राम नाम का जप करते रहते हैं। संसार में चार जाति के जीव हैं (अण्डज, उद्भिज, जरायुज और स्वेदज) काशी में मरने से सभी परम पद को प्राप्त करते हैं।

हे मुनिराज! वह भी राम [नाम] की ही महिमा है, क्योंकि शिवजी महाराज दया करके [काशी में मरने वाले जीव को] राम नाम का ही उपदेश करते हैं [इसी से उनको परम पद मिलता है]। हे प्रभो! मैं आपसे पूछता हूँ कि वे राम कौन हैं? हे कृपानिधान! मुझे समझाकर कहिये।

एक राम तो अवध नरेश दशरथजी के कुमार हैं, उनका चरित्र सारा संसार जानता है। उन्होंने स्त्री के विरह में अपार दुःख उठाया और क्रोध आने पर युद्ध में रावण को मार डाला।

हे प्रभो! ये वही राम हैं या और कोई दूसरे हैं, जिनको शिवजी दिनरात जपते रहते हैं। आप सत्यधाम और सर्वज्ञ हैं, ज्ञान विचार करके मुझे बतलाइए।

मूल–चौ०–जैसें मिटै मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी॥
जागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई॥१॥
रामभगत तुम्ह मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी॥
चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा। कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा॥२॥
तात सुनहु सादर मनु लाई। कहउँ राम कै कथा सुहाई॥
महामोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥३॥
राम कथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना॥
ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी॥४॥
दो०–कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु संवाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद॥४७॥

शब्दार्थ—गूढ़=[illegible]। जागबलिक=याज्ञवल्क्य। महिषेसु=महिषासुर। कराला=भयंकर। हेतु=[illegible]।

करके मनुष्य हो नजता है ?

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलकार ।

मूल—चौ०—विष्नु जो सुर हित नरतनु धारी । सोउ सर्वग्य जथा त्रिपुरारी ॥
खोजइ सो कि अग्य इव नारी । ग्यानधाम श्रीपति असुरारी ॥१॥
संभुगिरा पुनि मृषा न होई । सिव सर्वग्य जान सबु कोई ॥
अस संसय मन भयउ अपारा । होइ न हृदयँ प्रबोध प्रचारा ॥२॥
जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी । हर अन्तरजामी सब जानी ॥
सुनहि सती तव नारि सुभाऊ । ससय अस न धरिअ उर काऊ ॥३॥
जासु कथा कुभज रिषि गाई । भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई ॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा । सेवत जाहि सदा मुनि धीरा ॥४॥

शब्दार्थ—असुरारी=असुरो (राक्षसो) के शत्रु । मृषा=झूठ । प्रबोध प्रचारा=ज्ञान का प्रादुर्भाव । जाहि=जिसको ।

भावार्थ—सती अपने मन मे विचार कर रही है—देवताओ के हित के लिये मनुष्य शरीर धारण करने वाले जो विष्णु भगवान् हैं, वे भी शिवजी की ही भाँति सर्वज्ञ हैं । वे ज्ञान के भण्डार, लक्ष्मीपति और असुरो के शत्रु भगवान् विष्णु क्या अज्ञानी की तरह स्त्री को खोजेंगे ।

फिर शिवजी के वचन भी झूठे नही हो सकते । सब कोई जानते हैं कि शिवजी सर्वज्ञ हैं । सती के मन मे इस प्रकार का अपार सन्देह उठ खड़ा हुआ, किसी तरह भी उनके हृदय मे ज्ञान का प्रादुर्भाव नहीं होता था ।

यद्यपि भवानीजी ने प्रकट कुछ नही कहा, पर अन्तर्यामी शिवजी सब जान गये । वे बोले—हे सती ! सुनो, तुम्हारा स्त्री स्वभाव है । ऐसा सन्देह मन मे कभी न रखना चाहिये ।

जिनकी कथा का अगस्त्य ऋषि ने गान किया और जिनकी भक्ति मैंने मुनि को सुनायी, ये वही मेरे इष्टदेव श्रीरघुवीरजी है, जिनकी सेवा ज्ञानी मुनि सदा किया करते है ।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और उपमा अलकार ।

हरि गीतिका छ०—मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत विमल मन जेहि ध्यावहीं ।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं ॥

सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी॥
सो०—लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवँ बार बहु।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियँ॥५१॥

शब्दार्थ—सतत=निरन्तर। आगम=शास्त्र। भुवननिकायपति=लोकपति। निजतंत्र=स्वतन्त्र।

भावार्थ—शिवजी सती को समझा रहे हैं—मुनि लोग, धीर पुरुष, योगी और सिद्ध निर्मल चित्त से जिनका सदा ध्यान करते हैं तथा वेद, पुराण और शास्त्र जिनकी कीर्ति को 'नेति-नेति' कह कर गाते हैं, वे ही सर्व-व्यापक समस्त भुवनों के पति, माया के स्वामी रघुकुल-मणि (राम) के रूप में अवतरित हुए हैं—अर्थात् मानव-शरीर धारण किया है।

यद्यपि शिवजी ने बहुत बार समझाया, फिर भी सतीजी के हृदय में उनका उपदेश नहीं बैठा। तब महादेवजी मन में भगवान् की माया का बल जानकर मुसकराते हुए बोले।

मूल–चौ०-जो तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू॥
तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं॥१॥
जैसें जाइ मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी॥
चलीं सती सिव आयसु पाई। करहिं बिचारु करौं का भाई॥२॥
इहाँ संभु अस मन अनुमाना। दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना॥
मोरेहु कहें न संसय जाहीं। बिधि बिपरीत भलाई नाहीं॥३॥
होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥
अस कहि लगे जपन हरिनामा। गई सती जहँ प्रभु सुख धामा॥४॥

शब्दार्थ—ऐहहु=आओगी। पाहीं=पास। आयसु=आज्ञा। साखा बढ़ावै=विस्तार करे

भावार्थ—शिव सती से कह रहे हैं—यदि तुम्हारे मन में बहुत अधिक संदेह है तो तुम जाकर परीक्षा क्यों नहीं ले लेती? जब तक तुम लौट कर मेरे पास आओगी, तब तक मैं इस वट-वृक्ष की छाया में बैठा हूँ।

जिस प्रकार तुम्हारा यह अज्ञानजनित भारी भ्रम दूर हो, [भलीभांति]

विवेक के द्वारा सोच-समझकर तुम वही करना। शिवजी की आज्ञा पाकर सती चलीं और मन मे सोचने लगी कि भाई ! क्या करूँ (कैसे परीक्षा लूँ) ?

इधर शिवजी ने मन में सोचा कि सती का कल्याण नजर नहीं आता है, क्योंकि जब मेरे समझाने पर भी सन्देह दूर नहीं होता, तब विधाता उलटा प्रतीत होता है, इस कारण मुझे अब सती की कुशल दिखलाई नहीं पड़ती।

जो कुछ राम ने रच रक्खा है, वही होगा। तर्क करके कौन शाखा (विस्तार) बढ़ावे। [मन मे] ऐसा कह कर शिवजी भगवान् श्रीहरि का नाम जपने लगे और सतीजी वहाँ गयीं जहाँ सुख के धाम प्रभु श्रीरामचन्द्रजी थे।

मूल—दो०—पुनि पुनि हृदयँ विचारु करि धरि सीता कर रूप।
आगें होइ चलि पथ तेहिं जेहिं आवत नरभूप ॥५२॥

भावार्थ—सती बार-बार मन मे विचार कर सीताजी का रूप धारण करके उस मार्ग की ओर आगे होकर चली जिससे [सतीजी के विचारानुसार] मनुष्यो के राजा रामचन्द्रजी आ रहे थे।

काव्य-सौन्दर्य पुनरुक्ति प्रकाश अलकार।

मूल—चौ०—लछिमन दीख उमाकृत बेषा। चकित भए भ्रम हृदयँ बिसेषा ॥
कहि न सकत कछु अति गभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा ॥१॥
सती कपटु जानेउ सुरस्वामी। सबदरसी सब अन्तरजामी ॥
सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना। सोइ सरबग्य रामु भगवाना ॥२॥
सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ। देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ ॥
निज माया बलु हृदयँ बखानी। बोले बिहसि रामु मृदु बानी ॥३॥
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू ॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू ॥४॥

दो०—राम बचन मृदु गूढ सुनि उपजा अति संकोचु।
सती सभीत महेस पहिं चलीं हृदयँ बड सोचु ॥५३॥

शब्दार्थ—सरबग्य=सब कुछ जानने वाले। सुरस्वामी=रामचन्द्रजी। दुराउ=छिपाव। पानि=हाथ। बहोरि=फिर। बृषकेतु=महादेव। पहिं=पास।

भावार्थ—सर्व-प्रथम सती पर लक्ष्मणजी की दृष्टि पड़ी। सतीजी के बनावटी वेष को देख कर लक्ष्मणजी चकित हो गये, और उनके हृदय में बड़ा

भ्रम हो गया। वे बहुत गम्भीर हो गये, कुछ कह नहीं सके। धीर बुद्धि लक्ष्मण प्रभु रघुनाथजी के प्रभाव को जानते थे।

देवताओं के स्वामी रामचन्द्रजी, जो सर्वदर्शी और घट-घट के ज्ञाता हैं, सती के कपट को पहचान गये। जिनका स्मरण करने मात्र से अज्ञान का नाश हो जाता है, वे भगवान् राम सर्वज्ञ हैं।

स्त्री स्वभाव का असर तो देखो कि वहाँ (उन सर्वज्ञ भगवान् के सामने) भी सतीजी छिपाव करना चाहती हैं। अपनी माया के बल हृदय में बखान कर, श्रीरामचन्द्रजी हँसकर कोमल वाणी से बोले।

पहले प्रभु ने हाथ जोड़कर सती को प्रणाम किया और पिता सहित अपना नाम बताया। फिर कहा कि वृषकेतु शिवजी कहाँ हैं? आप यहाँ वन में अकेली किस लिये फिर रही हैं?

श्रीरामचन्द्रजी के कोमल और रहस्य भरे वचन सुनकर सतीजी को बड़ा सङ्कोच हुआ। वे डरती हुई (चुपचाप) शिवजी के पास चलीं, उनके हृदय में बड़ी चिन्ता हो गयी।

(इन पंक्तियों में स्त्री सुलभ दुर्बलता का सुन्दर परिचय दिया गया है।)

मूल-चौ०-मैं संकर कर कहा न माना। निज अग्यानु राम पर आना॥
जाइ उतरु अब देहउँ काहा। उर उपजा अति दारुन दाहा॥१॥
जाना राम सतीं दुखु पावा। निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा॥
सतीं दीख कौतुकु मग जाता। आगें राम सहित श्री भ्राता॥२॥
फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुन्दर बेषा॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना॥३॥
देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा॥४॥
दो०—सतीं बिधात्री इन्दिरा देखीं अमित अनूप।

भावार्थ—सती भी सब कुछ जान गयी वह मन मे सोचने लगी— मैंने भगवान् शकर का कहना नही माना और अपने अज्ञान को मैंने रामचन्द्रजी पर थोपा। अब मैं शकर के पास जाकर क्या उत्तर दूंगी ? इस प्रकार चिन्ता करते हुए सती के हृदय मे अत्यन्त भयकर जलन पैदा हो गई।

श्रीरामचन्द्रजी ने जान लिया कि सतीजी को दु ख हुआ, तब उन्होंने अपना कुछ प्रभाव प्रकट करके उन्हे दिखलाया। सतीजी ने मार्ग मे जाते हुए यह कौतुक देखा कि श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी और लक्ष्मण सहित आगे चले जा रहे हैं। [इस अवसर पर सीताजी को इसलिये दिखाया कि सतीजी श्रीराम के सच्चिदानन्दमय रूपको देखे, वियोग और दु ख की कल्पना जो उन्हे हुई थी दूर हो जाय तथा वे प्रकृतिस्थ हो]।

तदनन्तर सती ने पीछे की ओर मुड कर देखा, उन्हे वहाँ भी सुन्दर वेश मे लक्ष्मण और सीता-सहित श्रीरामचन्द्रजी दिखलाई दिये। जिधर भी सती ने देखा, उधर ही उनको रामचन्द्रजी बैठे हुए दिखलाई दिये, जो चतुर, सिद्ध और ऋषियो-मुनियो द्वारा सेवा किये जा रहे थे।

सती ने अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णु देखे, जो एक से एक बढकर असीम प्रभाव वाले थे। सती ने देखा कि विभिन्न प्रकार के वेष धारण किये सभी देवता श्रीराम चरण-वन्दना और सेवा कर रहे है।

उन्होने अनगिनत अनुपम सती, ब्रह्माणी और लक्ष्मी देखी। जिस-जिस रूप मे ब्रह्मा आदि देवता थे, उसी के अनुकूल रूप मे उनकी ये सब शक्तियाँ भी थी।

काव्य-सौन्दर्य—यमक और अनुप्रास अलकार।

मूल–चौ०–देखें जहँ तहँ रघुपति जेते। सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते ॥
जीव चराचर जो ससारा। देखे सकल अनेक प्रकारा ॥१॥
पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा। राम रूप दूसर नहिं देखा ॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न बेष घनेरे ॥२॥
सोइ रघुबर सोइ लछिमन सीता। देखि सती अति भई सभीता ॥
हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं। नयन मूदि बैठीं मग माहीं ॥३॥

अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। रामभगत समरथ भगवाना ॥
सुनि नभगिरा सती उर सोचा। पूछा सिवहि समेत सकोचा ॥३॥
कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला। सत्यधाम प्रभु दीनदयाला ॥
जदपि सतीं पूछा बहु भांती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती ॥४॥

शब्दार्थ—भै=हुई। गिरा=वाणी। नभगिरा=आकाश वाणी। सँकोचा=सकोच-पूर्वक। पन=प्रतिज्ञा, प्रण। त्रिपुर आराती=त्रिपुर राक्षस के शत्रु अर्थात् शिव।

भावार्थ—स्थिर बुद्धि शंकरजी ऐसा विचार कर श्रीरघुनाथजी का स्मरण करते हुए अपने घर (कैलास) को चले। चलते समय सुन्दर आकाशवाणी हुई कि हे महेश! आपकी जय हो। आपने भक्ति की अच्छी दृढता प्रकट की है।

आपको छोडकर दूसरा कौन ऐसी प्रतिज्ञा कर सकता है? आप श्रीरामचन्द्रजी के भक्त हैं, समर्थ हैं, और भगवान् हैं। इस आकाशवाणी को सुनकर सती के मन में चिन्ता हुई और उन्होने सकुचाते हुए शिवजी से पूछा—

हे कृपालु! कहिये आपने कौनसी प्रतिज्ञा की है? हे प्रभो! आप सत्य के धाम और दीनदयालु हैं। यद्यपि सती ने बहुत प्रकार से पूछा, परन्तु त्रिपुरारि शिवजी ने कुछ न कहा।

मूल—दो०—सती हृदयँ अनुमान किय सबु जानेउ सर्बग्य।
कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड अग्य ॥५७(क)॥

भावार्थ—सतीजी ने हृदय में अनुमान किया कि सर्वज्ञ शिवजी सब जान गये। मैंने शिवजी से कपट किया, स्त्री स्वभाव से ही मूर्ख और बेसमझ होती है। (कपट करना स्त्री की एक महती दुर्बलता है।)

मूल—सो०—जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि।
बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि ॥५७(ख)॥

भावार्थ—प्रीति की सुन्दर रीति देखिये कि जल भी दूध के साथ मिलकर दूध के समान भाव बिकता है, परन्तु फिर कपट रूपी खटाई पडते ही पानी अलग हो जाता है (दूध फट जाता है) और स्वाद (प्रेम) जाता रहता है।

काव्य-सौन्दर्य—'कपट खटाई' मे रूपक अलकार ।

मूल–चौ०-हृदयँ सोचु समुझत निज करनी । चिंता अमित जाइ नहिं वरनी ॥
कृपासिंधु सिव परम अगाधा । प्रगट न कहेउ मोर अपराधा ॥१॥
सकर रुख अवलोकि भवानी । प्रभु मोहि तजेउ हृदयँ अकुलानी ॥
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई । तपइ अवाँ इव उर अधिकाई ॥
सतिहि ससोच जानि बृषकेतु । कही कथा सुन्दर सुख हेतू ॥
बरनत पथ विविध इतिहासा । बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा ॥३॥
तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन । बैठे बट तर करि कमलासन ॥
सकर सहज सरूपु सम्हारा । लागि समाधि अखड अपारा ॥४॥

दो०—सती बसहिं कैलास तब अधिक सोचु मन माहिं ।
मरमु न कोऊ जान कछु जुग सम दिवस सिराहिं ॥५८॥

शब्दार्थ—मोर=मेरा । अवाँ=कुम्हार का आवाँ (हाव) जिसमे बर्तन पकते हैं । वृषकेतु=शकर । सिराहि=बीतते हैं ।

भावार्थ—सती को अपनी करनी पर बडा पछतावा हो रहा है, वह इतनी चिन्ता कर रही है कि जिसका वर्णन नही किया जा सकता । सती ने समझ लिया कि शिवजी कृपा के परम अथाह सागर हैं, गंभीर हैं, अत उन्होंने प्रकट मे मुझ से मेरा अपराध नही कहा ।

शिवजी का रुख देखकर सतीजी ने जान लिया कि स्वामी ने मेरा त्याग कर दिया और वे हृदय मे व्याकुल हो उठी । अपना पाप समझ कर कुछ कहते नही बनता, परन्तु हृदय [भीतर-ही-भीतर] कुम्हार के आँवे के समान अत्यन्त जलने लगा ।

सती को शिवजी ने जब चिंतित देखा, तब वे उन्हे रसमयी सुन्दर कथाएँ कहने लगे । इस प्रकार मार्ग मे अनेक प्रकार की कथा-वार्ता करते हुए शिवजी कैलाश जा पहुँचे ।

वहाँ पहुँच कर शिवजी ने अपने प्रण का स्मरण किया और पद्मासन लगा कर वे वट-वृक्ष के नीचे बैठ गये । शकर ने अपना स्वाभाविक रूप सभाला और उन्होने अखण्ड अपार समाधि लगा ली । महादेवजी के समाधि लगा लेने पर सती कैलाश पर रहने लगी । उनके मन मे बडा दुःख था । इस रहस्य को

कोई कुछ भी नही जानता था। उनका एक-एक दिन युग के समान बीत रहा था।

दो०-चौ०-नित नव सोचु सती उर भारा। कब जैहउँ दुख सागर पारा॥
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना। पुनि पतिवचनु मृषा करि जाना॥१॥
सो फलु मोहि बिधाताँ दीन्हा। जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा॥
अब बिधि अस बूझिअ नहिं तोही। संकर बिमुख जिआवसि मोही॥२॥
कहि न जाइ कछु हृदय गलानि। मन महुँ रामहि सुमिर सयानी॥
जौं प्रभु दीनदयालु कहावा। आरति हरन बेद जसु गावा॥३॥
तौ मैं बिनय करउँ कर जोरी। छूटउ बेगि देह यह मोरी॥
जौं मोरें सिव चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू॥४॥

दो०—तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ।
होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ॥५९॥

शब्दार्थ—जैहउँ=जाऊँगी। मृषा=झूठे। जिआवसि=जीवित रख रहा है। आरति=दु ख। बिहाइ=छूट जाय।

भावार्थ—सती के हृदय मे नित्य नया और भारी सोच हो रहा था कि मैं इस दु ख समुद्र के पार कब जाऊँगी। मैंने जो श्रीरघुनाथजी का अपमान किया और फिर पति के वचनो को झूठ जाना—उसका फल विधाता ने मुझे दे दिया। जो उचित था, वही हुआ। किन्तु हे विधाता! तुझे यह उचित नही है कि तू मुझको शंकर-विमुख रख कर जीवित रखे। इस समय सती के हृदय की ग्लानि का वर्णन नही किया जा सकता। तदनन्तर चतुर सती ने मन मे श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण किया और कहा—हे प्रभो! यदि आप दीनदयालु कहलाते हैं और वेदो ने आपका यह यश गाया है कि आप दु ख को हरने वाले हैं। यदि ऐसी बात है तो मैं हाथ जोड़ कर विनती करती हूँ कि मेरा शरीर अब तुरन्त छूट जाय।

यदि मेरा प्रेम शिवजी के चरणों मे सच्चा है और यदि मेरा यह व्रत मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य है तो हे सर्वदर्शी प्रभो! ऐसा कोई उपाय शीघ्र कीजिए कि बिना श्रम मेरा मरण हो और मुझे इस असह्य विपत्ति से छुटकारा मिल जाय।

काव्य सौन्दर्य—अनुप्रास अलंकार।

मूल–चौ०–एहि विधि दुखित प्रजेसकुमारी। अकथनीय दारुन दुखु भारी॥
बीतें संवत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अविनाशी॥१॥
राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सतीं जगतपति जागे॥
जाइ संभु पद बन्दनु कीन्हा। सनमुख संकर आसनु दीन्हा॥२॥
लगे कहन हरि कथा रसाला। दच्छ प्रजेस भए तेहि काला॥
देखा विधि बिचारि सब लायक। दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक॥३॥
बड़ अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिमानु हृदयँ तब आवा॥
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥४॥

दो०—दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग॥६०॥

शब्दार्थ—प्रजेसकुमारी=सती। रसाला=रसमयी। तेहि काला=उन्ही दिनो मे। लायक=योग्य, समर्थ। प्रजेस=प्रजापति। जाग=यज्ञ। मख=यज्ञ। नेवते=निमन्त्रित किया।

भावार्थ—शिवजी ने समाधि लगाली और सती एकाकी कैलाश पर्वत पर बहुत दुखी अवस्था मे रह रही थी। उसको उस समय जो मानसिक पीडा हो रही थी, उसका वर्णन नही किया जा सकता। सत्तासी हजार वर्ष बीत जाने पर अविनाशी शंकर ने अपनी समाधि भंग की। समाधि खोलते ही शिव राम-नाम का स्मरण करने लगे। शिवजी को राम का नाम लेते देख कर सती ने जान लिया कि जगत् के स्वामी शंकर समाधि से जाग गये। सती ने जाकर शिव की चरण-वन्दना की, शिवजी ने सती को बैठने के लिए सामने आसन दिया और वे हरि की रसमयी कथा सती को सुनाने लगे। उन्ही दिनो मे सती के पिता राजा दक्ष प्रजापति बने और ब्रह्माजी ने दक्ष को सब प्रकार से योग्य पाकर प्रजापतियो का नायक बना दिया।

जब दक्ष ने इतना बडा अधिकार प्राप्त कर लिया, तब उनके हृदय मे अत्यन्त अभिमान आ गया। जगत् में ऐसा कोई नही पैदा हुआ जिसको प्रभुता पाकर मद न हुआ हो।

दक्ष ने सब मुनियो को बुला लिया और वे बडा यज्ञ करने लगे। जो

देवता यज्ञ का भाग पाते हैं, दक्ष ने उन सबको आदर सहित निमन्त्रित किया ॥६०॥

मूल—चौ०—किंनर नाग सिद्ध गंधर्वा। वधुन्ह समेत चले सुर सर्वा॥
विष्नु विरंचि महेसु विहाई। चले सकल सुर जान वनाई॥१॥
सतीं विलोके व्योम विमाना। जात चले सुन्दर विधि नाना॥
सुर सुन्दरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना॥२॥
पूछेउ तब सिवें कहेउ बखानी। पिता जग्य सुनि कछु हरषानी॥
जौं महेसु मोहि आयसु देहीं। कछु दिन जाइ रहौं मिस एहीं॥३॥
पति परित्याग हृदयँ दुखु भारी। कहइ न निज अपराध विचारी॥
बोली सती मनोहर वानी। भय संकोच प्रेमरस सानी॥४॥

दो०—पिता भवन उत्सव परम जौं प्रभु आयसु होइ।
तो मैं जाउँ कृपायतन सादर देखन सोइ॥६१॥

शब्दार्थ—सुर जान=सुर-यान, विमान। विहाइ=छोड़कर। बधुन्ह=स्त्रियाँ। कल=मधुर। मिस=बहाना। आयसु=आज्ञा।

भावार्थ—राजा दक्ष का निमन्त्रण पाकर किन्नर, नाग, सिद्ध, गंधर्व और सब देवता अपनी-अपनी स्त्रियों के सहित यज्ञ में भाग लेने को चल पड़े। विष्णु, ब्रह्मा, और महादेव को छोड़कर सब देवता अपना-अपना विमान सजा कर रवाना हो गये।

सती ने देखा अनेक प्रकार के सुन्दर विमान आकाश में चले जा रहे हैं। देव सुन्दरियाँ मधुर गान कर रही हैं, जिन्हें सुन कर मुनियों का ध्यान भी टूट जाता है।

सती ने [विमानों में देवताओं के जाने का कारण] पूछा, तब शिवजी ने सब बातें बतलाईं। पिता के यज्ञ की बात सुनकर सती कुछ प्रसन्न हुईं और सोचने लगीं कि यदि महादेवजी मुझे आज्ञा देवें, तो इसी बहाने मैं कुछ दिन पिता के घर जाकर रहूँ।

क्योंकि सती के हृदय में पति के द्वारा मन में त्याग दिये जाने के कारण बड़ा भारी दुःख था, किन्तु सती स्वयं अपना ही अपराध मान कर इस सम्बन्ध में कहती कुछ नहीं थीं। अन्त में सती ने भय, संकोच और प्रेम रस में

सती मनोहर वाणी में शिवजी से कहा—

हे प्रभो ! मेरे पिता के घर बहुत बड़ा उत्सव है। यदि आपकी आज्ञा हो तो हे कृपाधाम ! मैं आदर सहित उसे देखने जाऊँ।

मूल—चौ०—कहेहु नीक मोरेहुँ मन भावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा॥
दच्छ सकल निज सुता बोलाईं। हमरें बयर तुम्हउ बिसराईं॥१॥
ब्रह्मसभाँ हम सन दुखु माना। तेहि तें अजहुँ करहिं अपमाना॥
जौं बिनु बोलें जाहु भवानी। रहइ न सीलु सनेहु न कानी॥२॥
जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गएँ कल्यानु न होई॥३॥
भाँति अनेक संभु समुझावा। भावी बस न ग्यानु उर आवा॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बोलाएँ। नहिं भलि बात हमारे भाएँ॥४॥

दो०—कहि देखा हर जतन बहु रहइ न दच्छकुमारि।
दिए मुख्य गन संग तब बिदा कीन्ह त्रिपुरारि॥६२॥

शब्दार्थ—नीक=अच्छा। नेवत पठावा=निमन्त्रण भेजा। कानी=मान-मर्यादा। गुर=गुरु। गेहा=घर। भाएँ=समझ में।

भावार्थ—शिवजी ने कहा—तुमने बात तो अच्छी कही, यह मेरे मन को भी पसन्द आयी। पर उन्होंने न्योता नहीं भेजा, यह अनुचित है। दक्ष ने अपनी सब लड़कियों को बुलाया है, किन्तु हमारे वैर के कारण उन्होंने तुमको भी भुला दिया।

शिवजी ने कहा—एक बार तुम्हारे पिता हम से ब्रह्मा की सभा में अप्रसन्न हो गये थे, उसी कारण वे अब तक हमारा अपमान करते आ रहे हैं। हे सती ! यदि तुम बिना बुलाये जाओगी तो न शील-स्नेह ही रहेगा और न मान ही। यद्यपि सन्देह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बुलाए भी चले जाना चाहिए, तथापि जहाँ कोई किसी प्रकार का विरोध हो, वहाँ (उसके घर) जाने से कल्याण नहीं होता।

इस प्रकार अनेक तरह से शिवजी ने सती को समझाया, किन्तु होनहार के वश सती के हृदय में बोध नहीं हुआ। शिवजी ने पुनः सती से कहा—यदि बिना बुलाये जाओगी, तो हमारी समझ में अच्छा न होगा।

शिवजी ने बहुत प्रकार से कह कर देख लिया, किन्तु जब सती किसी प्रकार भी नहीं रुकी तब त्रिपुरारि महादेवजी ने अपने मुख्य गणों को साथ देकर उनको विदा कर दिया ॥६२॥

मूल—चौ०—पिता भवन जब गईं भवानी। दच्छ त्रास काहुँ न सनमानी॥
सादर भलेहि मिली एक माता। भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता॥१॥
दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता॥
सतीं जाइ देखेउ तब जागा। कतहुँ न दीख संभु कर भागा॥२॥
तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ। प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ॥
पाछिल दुखु न हृदयँ अस ब्यापा। जस यह भयउ महा परितापा॥३॥
जद्यपि जग दारुन दुख नाना। सब तें कठिन जाति अवमाना॥
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा। बहु बिधि जननी कीन्ह प्रबोधा॥४॥

दो०—सिव अपमानु न जाइ सहि हृदयँ न होइ प्रबोध।
सकल सभहि हठि हटकि तब बोलीं बचन सक्रोध॥६३॥

शब्दार्थ—त्रास=डर। भगिनी=बहनें। जागा=यज्ञ। हटकि=डाँट कर।

भावार्थ—जब सती मुख्य गणों को संग लिये अपने पिता के घर पहुँची, तब दक्ष के डर के मारे किसी ने भी उसका आव आदर नहीं किया। केवल एक माता ही उनसे अच्छी तरह मिली। बहनें भी जो मिली, वे भी बहुत मुसकराती हुई मिलीं (उनके मुसकराने में व्यंग्य था)।

दक्ष ने तो उनकी कुछ कुशल तक नहीं पूछी, सती को देखकर उलटे उसके सारे अङ्ग जल उठे। तब सती ने जाकर यज्ञ देखा तो वहाँ कहीं भी शिवजी का भाग दिखायी नहीं दिया।

तब सती को शिवजी ने जो कहा था, वह समझ में आया। स्वामी का अपमान समझकर सती का हृदय जल उठा। पिछला (पति परित्याग का) दुःख उनके हृदय में उतना नहीं व्यापा था जितना महान् दुःख इस समय उसको (पति-अपमान के कारण) हुआ।

यद्यपि जगत् में अनेक प्रकार के दारुण दुःख हैं तथापि जाति-अपमान सबसे बढ़ कर (कठिन) है। यह समझकर सती को बड़ा क्रोध हो आया, तब माता ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया-बुझाया।

परन्तु उससे शिवजी का अपमान सहा नही गया, इससे उसके हृदय मे कुछ भी प्रबोध नही हुआ। तब वे सारी सभा को हठपूर्वक डाँटकर क्रोध-भरे वचन बोली।

मूल-चौ०-सुनहु सभासद सकल मुनिंदा। कही सुनी जिन्ह संकर निंदा॥
सो फल तुरत लहब सब काहूँ। भली भाँति पछिताब पिताहूँ॥१॥
संत संभु श्रीपति अपवादा। सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा॥
काटिअ तासु जीभ जो बसाई। श्रवण मूदि नत चलिअ पराई॥२॥
जगदातमा महेसु पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी॥
पिता मंदमति निंदत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही॥३॥
तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतु॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥४॥

शब्दार्थ—मुनिन्दा=मुनिगण। लहब=पाओगे। पिताहूँ=पिता (दक्ष) भी। बसाई=वश चले तो। पराई=भाग जाय। सुक्र=वीर्य। संभव=उत्पन्न। चन्द्रमौलि=चन्द्रमा को ललाट पर धारण करने वाले। बृषकेतु=शिव। मख=यज्ञ। खीस=नष्ट, विध्वंस। भृगु=एक ऋषि का नाम।

भावार्थ—सती यज्ञशाला मे उपस्थित मुनियो और देवताओ को फट-कारती हुई कहती है—हे सभासदो और मुनीश्वरो! सुनिए। यहाँ उपस्थित जिन लोगो ने शिवजी की निन्दा की है या कानो से सुनी है, उन सबको इसका तुरन्त फल भोगना पडेगा और मेरे पिता दक्ष को भी अपनी इस करनी पर भली भाँति पछताना पडेगा।

इस सम्बन्ध मे ऐसी मर्यादा है कि जहाँ कही संत, शिव और विष्णु की निन्दा सुनी जाय, वहाँ यदि अपना वश चले तो निन्दा करने वाले की जीभ काट ली जाय, अन्यथा कान बन्द करके वहाँ से भाग जाय।

भगवान् शिव, जिन्होने त्रिपुर राक्षस को मारा है, सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं, वे जगत् के पिता हैं और सब का हित करने वाले हैं। मेरा मन्द बुद्धि पिता उनकी निन्दा करता है, और मेरा यह शरीर उसके वीर्य से उत्पन्न हुआ है। इसलिए चन्द्रमा को ललाट पर धारण करने वाले शिव को हृदय मे धारण करके मैं इस शरीर को शीघ्र ही त्याग दूँगी। ऐसा कहकर

सती ने योगाग्नि मे अपने शरीर को भस्म कर दिया। सती के भस्म होते ही सारी यज्ञशाला मे हाहाकार मच गया।

काव्य-सौन्दर्य—सुन्दर पद मैत्री।

मूल—दो०—सती मरनु सुनि संभु गन लगे करन मख खीस।
जग्य विधंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्हि मुनीस ॥६४॥

भावार्थ—सती का मरण सुन कर शिवजी के गण यज्ञ विध्वंस करने लगे। यज्ञ विध्वस होते देखकर मुनीश्वर भृगुजी ने उसकी रक्षा की।

मूल-चौ०—समाचार सब संकर पाए। बीरभद्र करि कोप पठाए॥
जग्य बिधस जाइ तिन्ह कीन्हा। सकल सुरन्ह बिधिवत फलु दीन्हा॥१॥
भै जगत बिदित दच्छ गति सोई। जसि कछु संभु बिमुख कै होई॥
यह इतिहास सकल जग जानी। ताते मैं संक्षेप बखानी॥२॥
सतीं मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा॥
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई। जनमीं पारबती तनु पाई॥३॥
जब तें उमा सैल गृह जाईं। सकल सिद्धि संपति तहँ छाई॥
जहँ तहँ मुनिन्ह सुआश्रम कीन्हे। उचित बास हिम भूधर दीन्हे॥४॥

दो०—सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति।
प्रगटीं सुन्दर सैल पर मनि आकर बहु भाँति॥६५॥

शब्दार्थ—वीरभद्र=शिवजी का एक गण। बरु=वरदान। हिम भूधर=हिमाचल। नव=नये-नये। आकर=खान।

भावार्थ—जब यह समाचार शिवजी को मिला कि सती ने योगाग्नि मे अपने शरीर को भस्म कर डाला है, तब उन्होंने क्रोध करके अपने प्रमुख गण वीरभद्र को भेजा। वीरभद्र ने वहाँ पहुँच कर यज्ञ को विध्वस कर डाला और सब देवताओ को यथोचित फल चखाया। साथ ही सती के पिता दक्ष की भी वही जगत्प्रसिद्ध गति हुई जो शिव-द्रोही की हुआ करती है। (याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज से कहा) यह इतिहास सारा संसार जानता है, इसलिए मैंने इसे संक्षेप मे कहा है।

सती जब मरने लगी तब उनने विष्णु भगवान् से यह वर मांगा कि मेरा अनुराग जन्म-जन्म मे शिवजी के चरणो मे बना रहे। यही कारण था

कि सती ने हिमाचल के जाकर पार्वती के रूप मे जन्म लिया ।

जब से सती ने पार्वती के रूप मे हिमाचल के घर जन्म लिया, तब से वहाँ सब प्रकार की सिद्धियाँ तथा सम्पत्तियाँ छा गई । मुनियो ने जहाँ-तहाँ अपने रहने के लिए सुन्दर आश्रम बना लिये और हिमाचल ने उनको आश्रम बनाने के लिए उपयुक्त स्थान बना दिये ।

उस सुन्दर पर्वत पर बहुत प्रकार के सब नये-नये वृक्ष सदा पुष्पफलयुक्त हो गये और वहाँ बहुत तरह की मणियो की खानें प्रकट हो गयी ।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और उदाहरण अलकार ।

मूल—चौ०—सरिता सब पुनीत जलु बहहीं । खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं ॥
सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा । गिरि पर सकल करहिं अनुरागा ॥१॥
सोह सैल गिरिजा गृह आएँ । जिमि जनु रामभगति के पाएँ ॥
नित नूतन मंगल गृह तासू । ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू ॥२॥
नारद समाचार सब पाए । कौतुकहीं गिरि गेह सिधाए ॥
सैलराज बड आदर कीन्हा । पद पखारि बर आसनु दीन्हा ॥३॥
नारि सहित मुनि पद सिरु नावा । चरन सलिल सबु भवनु सिंचावा ॥
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना । सुता बोलि मेली मुनि चरना ॥४॥
दो०—त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह गति सर्बत्र तुम्हारि ।
कहहु सुता के दोष गुन मुनिबर हृदयँ बिचारि ॥६६॥

शब्दार्थ—पुनीत=पवित्र । खग=पक्षी । मृग=पशु । जनु=भक्त ।

भावार्थ—सती के हिमालय के घर मे जन्म लेने के कारण सारी नदियो मे पवित्र जल बहता है और पक्षी, पशु, भ्रमर सभी सुखी रहते हैं । सब जीवो ने अपना स्वाभाविक वैर छोड दिया और पर्वत पर सभी परस्पर प्रेम करते हैं ।

पार्वतीजी के घर आ जाने से पर्वत ऐसा शोभायमान हो रहा है जैसा रामभक्ति को पाकर भक्त शोभायमान होता है । उन (पर्वतराज) के घर नित्य नये नये मङ्गलोत्सव होते हैं, जिसका ब्रह्मादि यश गाते हैं ।

जब नारदजी ने ये सब समाचार सुने तो वे कौतुकवश हिमालय के घर पधारे । पर्वतराज ने उनका बडा आदर किया और चरण धोकर उनको

उत्तम आसन दिया।

फिर अपनी स्त्री सहित मुनि के चरणों में सिर नवाया और उनके चरणोदक को सारे घर में छिड़काया। हिमालय ने अपने सौभाग्य का बहुत बखान किया और पुत्री को बुलाकर मुनि के चरणों पर डाल दिया और कहा—हे मुनिवर! आप सर्वज्ञ हैं, आप तीनों कालों को जानते हैं। आपकी पहुँच भी सर्वत्र है। इसलिए आप कृपया हृदय में विचार करके कन्या (पार्वती) के गुण-दोष (लक्षण) बताइए।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और उदाहरण अलंकार।

मूल—चौ०—कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुन खानी॥
सुन्दर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अम्बिका भवानी॥१॥
सब लच्छन संपन्न कुमारी। होइहि संतत पियहि पिआरी॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि तें जसु पैहहिं पितु माता॥२॥
होइहि पूज्य सकल जग माहीं। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं॥
एहि कर नामु सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिब्रत असिधारा॥३॥
सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी॥
अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना॥४॥
दो०—जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख॥६७॥

शब्दार्थ—गूढ=गुप्त, रहस्य-युक्त। एहि कर=इसका। अहिवाता=सौभाग्य। पैहहिं=पावेंगे। अकाम मन=निष्काम हृदय।

भावार्थ—नारद मुनि ने हँसकर रहस्य-भरी कोमल वाणी में कहा—तुम्हारी पुत्री सब गुणों की खान है। वह निसर्गत सुन्दर, सुशील और समझदार है। इसके नाम उमा, अम्बिका और भवानी हैं।

यह कन्या सब सुलक्षणों से सम्पन्न है, यह अपने पति को सदा प्यारी होगी। इसका सुहाग सदा अचल रहेगा और इससे इसके माता-पिता यश पावेंगे।

यह सारे जगत् में पूज्य होगी और इसकी सेवा करने से कुछ भी दुर्लभ न होगा। संसार में स्त्रियाँ इसका नाम स्मरण करके पतिव्रत रूपी तलवार की

धार पर चढ जायेंगी ।

हे पर्वतराज ! तुम्हारी यह कन्या सब प्रकार से उत्तम लक्षणों वाली है। अब इसमें जो दो-चार अवगुण हैं, उन्हे भी सुन लो। इसको जो पति मिलेगा, वह ऐसा होगा—गुणहीन, मानहीन, माता-पिता-हीन, उदासीन संशय-विहीन, योगी, जटाधारी, निष्काम-हृदय, नंगा और अमंगल वेष वाला। इसके हाथ में ऐसी ही रेखा पडी है।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और रूपक अलंकार ।

मूल-चौ०—सुनि मुनि गिरा सत्य जियँ जानी। दुख दंपतिहि उमा हरषानी ॥
नारदहूँ यह भेदु न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना ॥१॥
सकल सखीं गिरिजा गिरि मैना। पुलक सरीर भरे जल नैना ॥
होइ न मृषा देवरिषि भाषा। उमा सो बचनु हृदयँ धरि राखा ॥२॥
उपजेउ सिव पद कमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा संदेहू ॥
जानि कुअवसरु प्रीति दुराई। सखी उछँग बैठी पुनि जाई ॥३॥
झूठि न होइ देवरिषि बानी। सोचहिं दंपति सखीं सयानी ॥
उर धरि धीर कहइ गिरिराउ। कहहु नाथ का करिअ उपाऊ ॥४॥

दो०—कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार ॥६८॥

शब्दार्थ—बिलगाना=भिन्न-भिन्न। दुराइ=छिपाली। उछंग=गोद।

भावार्थ—नारद मुनि की वाणी सुनकर और उसको हृदय मे सत्य जानकर पति-पत्नी (हिमवान् और मैना) को दुःख हुआ और पार्वतीजी प्रसन्न हुई। नारदजी ने भी इस रहस्य को नही जाना, क्योकि सबकी बाहरी दशा एक-सी होने पर भी भीतरी समझ भिन्न-भिन्न थी। सारी सखियाँ, पार्वती, पर्वतराज और मैना सभी के शरीर रोमांचित थे और सभी के नेत्रों मे जल-भरा था। (पार्वती के आँसू प्रेम या सुख के थे, अन्य सब के नेत्रों मे दुःख के आँसू थे)। नारदजी का कहा कभी असत्य नही हो सकता अतः पार्वती ने उनके वचनो को अपने हृदय मे धारण कर लिया।

उन्हे शिवजी के चरण कमलो मे स्नेह उत्पन्न हो आया, परन्तु मन मे यह सन्देह हुआ कि उनका मिलना कठिन है। अवसर ठीक न जानकर उमा ने

अपने प्रेम को छिपा लिया और फिर वे सखी की गोद में जाकर बैठ गयीं।

देवर्षि की वाणी झूठी न होगी, यह विचार कर हिमवान्, मैना और सारी चतुर सखियाँ चिन्ता करने लगीं। फिर हृदय में धीरज धरकर पर्वतराज ने कहा—हे नाथ! कहिये अब क्या उपाय किया जाय?

इस पर नारदजी ने कहा—हे हिमवान्! सुनो, विधाता ने ललाट पर जो लेख लिख दिया है, उसको देवता, दानव, मनुष्य, नाग और मुनि कोई भी नहीं मिटा सकता।

काव्य-सौन्दर्य अनुप्रास और रूपक अलंकार।

मूल-चौ०-तदपि एक मैं कहउँ उपाई। होइ करै जौं दैउ सहाई॥
जस बरु मैं बरनेउँ तुम्ह पाहीं। मिलिहि उमहि तस संसय नाहीं॥१॥
जे जे बर के दोष बखाने। ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने॥
जौं बिबाहु संकर सन होई। दोषउ गुन सम कह सबु कोई॥२॥
जौं अहि सेज सयन हरि करहीं। बुध कछु तिन्ह कर दोषु न धरहीं॥
भानु कृसानु सर्ब रस खाहीं। तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं॥३॥
सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई॥
समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं॥४॥
दो०—जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़ बिबेक अभिमान।
परहिं कलप भरि नरक महुँ जीव कि ईस समान॥६९॥

जैसे विष्णु भगवान् शेष नाग की शय्या पर सोते है, तो भी पण्डित लोग उनको कोई दोष नही लगाते । सूर्य और अग्निदेव अच्छे-बुरे सभी रसो का भक्षण करते है, परन्तु उनको कोई बुरा नही कहता ।

गगा मे अच्छा और सभी तरह का जल बहता है, परन्तु कोई उसे अपवित्र नही कहता । सूर्य अग्नि और गंगा की तरह जो समर्थ है, उन्हे कुछ भी दोष नही लगता ।

परन्तु जो मनुष्य मूर्ख हैं, वे ज्ञान के मद में चूर होकर इस प्रकार ईर्ष्या करते हैं और कल्प भर के लिए वे नरक मे जाकर पडते है । भला कही जीव भी (जो सोपाधि है) ब्रह्म के समान स्वतन्त्र हो सकता है ?

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, लोकोक्ति और उपमा अलकार ।

मूल—चौ०—सुरसरि जल कृत बारुनि जाना । कबहुँ न संत करहिं तेहिं पाना ॥
सुरसरि मिलें सो पावन जैसें । ईस अनीसहि अन्तरु तैसें ॥१॥
संभु सहज समरथ भगवाना । एहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना ॥
दुराराध्य पै अहहिं महेसू । आसुतोष पुनि किएँ कलेसू ॥२॥
जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी । भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी ॥
जद्यपि वर अनेक जग माहीं । एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं ॥३॥
बर दायक प्रनतारति भंजन । कृपासिन्धु सेवक मन रंजन ॥
इच्छित फल बिनु सिव अवराधें । लहिअ न कोटि जोग जप साधें ॥४॥
दो०—अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्हि असीस ।
होइहि यह कल्यान अब ससय तजहु गिरीस ॥७०॥

शब्दार्थ—बारुनि=शराब । अनीसहि=जीव मे । अन्तरु=भेद । दुराराध्य=जिसकी आराधना बडी कठिन हो । अहहिं=हैं । आसुतोष=शीघ्र ही संतुष्ट या प्रसन्न होने वाले । भाविउ=होनहार को भी । एहि कहँ=इनके लिए । प्रनतारति=शरणागत का दुःख । रंजन=प्रसन्न करना । अवराधें=आराधना किये ।

भावार्थ—नारद ऋषि हिमाचल से कह रहे है—शराब चाहे गंगा-जल से ही बनी हो, संत लोग उसे नही पीते हैं क्योकि वह अपवित्र है । किन्तु वही शराब जब गगा मे मिल जाती है तब वह पवित्र हो जाती है—फिर शराब और गगा-जल मे कोई अन्तर नही रहता, जैसे मिल जाने पर ईश्वर और जीव

में कोई भेद नहीं रहता। (जब तक जीव पृथक् है तब तक वह दोषी है, सोपाधि है, किन्तु ईश्वर के साथ उनका सम्बन्ध हो जाने पर उनके सब दोष दूर हो जाते हैं जैसे गंगा-जल में मिलकर शराब शराब नहीं रहती—वह भी गंगाजल बन जाती है।)

भगवान् शंकर सहज ही समर्थ हैं, क्योंकि वे भगवान् हैं। इसलिये इस विवाह में सब प्रकार कल्याण है। परन्तु महादेवजी की आराधना बड़ी कठिन है, फिर भी क्लेश (तप) करने से वे बहुत शीघ्र सन्तुष्ट हो जाते हैं।

हे हिमवान्! यदि तुम्हारी कन्या तप करे तो त्रिपुरारि शिव होनहार को भी मिटा सकते हैं। यद्यपि संसार में वरों की कमी नहीं है परन्तु पार्वती के लिए तो शिव को छोड़कर दूसरा है ही नहीं।

शिवजी वर देने वाले, शरणागतों के दुःखों का नाश करने वाले, कृपा के समुद्र और सेवकों के मन को प्रसन्न करने वाले हैं। शिवजी की आराधना किये बिना करोड़ों योग और जप करने पर भी वाञ्छित फल नहीं मिलता।

ऐसा कह कर भगवान् का स्मरण करके नारद जी ने पार्वती को आशीर्वाद दिया और कहा कि हे पर्वतराज! तुम सन्देह का त्याग कर दो, अब यह कल्याण ही होगा।

मूल-चौ०—कहि अस ब्रह्म भवन मुनि गयऊ। आगिल चरित सुनहु जस भयऊ॥
पतिहि एकांत पाइ कह मैना। नाथ न मैं समुझे मुनि बैना॥१॥

भावार्थ—यों कह कर नारद मुनि ब्रह्म-लोक को चले गये। अब आगे जो चरित्र हुआ, उसे सुनो। पति को एकान्त में पाकर मैना ने कहा—हे नाथ! मैंने मुनि के वचनों का अर्थ नहीं समझा।

मूल-चौ०—जौं घरु बरु कुलु होइ अनूपा। करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा॥
न त कन्या बरु रहउ कुआरी। कंत उमा मम प्रानपिआरी॥२॥
जौं न मिलिहि बरु गिरिजहि जोगू। गिरि जड़ सहज कहिहि सबु लोगू॥
सोइ बिचारि पति करेहु बिबाहू। जेहिं न बहोरि होइ उर दाहू॥३॥
अस कहि परी चरन धरि सीसा। बोले सहित सनेह गिरीसा॥
बरु पावक प्रगटै ससि माहीं। नारद बचनु अन्यथा नाहीं॥४॥

दो०—प्रिया सोचु परिहरहु सबु सुमिरहु श्रीभगवान ।
पारवतिहि निरमयउ जेहिं सोइ करिहि कल्यान ॥७१॥

शब्दार्थ—कंत=पति । जड=मूर्ख । बहोरि=फिर । दाहू=जलन । निर-मयउ=बनाया, रचा ।

भावार्थ—(मैना ने कहा) जो हमारी कन्या के अनुकूल घर, वर और कुल उत्तम हो तो विवाह कीजिये । नही तो लडकी चाहे कुमारी ही रहे (मैं अयोग्य वर के साथ उसका विवाह नही करना चाहती।), क्योकि हे स्वामिन् ! पार्वती मुझको प्राणो के समान प्यारी है ।

यदि पार्वती के योग्य वर न मिला तो सब लोग यही कहेंगे कि पर्वत स्वभाव मे ही जड (मूर्ख) होते हैं । हे स्वामी ! इस बात को विचार कर ही विवाह कीजियेगा, जिसमे फिर पीछे हृदय मे सन्ताप न हो ।

इस प्रकार कह कर मैना पति के चरणो पर मस्तक रख कर गिर पडी । तब हिमवान् ने प्रेम से कहा—चाहे चन्द्रमा मे अग्नि प्रकट हो जाय, पर नारद जी के वचन झूठे नही हो सकते ।

हे प्रिये ! तुम सब प्रकार से चिन्ता छोड कर भगवान् का स्मरण करो । जिन भगवान् ने पार्वती की रचना की है, वे ही इसका कल्याण करेंगे ।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और उदाहरण अलकार ।

मूल-चौ०-अब जौं तुम्हहि सुता पर नेहू । तौ अस जाइ सिखावनु देहू ॥
करै सो तपु जेहि मिलहिं महेसू । आन उपायँ न मिटिहि कलेसू ॥१॥
नारद बचन सगर्भ सहेतू । सुन्दर सब गुन निधि बृषकेतू ॥
अस विचारि तुम्ह तजहु असंका । सबहि भाँति संकरु अकलंका ॥२॥
सुनि पति बचन हरषि मन माहीं । गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं ॥
उमहि बिलोकि नयन भरे बारी । सहित सनेह गोद बैठारी ॥३॥
बारहिं बार लेति उर लाई । गदगद कंठ न कछु कहि जाई ॥
जगत मातु सर्बग्य भवानी । मातु सुखद बोली मृदु बानी ॥४॥
दो०—सुनहि मातु मैं दीख अस सपन सुनावउँ तोहि ।
सुन्दर गौर सुविप्रवर अस उपदेसेउ मोहि ॥७२॥

शब्दार्थ—सिखावन=शिक्षा । सगर्भ=रहस्यपूर्ण । असका=सदेह । पाही

=पास, समीप। बारी=जल।

भावार्थ—हिमाचल अपनी पत्नी मैना को समझा रहे हैं—हे प्रिये! अब यदि तुमको अपनी कन्या पर प्रेम है तो तुम जाकर उसको यह शिक्षा दो कि वह ऐसा तप करे कि उसको शिव जी मिल जायें। तुम्हारा यह क्लेश अन्य किसी प्रकार से नहीं मिट सकता। नारद जी ने जो कुछ कहा है, रहस्ययुक्त है, और वह कारण-सहित है। भगवान् शिव समस्त गुणों के भण्डार हैं। ऐसा विचार कर तुम व्यर्थ का सन्देह छोड़ दो। शिव जी सब प्रकार से निष्कलंक हैं।

अपने पति हिमाचल के वचनों को सुन कर मैना मन में बहुत प्रसन्न हुई और वह उठ कर शीघ्र ही पार्वती के पास चली गई। पार्वती को देखते ही उनकी आँखों में आँसू आ गये। उनने उनको स्नेह के साथ अपनी गोदी में बिठा लिया।

फिर बार-बार उसे हृदय से लगाने लगी। प्रेम से मैना का गला भर आया, कुछ कहा नहीं जाता। जगज्जननी भवानी तो सर्वज्ञ ठहरीं। [माता के मन की दशा को जान कर] वे माता को सुख देने वाली कोमल वाणी से बोलीं—

हे माता! सुन, मैं तुझे सुनाती हूँ। मैंने एक ऐसा स्वप्न देखा है जिसमें मुझे एक गौरवर्ण श्रेष्ठ ब्राह्मण ने इस प्रकार उपदेश दिया है।

काव्य-सौन्दर्य अनुप्रास अलंकार।

मूल-चौ०—करहि जाइ तपु सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य बिचारी॥
मातु पितहि पुनि यह मत भावा। तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा॥१॥
तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता। तपबल बिष्नु सकल जग त्राता॥
तपबल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरइ महिभारा॥२॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तपु अस जियँ जानी॥
सुनत बचन बिसमित महतारी। सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी॥३॥
मातु पितहि बहुबिधि समुझाई। चलीं उमा तप हित हरषाई॥
प्रिय परिवार पिता अरु माता। भए बिकल मुख आव न बाता॥४॥

दो०—वेदसिरा मुनि आइ तव सबहि कहा समुझाइ ।
पारवती महिमा सुनत रहे प्रवोधहि पाइ ॥७३॥

शब्दार्थ—प्रपंचु=समार । गिरिहि=हिमवान् को । हकारी=वुला कर । प्रवोधहि=ज्ञान को ।

भावार्थ — ब्राह्मण ने पार्वती को स्वप्न मे जो उपदेश दिया, वह इस प्रकार है—

हे पार्वती ! नारद जी ने जो कुछ कहा है, सर्वथा सत्य है । नारद जी के वचनो को सत्य मान कर तुम जाकर तपस्या करो । तुम्हारे माता-पिता को भी नारद जी की यह वात अच्छी लगी है । तप का प्रभाव अमित है, तप सुख देने वाला और दु ख-दोप का नाश करने वाला है । तप के वल से ही ब्रह्मा सृष्टि-रचना करते है और तप के बल से ही विष्णु इस सम्पूर्ण विश्व का पालन करते है । तप के वल से ही शिव रुद्र रूप धारण कर जगत् का सहार करते हैं और तप के वल से ही शेष नाग इस समस्त पृथ्वी का भार अपने सिर पर धारण किये रहते हैं ।

हे भवानी ! इस समस्त सृष्टि का आधार तप ही है । अपने हृदय मे ऐसा समझ कर तुम जाकर तप करो ।

पार्वती की ये वातें सुन कर माता को वडा आश्चर्य हुआ और उसने अपने पति हिमवान् को बुलाकर वह स्वप्न सुनाया । तदनन्तर माता-पिता को बहुत तरह से समझाकर वडे हर्ष के साथ पार्वती तप करने के लिए चली । प्यारे कुटुम्वी, पिता और माता सव व्याकुल हो गये । किसी के मुँह से वचन तक न निकले ।

तब वेदसिरा नामक मुनि ने आकर सवको समझा कर कहा । पार्वती की महिमा को सुन कर सवकी शकाओं का समाधान हो गया ।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलकार ।

मूल-चौ०-उर धरि उमा प्रानपति चरना । जाइ बिपिन लागीं तपु करना ॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू । पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू ॥१॥
नित नव चरन उपज अनुरागा । बिसरी देह तपहिं मनु लागा ॥
संबत सहस मूल फल खाए । सागु खाइ सत बरष गवाँए ॥२॥

कछु दिन भोजनु वारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपवासा ॥
बेल पाती महि परइ सुखाई। तीनि सहस संवत सोइ खाई ॥३॥
पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नामु तब भयउ अपरना ॥
देखि उमहि तप खीन सरीरा। ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा ॥४॥
दो०—भयउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराजकुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहहिं त्रिपुरारि ॥७४॥

शब्दार्थ—विपिन=वन। सुकुमार=कोमल। बतासा=वायु। बेलपाति=विल्व-पत्र। सुखानेउ परना = सूखे पत्ते। अपरना=अपर्णा (पत्ते तक न खाने वाली)।

भावार्थ—पार्वती ने अपने प्राण पति शिवजी के चरणों को अपने हृदय मे धारण किया और वह वन में जाकर तप करने लगी। पार्वती का शरीर अत्यन्त कोमल था, कठोर तपस्या के योग्य न था, फिर भी उसने पति-चरणों का स्मरण कर सब भोगों का परित्याग कर दिया।

स्वामी के चरणों में पार्वती का नित्य नया अनुराग उत्पन्न होने लगा और उसका मन तप में ऐसा लगा कि वह अपने शरीर की सारी सुध-बुध भूल गई।

एक हजार वर्ष तक पार्वती ने केवल मूल और फल खाये, फिर सौ वर्ष तक केवल शाक खाकर रही। कुछ दिनों तक उसने केवल जल और वायु का ही सेवन किया और कुछ दिन उसने कठोर उपवास किये। जो विल्वपत्र सूख कर पृथ्वी पर गिर पडते थे, तीन हजार वर्ष तक उसने केवल उन्हीं का भोग किया। इसके बाद पार्वती ने सूखे पत्ते खाना भी छोड़ दिया, तब उसका नाम उमा से 'अपर्णा' हो गया। तप से उमा का शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया। उसके इन क्षीण शरीर को देख कर आकाश में गम्भीर ब्रह्मवाणी हुई—

हे पर्वत राजकुमारी! सुन, तेरा मनोरथ सफल हुआ। तू अब इन असह्य क्लेशों को त्याग दे, अब तुझे निश्चय से शिव जी की प्राप्ति हो जायगी।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, 'परना अपरना' मे लाटानुप्रास अलकार।

मूल—चौ०—अस तपु काहुँ न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ग्यानी ॥
अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी। सत्य सदा सतत सुचि जानी ॥१॥

आवँ पिता बोलावन जबहीं । हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं ॥
मिलहिं तुम्हहि जब सप्त रिषीसा । जानेहु तब प्रमान बागीसा ॥२॥
सुनत गिरा बिधि गगन बखानी । पुलक गात गिरिजा हरषानी ॥
उमा चरित सुन्दर मैं गावा । सुनहु संभु कर चरित सुहावा ॥३॥
जब तें सतीं जाइ तनु त्यागा । तब तें सिव मन भयउ बिरागा ॥
जपहिं सदा रघुनायक नामा । जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा ॥४॥

दो०—चिदानन्द सुखधाम सिव बिगत मोह मद काम ।
बिचरहिं महि धरि हृदयँ हरि सकल लोक अभिराम ॥७५॥

शब्दार्थ—सुचि=पवित्र । बागीसा=ब्रह्म वाणी । बिगत=रहित । अभि-राम=सुन्दर, आनन्द देने वाले ।

भावार्थ—आकाश मे ब्रह्म वाणी हो रही है—हे भवानी ! ससार मे अनेक धीर और ज्ञानी मुनि हो गये, परन्तु ऐसा तप जैसा तूने किया है, आज तक किसी ने भी नही किया । अब तुम इस ब्रह्म वाणी को सदा सच्ची और पवित्र जानकर मन मे धारण करो । अब जब तुम्हारे पिता तुम्हे बुलाने आवें तब तुम हठ छोडकर उनके साथ चली जाना । जब तुमको सप्तर्षि मिलें, तब तुम समझ लेना कि ब्रह्म वाणी सत्य हुई ।

इस प्रकार आकाश से हुई ब्रह्म वाणी को सुनकर पार्वती प्रसन्न हुई और अत्यधिक हर्ष के कारण उसको रोमाञ्च हो गया । (याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज से कहा) मैंने तुम्हे पार्वती का सुन्दर चरित्र सुनाया है, अब तुम शिवजी का सुन्दर चरित्र सुनो ।

जब से सती ने जाकर शरीर-त्याग किया, तब से शिवजी विरक्त हो गये, उनके मन मे वैराग्य उत्पन्न हो गया । वे सदा राम-नाम जपने तथा जहाँ-तहाँ राम का गुणानुवाद सुनने लगे ।

चिदानन्द, सुख के धाम, मोह, मद और काम से रहित शिवजी सम्पूर्ण लोकों को आनन्द देने वाले भगवान् श्रीहरि (श्रीरामचन्द्रजी) को हृदय मे धारण कर (भगवान् के ध्यान मे मस्त हुए) पृथ्वी पर विचरने लगे ।

मूल-चौ०—कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना । कतहुँ राम गुन करहिं बखाना ॥
जदपि अकाम तदपि भगवाना । भगत बिरह दुख दुखित सुजाना ॥१॥

एहि विधि गयउ कालु बहु बीती। नित नै होइ राम पद प्रीती॥
नेमु प्रेमु संकर कर देखा। अविचल हृदयँ भगति कै रेखा॥२॥
प्रगटे रामु कृतग्य कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला॥
बहु प्रकार संकरहि सराहा। तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा॥३॥
बहु बिधि राम सिवहि समुझावा। पारबती कर जन्मु सुनावा॥
अति पुनीत गिरिजा कै करनी। बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी॥

दो०—अब बिनति मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागें देहु॥७६॥

शब्दार्थ—अकाम=काम-रहित। नै=नयी। अविचल=अटल। निरबाहा=निभा सकता है। सैलजहि=पार्वती को।

भावार्थ—सती के देह-त्याग के अनन्तर शिवजी इधर-उधर भ्रमण करते।

वे कहीं मुनियों को ज्ञान का उपदेश करते और कहीं श्रीरामचन्द्रजी के गुणों का वर्णन करते थे। यद्यपि सुजान शिवजी निष्काम हैं, तो भी वे भगवान् अपने भक्त (सती) के वियोग के दुःख से दुखी हैं।

इस प्रकार बहुत समय बीत गया। प्रतिदिन उनकी श्रीराम के चरणों में प्रीति बढ़ने लगी। जब श्रीराम ने शंकर के कठोर प्रण और अनन्य प्रेम को तथा उनके हृदय में भक्ति की अटल रेखा को देखा, तब कृतज्ञ, कृपालु, रूप और शील के खजाने महान् तेज-पुंज भगवान् श्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए। उन्होंने प्रकट होकर अनेक प्रकार से शिवजी की सराहना की और कहा कि आपके बिना ऐसा कठिन व्रत कौन निभा सकता है।

तब श्रीरामचन्द्रजी ने बहुत प्रकार से शिवजी को समझाया और पार्वतीजी का जन्म सुनाया। कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजी ने विस्तारपूर्वक पार्वतीजी की अत्यन्त पवित्र करनी का वर्णन किया।

[फिर उन्होंने शिवजी से कहा—] हे शिवजी! यदि मुझ पर आपका स्नेह है तो अब आप मेरी बिनती सुनिये। मुझे यह माँगे दीजिये कि आप जाकर पार्वती के साथ विवाह करलें।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलंकार।

मूल–चौ०–कह सिव जदपि उचित अस नाही । नाथ वचन पुनि मेटि न जाही ॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा । परम धरमु यह नाथ हमारा ॥१॥
मातु पिता गुर प्रभु कै बानी । बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी ॥
तुम्ह सब भाँति परम हितकारी । अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी ॥२॥
प्रभु तोषेउ सुनि संकर वचना । भक्ति विवेक धर्म जुत रचना ॥
कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ । अब उर राखेहु जो हम कहेऊ ॥३॥
अन्तरधान भए अस भाषी । सकर सोइ मूरति उर राखी ॥
तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए । बोले प्रभु अति बचन सुहाए ॥४॥

दो०–पारवती पहिं जाइ तुम्ह प्रेम परिच्छा लेहु ।
गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन दूरि करेहु सदेहु ॥७७॥

शब्दार्थ —आयसु=आज्ञा । अन्तरधान भये=गायब हो गये । गिरिहि=हिमवान् को । प्रेरि=कह कर । पठएहु=भिजवाइए ।

भावार्थ—भगवान् शकर राम से कह रहे है—यद्यपि यह उचित नही है कि अब मैं विवाह करूँ, किन्तु आप स्वामी हैं, आपकी बात मैं टाल भी नही सकता । हे नाथ ! मेरा यही धर्म है कि मैं आपकी आज्ञा को सिर पर रख कर उसका पालन करूँ ।

माता, पिता, गुरु और स्वामी की बात को बिना विचारे ही शुभ समझ कर मान लेना चाहिए, फिर आप तो मेरे सब प्रकार से हित-चिंतक है, इसलिए हे नाथ ! आपकी आज्ञा मेरे सिर पर है ।

शिवजी की भक्ति, ज्ञान और धर्म से युक्त वचन रचना सुन कर प्रभु रामचन्द्रजी सन्तुष्ट हो गये । प्रभु ने कहा—हे हर ! आपकी प्रतिज्ञा पूरी हो गयी । अब हमने जो कहा है उसे हृदय मे रखना ।

इस प्रकार कहकर श्रीरामचन्द्रजी अन्तर्धान हो गये । शिवजी ने उनकी वह मूर्ति अपने हृदय मे रख ली । उसी समय सप्तर्षि शिवजी के पास आये । महादेवजी ने उनसे अत्यन्त सुहावने वचन इस प्रकार कहे—

आप लोग पार्वती के पास जाकर उनके प्रेम की परीक्षा लीजिये और हिमाचल को कह कर [उन्हें पार्वती को लिवा लाने के लिये भेजिये तथा] पार्वती को घर भिजवाइये और उनके सन्देह को दूर कीजिये ।

वह भला स्त्री का बन्धन क्यों सहन करेगा ?)

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलकार । (नारदजी घर फोडने के लिए बदनाम हैं ।)

मूल—चौ०—अजहूँ मानहु कहा हमारा । हम तुम्ह कहुँ बरु नीक बिचारा ॥
अति सुन्दर सुचि सुखद सुसीला । गावहिं बेद जासु जस लीला ॥१॥
दूषन रहित सकल गुन रासी । श्रीपति पुर बैकुण्ठ निवासी ॥
अस बरु तुम्हहि मिलाउब आनी । सुनत बिहसि कह बचन भवानी ॥२॥
सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा । हठ न छूट छूटै बरु देहा ॥
कनकउ पुनि पषान तें होई । जारेहुँ सहजु न परिहर सोई ॥३॥
नारद बचन न मैं परिहरऊँ । बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ ॥
गुर कें बचन प्रतीति न जेही । सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही ॥४॥

दो०—महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम ।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम ॥८०॥

शब्दार्थ—बरु=वर नीक=अच्छा । श्रीपति=विष्णु । मिलाउब=मिला देंगे । आनी=लाकर । गिरिभव=पर्वत से उत्पन्न । कनकउ=सोना भी । सिधि=सिद्धि । जेहि कर=जिसने ।

भावार्थ — सप्तर्षि पार्वती की परीक्षा लेने हेतु उसको शिव को छोड़ कर किसी अन्य अच्छे वर के साथ विवाह करने की सलाह दे रहे हैं । वे कहते हैं—हे पार्वती ! तुम अब भी हमारा कहना मान लो । हमने तुम्हारे लिए एक अच्छा वर सोचा है । वह बहुत ही सुन्दर, सुख देने वाला और सुशील है, जिसके यश का वेद भी वर्णन करते हैं । वह सब दोषों से रहित है, गुणों की राशि है, वह लक्ष्मी का स्वामी और वैकुण्ठ का वासी है । हम ऐसे वर को लाकर तुमसे मिला देंगे । सप्तऋषियों के मुख से ऐसी बात सुन कर पार्वती ने हँस कर कहा—

आपने यह सच कहा है कि मेरा शरीर पहाड़ से उत्पन्न हुआ है । इसलिए मेरा हठ नहीं छूटेगा, शरीर चाहे छूट जाय (शरीर पर्वत से उत्पन्न होने के कारण कठोर है, अतः मन भी पत्थर-जैसा कठोर ही है, वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ेगा) । सोना भी पत्थर से ही उत्पन्न होता है, परन्तु जलाने पर

भी वह अपने स्वभाव को नही छोडता—वह अपनी विशेषताओ का परित्याग नही करता । इसलिए मैं नारद जी के वचनो को नही छोडूंगी चाहे घर बसे या उजडे, मैं इसमे नही डरती । जिसको गुरुजन के वचनो पर विश्वास नही, उसको स्वप्न मे भी सुख नही मिल सकता है और न वह सिद्धियाँ ही प्राप्त कर सकता है । हे ऋषियो ! मैं मानती हूँ कि महादेव जी अवगुणो के भवन हैं और विष्णु सारे अच्छे गुणो के भण्डार हैं, पर जिसका मन जिसमे रम गया, उसको तो उसी से काम है ।

मूल-चौ०—जौं तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा । सुनतिउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा ॥
अब मैं जन्मु संभु हित हारा । को गुन दूषन करै बिचारा ॥१॥
जौं तुम्हरे हठ हृदयँ बिसेषी । रहि न जाइ बिनु किएँ बरेषी ॥
तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं । बर कन्या अनेक जग माहीं ॥२॥
जन्म कोटि लगि रगर हमारी । बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी ॥
तजउँ न नारद कर उपदेसू । आपु कहहिं सत बार महेसू ॥३॥
मैं पा परउँ कहइ जगदम्बा । तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलम्बा ॥
देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी । जय जय जगदम्बिके भवानी ॥४॥

शब्दार्थ — हारा = खो दिया । बरेषी=बरेखी=विवाह की बात-चीत । कौतुकिअन्ह=खिलवाड करने वाले । रगर=हठ । बरऊँ=विवाह करूँ ।

भावार्थ—पार्वती सप्तऋषियो से कह रही है—

हे मुनीश्वरो ! यदि आप पहले मिलते, तो मैं आपका उपदेश सिर-माथे रख कर सुनती । परन्तु अब तो मैं अपना जन्म शिव जी के लिए हार चुकी । फिर गुण-दोषो का विचार कौन करे ?

यदि आपके हृदय मे बहुत ही हठ है और विवाह की बातचीत (बरेखी) किये बिना आपसे रहा ही नही जाता, तो ससार मे वर-कन्या बहुत हैं । खिलवाड करने वालो को आलस्य तो होता नही, और कही जाकर कीजिए ।

मेरा तो करोड जन्मो तक यही हठ रहेगा कि या तो शिव जी को वरूँगी, नही तो कुमारी ही रहूँगी । स्वय शिव जी सौ बार कहे, तो भी नारद जी के उपदेश को न छोडूंगी ।

जगज्जननी पार्वती जी ने फिर कहा कि मैं आपके पैरो पडती हूँ । आप

अपने घर जाइये, बहुत देर हो गई। शिव जी में पार्वती जी का ऐसा प्रेम देख कर ज्ञानी मुनि बोले—हे जगज्जननी! हे भवानी! आपकी जय हो! जय हो!!

काव्य-सौन्दर्य—पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार।

मूल—दो०—तुम्ह माया भगवान् सिव सकल जगत पितु मातु।
नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गातु ॥८१॥

भावार्थ—आप माया हैं और शिव जी भगवान् हैं। आप दोनों समस्त जगत् के माता-पिता हैं। [यह कह कर] मुनि पार्वती जी के चरणों में सिर नवा कर चल दिए। उनके शरीर बार-बार पुलकित हो रहे थे।

काव्य-सौन्दर्य—पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार।

मूल-चौ०-जाइ मुनिन्ह हिमवंतु पठाए। करि बिनती गिरजहिं गृह ल्याए॥
बहुरि सप्तरिषि सिव पहिं जाई। कथा उमा कै सकल सुनाई ॥१॥
भए मगन सिव सुनत सनेहा। हरषि सप्तरिषि गवने गेहा॥
मनु थिर करि तब संभु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना ॥२॥
तारकु असुर भयउ तेहि काला। भुज प्रताप बल तेज बिसाला॥
तेहिं सब लोक लोकपति जीते। भए देव सुख संपति रीते ॥३॥
अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर करि बिबिध लराई॥
तब बिरंचि सन जाइ पुकारे। देखे बिधि सब देव दुखारे ॥४॥
दो०—सब सन कहा बुझाइ बिधि दनुज निधन तब होइ।
संभु सुक्र संभूत सुत एहि जीतइ रन सोइ ॥८२॥

शब्दार्थ—पहिं=पास। बिरंचि=ब्रह्मा। बुझाइ=समझा कर। निधन=मृत्यु। संभु-सुक्र-संभूत=महादेव जी के वीर्य से उत्पन्न। एहि=इसको।

भावार्थ—सप्तर्षियों ने जाकर हिमवान् को पार्वती के पास भेजा और वह समझा-बुझा कर अथवा अनुनय-विनय करके पार्वती को घर ले आया। तदनन्तर सप्तर्षि महादेव जी के पास गए और उन्होंने उन्हें पार्वती की सारी कथा कही। अपने प्रति पार्वती का प्रेम सुन कर शिव जी आनन्द-मग्न हो गए और सप्तर्षि प्रसन्न होकर ब्रह्म लोक को चले गए। तब सुजान शिव अपने मन को स्थिर करके राम का ध्यान करने लगे।

उसी समय तारका नामक असुर हुआ, जिसकी भुजाओ का बल, प्रताप और तेज बहुत बडा था। उसने सब लोक और लोकपालो को जीत लिया, सब देवता सुख और सम्पत्ति से रहित हो गए।

वह अजर-अमर था, इसलिए किसी से जीता नही जाता था। देवता उसके साथ बहुत तरह की लडाइयाँ लड कर हार गए। तब उन्होने ब्रह्मा जी के पास जाकर पुकार मचाई। ब्रह्मा जी ने सब देवताओ को दु खी देखा।

ब्रह्मा जी ने सबको समझा कर कहा—इस दैत्य की मृत्यु तब होगी जब शिव जी के वीर्य से पुत्र उत्पन्न हो इसको युद्ध मे वही जीतेगा।

काव्य-सौन्दर्य—'लोक लोक पति' मे लाटानुप्रास। 'सभु सुक्र सभूत सुत' मे वृत्यनुप्रास। 'अजर-अमर' मे छेकानुप्रास।

मूल-चौ०—मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईस्वर करिहि सहाई॥
सतीं जो तजी दच्छ मख देहा। जनमी जाइ हिमाचल गेहा॥१॥
तेहिं तपु कीन्ह संभु पति लागी। सिव समाधि बैठे सबु त्यागी॥
जदपि अहइ असमजस भारी। तदपि बात एक सुनहु हमारी॥२॥
पठवहु कामु जाइ सिव पाहीं। करै छोभु संकर मन माहीं॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई। करवाउब बिबाहु बरिआई॥३॥
एहि बिधि भलेहिं देवहित होई। मत अति नीक कहइ सबु कोई॥
अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू। प्रगटेउ बिषमबान झषकेतू॥४॥
दो०—सुरन्ह कही निज बिपति सब सुनि मन कीन्ह बिचार।
संभु बिरोध न कुसल मोहि बिहसि कहेउ अस मार॥८३॥

शब्दार्थ—मख=यज्ञ। छोभु=क्षोभ। करवाउब=करवा देंगे। बरिआई=बल-पूर्वक। बिसमबान=पाँच बाण धारण करने वाला (कामदेव)। झषकेतु=जिसकी ध्वजा मे मछली का चिह्न है, कामदेव। मार=कामदेव।

भावार्थ—ब्रह्मा जी उपस्थित देव-वृन्द को कह रहे हैं—आप लोगो ने मेरी बात सुन ली अब उपाय कीजिये। ईश्वर यदि सहायक होगा तो काम अवश्य बन जायगा। सती ने जो दक्ष की यज्ञशाला में अपनी देह का त्याग किया था, उसने अब हिमाचल के घर मे जन्म लिया है। उसने पति-रूप मे शिव जी को प्राप्त करने के लिए घोर तपस्या की है, किन्तु इधर शिव जी सब

कुछ त्याग कर समाधि लगा कर बैठे हैं। इसलिए है तो यह द्विविधा-जनक काम, फिर भी मेरी एक बात सुनिए। आप लोग जाकर कामदेव को शिव जी के पास भेजो। वह शिव जी के मन में क्षोभ (खलबली) पैदा करे जिससे उनकी समाधि भंग हो। तब हम जाकर शिव जी के चरणों मे सिर रख देंगे और उन्हें किसी भी तरह राजी करके उनका पार्वती के साथ विवाह कर देंगे। देवताओं का यदि हित हो तो इसी प्रकार हो सकता है, अन्य कोई उपाय नजर नही आता। ब्रह्मा के वचनों को सुन कर सबने कहा — यह सम्मति बहुत अच्छी है। फिर देवताओं ने अत्यन्त प्रेम के साथ कामदेव की स्तुति की और विषमबाण धारण करने वाला तथा अपनी ध्वजा मे मछली का निशान रखने वाला कामदेव प्रकट हुआ।

देवताओं ने कामदेव से अपनी सारी विपत्ति कही। सुन कर कामदेव ने मन मे विचार किया और हँस कर देवताओं से यों कहा कि शिव जी के साथ विरोध करने मे मेरी कुशल नही है।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलकार।

मूल—चौ०—तदपि करब मैं काजु तुम्हारा। श्रुति कह परम धरम उपकारा॥
पर हित लागि तजइ जो देही। सतत संत प्रसंसहिं तेही॥१॥
अस कहि चलेउ सबहि सिरु नाई। सुमन धनुष कर सहित सहाई॥
चलत मार अस हृदयँ बिचारा। सिव बिरोध ध्रुव मरनु हमारा॥२॥
तब आपन प्रभाउ बिस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा॥
कोपेउ जबहिं बारिचरकेतू। छन महुँ मिटे सकल श्रुति सेतू॥३॥
ब्रह्मचर्य ब्रत संजम नाना। धीरज धरम ग्यान बिग्याना॥
सदाचार जप जोग बिरागा। सभय बिबेक कटकु सबु भागा॥४॥

शब्दार्थ—सहाई=सहायक। मार=कामदेव। ध्रुव=निश्चित। वारिचर-केतु=कामदेव। श्रुति-सेतु=वेद की मर्यादा। कटकु=सेना।

भावार्थ — कामदेव देवताओं से कह रहा है कि शिव-विरोध करने पर मेरी कुशल तो नहीं है, फिर भी मैं तुम्हारा काम तो करूँगा, क्योंकि वेदों ने परोपकार को परम धर्म बताया है (परहित सरिस धरम नहि भाई)। जो दूसरों के हितार्थ अपना शरीर त्याग देता है, सन्त सदा उसकी बड़ाई करते हैं।

इस प्रकार कह कर तथा सबको सिर झुका कर कामदेव अपने फूल के [illegible] को हाथ में लेकर, वसन्त आदि सहायकों को साथ लेकर चल दिया। [illegible] समय कामदेव ने अपने हृदय में ऐसा विचार किया कि शिव के साथ विरोध करने से मेरी मृत्यु निश्चित है।

तदनन्तर कामदेव ने अपना प्रभाव फैलाया और सारे संसार को अपने वश में कर लिया। जब मकरध्वज कामदेव ने कोप किया, तब क्षण भर में ही वेद की सारी मर्यादा नष्ट हो गई। ब्रह्मचर्य, व्रत-नियम, अनेक प्रकार के संयम, धैर्य, धर्म, ज्ञान विज्ञान, सदाचार, जप, योग, वैराग्य आदि विवेक की सारी सेना डर कर भाग गई।

मूल-छंद-भागेउ विवेकु सहाय सहित सो सुभट संजुग महि मुरे।
सदग्रंथ पर्वत कंदरन्हि महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे॥
होनिहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा।
दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपि कर धनु सरु धरा॥

मूल-चौ०—सबके हृदयँ मदन अभिलाषा। लता निहारि नवहिं तरु साखा॥
नदीं उमगि अंबुधि कहुँ धाईं। संगम करहिं तलाव तलाईं॥१॥
जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी। को कहि सकइ सचेतन करनी॥
पसु पच्छी नभ जल थल चारी। भए कामबस समय बिसारी॥२॥
मदन अंध ब्याकुल सब लोका। निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका॥
देव दनुज नर किंनर ब्याला। प्रेत पिसाच भूत बेताला॥३॥
इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी॥
सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी। तेपि कामबस भए बियोगी॥४॥

छं०—भए कामबस जोगीस तापस पावँरन्हि की को कहै।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामय।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अय।

सो०—धरी न काहूँ धीर सबके मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ॥८५॥

शब्दार्थ—मदन-अभिलाषा=काम की इच्छा। मदन-अन्ध=कामान्ध। कोका=चकवा-चकवी। चेरे=गुलाम। पावँरन्हि=नीच मनुष्यों की। अबला=स्त्रियाँ। दंड=घड़ी। अय=यह। मनसिज=कामदेव। उबरे=बचे।

भावार्थ—कामदेव ने जब अपना प्रभाव चारों ओर फैला दिया तब सबके हृदय में काम-वासना जाग्रत हो गई। लताओं को देखकर वृक्षों ने कामातुर होकर अपनी शाखाएँ झुका दीं। नदियाँ उमड़ कर समुद्र की ओर दौड़ पड़ीं, यहाँ तक कि तालाब और तलैया भी आपस में मिलने लगे—संभोग करने लगे। जब जड़ पदार्थों की ही ऐसी दशा हो गई—वे ही जब काम के वशीभूत हो गये, तब चेतन प्राणियों की करनी का तो कहना ही क्या? नभचर, जलचर और स्थलचर सारे पशु-पक्षी अपने संभोग का समय भुला कर काम के वशीभूत हो गये। सब लोग कामान्ध होकर बेचैन हो गये। चकवा-चकवी ने दिन-रात का विचार नहीं किया। (चकवा-चकवी रात्रि को नहीं मिलते।) मैंने देव, दैत्य, मनुष्य, किन्नर, सर्प, प्रेत, भूत, पिशाच, बैताल, आदि की दशा का वर्णन इसलिए नहीं किया कि ये तो सदा ही काम के दास हैं। यहाँ तक कि

सिद्ध, विरक्त, महामुनि और योगी भी काम के वश में होकर वियोगी (स्त्री के विरही) बन गये।

जब योगीश्वर और तपस्वी भी काम के वश हो गये, तब पामर मनुष्यों की कौन कहे? जो समस्त चराचर जगत् को ब्रह्ममय देखते थे वे अब उसे स्त्रीमय देखने लगे। स्त्रियाँ सारे ससार को पुरुषमय देखने लगी और पुरुष उसे स्त्रीमय देखने लगे। दो घडी तक सारे ब्रह्माण्ड के अन्दर कामदेव का रचा हुआ यह कौतुक (तमाशा) रहा।

किसी ने भी हृदय मे धैर्य नहीं धारण किया, कामदेव ने सबके मन हर लिये। श्रीरघुनाथजी ने जिनकी रक्षा की, केवल वे ही उस समय बचे रहे।

मूल-चौ०—उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जौ लगि कामु संभु पहिं गयऊ॥
सिवहि बिलोकि ससकेउ मारू। भयउ जथाथिति सबु संसारू॥१॥
भए तुरत सब जीव सुखारे। जिमि मद उतरि गएँ मतवारे॥
रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुराधरष दुर्गम भगवाना॥२॥
फिरत लाज कछु करि नहिं जाई। मरनु ठानि मन रचेसि उपाई॥
प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसुमित नव तरु राजि बिराजा॥३॥
बन उपबन बापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिसा बिभागा॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहुँ मन मनसिज जागा॥४॥

छं०—जागइ मनोभव मुएहुँ मन बन सुभगता न परै कही।
सीतल सुगन्ध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही॥
बिकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा।
कलहंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा॥

दो०—सकल कला करि कोटि बिधि हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि सिव कोपेउ हृदयनिकेत॥८६॥

शब्दार्थ—उभय=दो। पहिं=पास। ससकेउ=डर गया। मारू=कामदेव। जथाथिति=जैसा का तैसा (पूर्ववत्)। रुद्रहि=शिवजी को। दुराधर्ष=जिनको पराजित करना कठिन हो। कुसुमित=फूले हुए। राजि=पंक्ति। बापिका=बावड़ी। तड़ागा=तालाब। मारुत=वायु। मदन-अनल=कामाग्नि। कंज=कमल। रव=शब्द।

भावार्थ—दो घडी तक कामदेव का व्यापक प्रभाव रहा और यह कौतुक उस समय तक चलता रहा जब तक कि कामदेव शिवजी के पास नही पहुँच गया। शिवजी को देख कर कामदेव डर गया। तब सारा ससार फिर जैसा का तैसा बन गया। शीघ्र ही सारे प्राणी (जो कामातुर हो रहे थे) इस तरह सुखी हो गये जैसे नशा किये हुए लोग नशा उतर जाने पर सुखी होते हैं–प्रकृतिस्थ हो जाते हैं। शकर को देख कर कामदेव भयभीत हो गया, क्योकि शकर रुद्र हैं, वे दुराधर्ष और दुर्गम हैं। इन सबके उपरान्त वे भगवान् हैं अर्थात् छः ईश्वरीय गुणो से युक्त हैं।

डर कर कामदेव लौट जाना चाहता था परन्तु लौटने मे उसे लज्जा मालूम होती थी और स्थिति ऐसी थी कि उसे कुछ करते भी नही बन रहा था। अन्त मे उसने मरने का निश्चय करके एक उपाय रचा। उसने शीघ्र ही वसन्त को प्रकट किया जिसमे सर्वत्र नये-नये वृक्षो की पुष्पित पक्तियाँ शोभा देने लगी। वन, बाग, बावडी, तालाब और सब दिशाएँ परम सुन्दर बन गई। सर्वत्र प्रेम उमडने लगा, जिसे देख कर मरे हुए मनो मे भी कामदेव जाग उठा।

मरे हुए मन मे भी कामदेव जागने लगा, वन की सुन्दरता कही नही जा सकती। काम रूपी अग्नि का सच्चा मित्र शीतल-मन्द-सुगन्धित पवन चलने लगा। सरोवरो मे अनेको कमल खिल गये, जिन पर सुन्दर भौरो के समूह गुंजार करने लगे। राजहस, कोयल और तोते रसीली बोली बोलने लगे और अप्सराएँ गा-गाकर नाचने लगी।

कामदेव अपनी सेना समेत करोडो प्रकार की सब कलाएँ (उपाय) करके हार गया, पर शिवजी की अचल समाधि न डिगी। तब कामदेव क्रोधित हो उठा।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, उदाहरण, उत्प्रेक्षा अलकार। हरिगीतिका छन्द।

मूल–चौ०–देखि रसाल बिटप बर साखा। तेहि पर चढेउ मदनु मन माखा॥
सुमन चाप निज सर संधाने। अति रिस ताकि श्रवन लगि ताने॥१॥
छाड़े बिषम बिसिख उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे॥
भयउ ईस मन छोभु बिसेषी। नयन उघारि सकल दिसि देखी॥२॥

सौरभ पल्लव मदनु बिलोका। भयउ कोपु कपेउ त्रैलोका ॥
तब सिवँ तीसर नयन उघारा। चितवत कामु भयउ जरि छारा ॥३॥
हाहाकार भयउ जग भारी। डरपे सुर भए असुर सुखारी ॥
समुझि कामसुख सोचहिं भोगी। भए अकंटक साधक जोगी ॥४॥

शब्दार्थ—रसाल विटप=आम का पेड। माखा=क्रोधाविष्ट। सुमन-चाप=फूलो का बना धनुष। रिस=क्रोध। बिसिख=बाण। सौरभ-पल्लव=आम के पत्ते। छारा=राख।

भावार्थ—जब कामदेव के सारे प्रयत्न विफल हो गये और वह शिवजी की समाधि भग न कर सका, तब उसे क्रोध आ गया और वह आम्र वृक्ष की एक सुन्दर शाखा पर चढ गया। उसने अपने पुष्प-धनुष पर अपने बाणो का सधान किया और कुपित होकर उसने लक्ष्य की ओर ताका और बाणो को कान तक तान लिया।

कामदेव ने तीक्ष्ण पाँच बाण छोडे, जो शिवजी के हृदय मे लगे। तब उनकी समाधि टूट गयी और वे जाग गये। ईश्वर (शिवजी) के मन मे बहुत क्षोभ हुआ, उन्होने आँखे खोलकर सब ओर देखा।

जब शिवजी ने आम के पत्तो मे छिपे कामदेव को देखा, तब उन्हे बडा क्रोध आया, जिससे तीनो लोक काँप उठे। तब शिवजी ने अपना तीसरा नेत्र खोला और उनके देखते ही कामदेव जल कर भस्म हो गया।

जगत् मे बडा हाहाकार मच गया। देवता डर गये, दैत्य सुखी हुए। भोगी लोग काम सुख को याद करके चिन्ता करने लगे और साधक योगी निष्कण्टक हो गये। (अब उन्हे काम-बाधा से मुक्ति मिल गई।)

काव्य-सौन्दर्य– अनुप्रास और लाटानुप्रास अलकार।

मूल–छं०–जोगी अकंटक भए पति गति सुनत रति मुरुछित भई।
रोदति बदति बहु भाँति करुना करति संकर पहिं गई ॥
अति प्रेम करि बिनती बिबिध बिधि जोरि कर सन्मुख रही।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही ॥

दो०—अब ते रति तव नाथ कर होइहि नामु अनंगु।
बिनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसंगु ॥८७॥

शब्दार्थ—रति=कामदेव की पत्नी। रोदति=रोती हुई। सही=सान्त्वना देने वाले वचन। अनंगु (अनंग=अङ्ग-रहित, बिना शरीर के। वपु=शरीर।

भावार्थ—योगी निष्कण्टक हो गये, कामदेव की स्त्री रति अपने पति की यह दशा सुनते ही मूर्छित हो गयी। रोती चिल्लाती और भाँति-भाँति से करुणा करती हुई वह शिवजी के पास गयी। अत्यन्त प्रेम के साथ अनेको प्रकार से विनती करके हाथ जोडकर सामने खडी हो गयी। शीघ्र प्रसन्न होने वाले कृपालु शिवजी अवला (असहाया स्त्री) को देखकर सुन्दर (उसको सान्त्वना देने वाले) वचन वोले—

हे रति! अव से तेरे स्वामी का नाम अनङ्ग होगा। वह विना ही शरीर के सवको व्यापेगा। अव तू अपने पति से मिलने की वात सुन।

मूल—चौ०—जव जदुवंस कृष्न अवतारा। होइहि हरन महा महिभारा॥
कृष्न तनय होइहि पति तोरा। बचनु अन्यथा होइ न मोरा॥१॥
रति गवनी सुनि संकर वानी। कथा अपर अव कहउँ वखानी॥
देवन्ह समाचार सव पाए। ब्रह्मादिक वैकुंठ सिधाए॥२॥
सव सुर विष्नु विरंचि समेता। गए जहाँ सिव कृपानिकेता॥
पृथक पृथक तिन्ह कीन्हि प्रसंसा। भए प्रसन्न चंद्र अवतंसा॥३॥
वोले कृपासिंधु वृषकेतू। कहहु अमर आए केहि हेतु॥
कह विधि तुम्ह प्रभु अन्तरजामी। तदपि भगति वस विनवउँ स्वामी॥४॥
दो०—सकल सुरन्ह के हृदयँ अस संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहहिं नाथ तुम्हार विवाहु॥८८॥

शब्दार्थ—कृष्ण-तनय=श्रीकृष्ण का लडका (प्रद्युम्न। गवनी=चली गई। अपर=दूसरी। विरंचि=ब्रह्मा। चन्द्रअवतंसा=शशिभूषण (शिव)। वृषकेतु=शिव। अमर=देवता।

भावार्थ—भगवान् शिव रति को इस प्रकार सान्त्वना देते हैं—जब पृथ्वी के भार को उतारने के लिये यदुवंश में श्रीकृष्ण अवतार लेंगे, तव उनके प्रद्युम्न नाम का एक पुत्र होगा, वह तेरा पति होगा। मेरा यह वचन कभी मिथ्या न होगा।

शिवजी के ये वचन सुन कर रति चली गई। अव मैं दूसरी कथा कहता

हूँ (याज्ञवल्क्य भरद्वाज से कह रहे हैं) ।

ब्रह्मा आदि देवताओं को जब यह समाचार मिला कि कामदेव भस्म हो गया और रति को शिव ने वरदान दे दिया, तब वे सब वैकुण्ठ को चले । फिर वहाँ से वे विष्णु और ब्रह्मा के सहित वहाँ पहुँचे जहाँ कृपा के धाम शिव थे । उन सब ने पृथक्-पृथक् रूपक रूप में शिवजी की स्तुति की । इस पर शशिभूषण शिव प्रसन्न हो गये ।

कृपा-सागर शिव बोले—हे देवताओ ! कहिए, आप लोग किस लिए पधारे हैं ? तब ब्रह्मा ने सब की ओर से निवेदन किया—हे प्रभो ! आप तो अन्तर्यामी हैं, सब कुछ जानते है, फिर भी हे स्वामी भक्तिवश मैं आपसे विनती करता हूँ । हे शंकर ! सब देवताओं के मन में ऐसा उत्साह हो रहा है कि वे अपनी आँखों से आपका विवाह देखना चाहते हैं ।

मूल—चौ०—यह उत्सव देखिअ भरि लोचन । सोइ कछु करहु मदन मद मोचन ॥
काम जारि रति कहुँ बरु दीन्हा । कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा ॥१॥
सासति करि पुनि करहिं पसाऊ । नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ ॥
पारबतीं तपु कीन्ह अपारा । करहु तासु अब अंगीकारा ॥२॥
सुनि बिधि बिनय समुझि प्रभु बानी । ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी ॥
तब देवन्ह दुंदुभीं बजाईं । बरषि सुमन जय जय सुर साईं ॥३॥
अवसरु जानि सप्तरिषि आए । तुरतहिं बिधि गिरिभवन पठाए ॥
प्रथम गए जहँ रहीं भवानी । बोले मधुर बचन छल सानी ॥४॥
दो०—कहा हमार न सुनेहु तब नारद कें उपदेस ।
अब भा झूठ तुम्हार पन जारेउ कामु महेस ॥८९॥

शब्दार्थ—मदन-मद-मोचन=कामदेव के मद को चूर्ण करने वाले (शिव) । कामु=कामदेव । सासति=दण्ड । पसाउ=कृपा । दुन्दुभी=नगाडे । गिरिभवन=हिमाचल के घर ।

भावार्थ—हे कामदेव के मद को चूर करने वाले ! आप ऐसा कुछ कीजिये जिससे सब लोग इस उत्सव को नेत्र भर कर देखें । हे कृपा के सागर ! कामदेव को भस्म करके आपने रति को जो वरदान दिया सो बहुत ही अच्छा किया ।

हे नाथ ! श्रेष्ठ स्वामियों का यह सहज स्वभाव ही है कि वे पहले दण्ड देकर फिर कृपा किया करते हैं। पार्वती ने अपार तप किया है, अब इन्हें अंगीकार कीजिये।

ब्रह्माजी की प्रार्थना सुन कर और प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के वचनों को याद करके शिवजी ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, 'ऐसा ही हो।' तब देवताओं ने नगाडे बजाये और फूलो की वर्षा करके जय हो ! 'देवताओं के स्वामी की जय हो' ऐसा कहने लगे।

उचित अवसर जानकर सप्तर्षि आये और ब्रह्माजी ने तुरन्त ही उन्हें हिमाचल के घर भेज दिया। वे पहले वहाँ गये जहाँ पार्वती थी, और उनसे छल से भरे मीठे (विनोदयुक्त, आनन्द पहुँचाने वाले) वचन बोले—

नारदजी के उपदेश से तुमने उस समय हमारी बात नही सुनी। अब तो तुम्हारा प्रण झूठा हो गया, क्योंकि महादेवजी ने काम को ही भस्म कर डाला।

काव्य-सौन्दर्य— अनुप्रास अलकार।

चौ०—चौ०-सुनि बोलीं मुसुकाई भवानी। उचित कहेहु मुनिवर बिग्यानी ॥
तुम्हरें जान कामु अब जारा। अब लगि संभु रहे सविकारा ॥१॥
हमरें जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥
जौं मैं सिव सेये अस जानी। प्रीति समेत कर्म मन बानी ॥२॥
तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा ॥
तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा। सोइ अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा ॥३॥
तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ ॥
गएँ समीप सो अवसि नसाई। असि मन्मथ महेस की नाई ॥४॥

दो०—हियँ हरषे मुनि बचन सुनि देखि प्रीति बिस्वास।
चले भवानिहि नाइ सिर गए हिमाचल पास ॥९०॥

शब्दार्थ—अनवद्य=अनिन्द्य। ईसा=भगवान। मारा=कामदेव। हर=शिव। हिम=पाला। असि=ऐसा ही। नाई=न्याय।

भावार्थ—सप्तर्षियों की बात सुन कर पार्वती ने मुसकरा कर कहा—हे ज्ञानी मुनियों ! आपने उचित ही कहा है। आपकी समझ में शिवजी ने

कामदेव को अब जलाया है, इसका अर्थ यह हुआ कि शिव अब तक कामी थे—विकार-सहित थे।

किन्तु मेरी समझ में तो शिवजी सदा ही योगी, अजन्मा, अनिन्द्य, काम-रहित और भोग से परे हैं। यदि मैंने शिवजी को ऐसा ही समझ कर मनसा, वाचा, कर्मणा प्रेम सहित उनकी सेवा की है तो हे मुनीश्वरो! सुनिए, वे कृपानिधान शिव अवश्यमेव मेरे प्रण को पूरा करेंगे। आपने जो यह कहा कि शिवजी ने कामदेव को भस्म कर दिया, यही आपका सबसे बडा अविवेक है।

हे नात! अग्नि का तो यह सहज स्वभाव ही है कि पाला उसके समीप कभी जा ही नही सकता और जाने पर वह अवश्य नष्ट हो जायगा। महादेवजी और कामदेव के सम्बन्ध मे भी यही न्याय (बात) समझना चाहिये।

पार्वती के वचन सुनकर और उनका प्रेम तथा विश्वास देख कर मुनि लोग हृदय में बडे प्रसन्न हुए। वे भवानी को सिर नवाकर चल दिये और हिमाचल के पास पहुँचे।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलकार।

मूल-चौ०—सबु प्रसगु गिरिपतिहि सुनावा। मदन दहन सुनि अति दुखु पावा॥
बहुरि कहेउ रति कर बरदाना। सुनि हिमवंत बहुत सुखु माना॥१॥
हृदयँ बिचारि संभु प्रभुताई। सादर मुनिवर लिए बोलाई॥
सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई। बेगि बेदबिधि लगन धराई॥२॥
पत्री सप्तरिषिन्ह सोइ दीन्ही। गहि पद बिनय हिमालय कीन्ही॥
जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्हि सो पाती। बाचत प्रीति न हृदयँ समाती॥३॥
लगन बाचि अज सबहि सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई॥
सुमन बृष्टि नभ बाजन बाजे। मगल कलस दसहुँ दिसि साजे॥४॥
दो०—लगे सँवारन सकल सुर बाहन बिबिध बिमान।
होहिं सगुन मगल सुभद करहिं अपछरा गान॥९१॥

शब्दार्थ—मदन-दहन=कामदेव का भस्म होना। बहुरि=फिर। बेगि=शीघ्र ही। पत्री=लगन-पत्रिका। गहि=पकड कर। पाति=पत्रिका। अज=ब्रह्मा। बाहन=सवारी। सुभद=अति शुभ।

भावार्थ—हिमाचल के पास पहुँच कर सप्तर्षियो ने उसे सारा प्रसग कह सुनाया। कामदेव का भस्म होना सुनकर हिमाचल ने बडा दुःख महसूस किया। किन्तु जब फिर उसने रति को वरदान देने की बात सुनी, तब उसको सुख हुआ।

मन ही मन शिवजी के प्रभाव को विचार कर हिमाचल ने श्रेष्ठ मुनियो को आदरपूर्वक बुला लिया और उनसे शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और शुभ घडी शोधवाकर वेद की विधि के अनुसार शीघ्र ही लग्न निश्चय करा कर लिखवा लिया।

फिर हिमाचल ने वह लग्नपत्रिका सप्तर्षियो को दे दी और चरण पकडकर उनकी विनती की। उन्होंने जाकर वह लग्नपत्रिका ब्रह्माजी को दी। उसको पढते समय उनके हृदय मे प्रेम समाता न था।

ब्रह्माजी ने लग्न पढकर सबको सुनाया, उसे सुनकर सब मुनि और देवताओ का सारा समाज हर्षित हो गया। आकाश से फूलो की वर्षा होने लगी, बाजे बजने लगे और दसो दिशाओ मे मङ्गल-कलश सजा दिये गये।

सब देवता अपने-अपने वाहनो और सवारियो को सजाने लगे। उस समय अत्यन्त मगलीक शुभ शकुन होने लगे और अप्सराएँ गाने लगी।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलकार की सुन्दर छटा।

मूल—चौ०—सिवहि संभु गन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौर सँवारा॥
कुण्डल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला॥१॥
ससि ललाट सुन्दर सिर गंगा। नयन तीनि उपबीत भुजंगा॥
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव बेष सिवधाम कृपाला॥२॥
कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसहँ चढ़ि बाजहिं बाजा॥
देखि सिवहि सुरत्रिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं॥३॥
बिष्नु बिरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता॥
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा॥४॥
दो०—बिष्नु कहा अस बिहँसि तब बोलि सकल दिसिराज।
बिलग बिलग होइ चलहू सब निज निज सहित समाज॥९२॥

शब्दार्थ—अहिमौर=साँपो का मौर। कंकन=कडे। ब्याला=साँप।

त्रिभूति=राख । केहरि-छाला=वाघम्वर । उपवीत=जनेऊ । गरल=विष । अशिव=अमगलीक । वसहँ=वैल । सुरव्राता = देवताओ का समूह । दिसिराज=दिक्पाल । विलग=अलग, पृथक रूप मे ।

भावार्थ—शिवजी के गणो ने शिवजी का शृ गार करना आरम्भ किया । उन्होने जटाओ का तो मुकुट वना दिया और उस पर साँपो का मौर सजा दिया । शिवजी ने कुण्डल के स्थान मे कानो मे तथा कडो के स्थान मे हाथो मे साँप लपेट लिये । शरीर पर राख और ऊपर से वाघवर लपेट लिया ।

शिवजी के ललाट पर चन्द्रमा तथा उनके सुन्दर सिर पर गगा विराज रही थी । उनके तीन नेत्र थे और गले मे साँपो की जनेऊ थी । उनके कठ मे विष और छाती पर नर-मुण्डो की माला थी । इस तरह महादेवजी का वेश देखने मे अशुभ था । फिर भी वे शिवधाम (कल्याण के स्थान) और कृपालु है ।

महादेवजी के हाथो मे त्रिशूल और डमरू विराज रहे थे और जव वे अपने वैल पर चढ कर चले, तव वाजे वजने लगे । शिवजी की वेष-भूषा देखकर सुरागनाएँ मुसकराई और वोली—इस वर के योग्य तो दुलहिन ससार भर मे नही मिल सकती ।

व्रह्मा, विष्णु तथा अन्य सव देवता अपने अपने वाहनो पर सवार होकर वरात मे साथ हो लिये । देवताओ का समाज सव प्रकार से सुन्दर था, किन्तु जैसा दूल्हा था, वैसी वरात न थी ।

तव विष्णु भगवान् ने सव दिक्पालो को वुलाकर हँसते हुए कहा—'सव लोग अपने-अपने समूह मे अलग-अलग होकर चलो ।'

मूल—चौ०—वर अनुहारि वरात न भाई । हँसी करैहहु पर पुर जाई ॥
विष्नु वचन सुनि सुर मुसुकाने । निज निज सेन सहित विलगाने ॥१॥
मनहीं मन महेसु मुसुकाहीं । हरि के विंग्य वचन नहि जाही ॥
अति प्रिय वचन सुनत प्रिय केरे । भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे ॥२॥
सिव अनुसासन सुनि सव आए । प्रभु पद जलज सीस तिन्ह नाए ॥
नाना वाहन नाना वेषा । विहसे सिव समाज निज देखा ॥३॥

कोउ मुखहीन विपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू ॥
विपुल नयन कोउ नयन विहीना। रिष्टपुष्ट कोउ अति तन खीना ॥४॥

शब्दार्थ—अनुहारि=मुताबिक। बिलगाने=अलग हो गये। विग्य बचन=तीखे मजाक के वचन। भृंगिहि=अपने द्वारपाल भृंगी को। प्रेरि=भेज कर। नाए=झुकाए। खीना=दुबले-पतले।

भावार्थ—विष्णु ने दिक्पालों को बुला कर कहा—हे भाई! तुम लोगों ने बनी यह बरात वर के योग्य नहीं है (जैसा वर है, वैसी बरात नहीं है)। क्या तुम पराये नगर में जाकर अपनी हँसी कराओगे? विष्णु के ये वचन सुन कर देवता मुसकराये और अपने-अपने दलों के साथ वे सब अलग-अलग हो गये। यह बात देख कर शिवजी मन ही मन मुसकराये। विष्णु के तीखे व्यंग्य-भरे वचन उनके हृदय में जा बैठे। अपने प्यारे (विष्णु) के इन अत्यन्त प्रिय वचनों को सुन कर महादेवजी ने भी अपने द्वारपाल भृंगी को भेज कर अपने सब गणों को बुलवा लिया।

शिवजी का आदेश पाते ही वे सब आ गये। उन्होंने आकर शिवजी के चरणों में सिर झुकाया। उनकी सवारियाँ भी अलग-अलग थीं और वेश भी अलग-अलग। शिवजी स्वयं अपने इस समाज को देखकर हँस पड़े।

शिवजी का कोई गण बिना मुख का है, किसी के बहुत से मुख हैं, कोई बिना हाथ-पैर का है तो किसी के हाथ-पैर हैं। किसी के बहुत आँखें हैं, तो किसी के एक भी आँख नहीं है। कोई बहुत मोटा-ताजा है तो कोई बहुत ही दुबला-पतला है।

मूल—छं०—तन खीन कोउ अति पावन कोउ अपावन गति धरें।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें ॥
खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन बेष अगनित को गनै।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै ॥

भावार्थ—कोई बहुत दुबला, कोई बहुत मोटा, कोई पवित्र और कोई अपवित्र वेष धारण किये हुए है। भयंकर गहने पहने, हाथ में कपाल लिये हैं और सब के सब शरीर में ताजा खून लपेटे हुए हैं। गधे, कुत्ते, सूअर और सियार के से उनके मुख हैं। गणों के अनगिनत वेषों को कौन गिने? बहुत

प्रकार के प्रेत, पिशाच और योगिनियो की जमातें हैं, उनका वर्णन करते नही बनता ।

काव्य-सौन्दर्य—'पावन अपावन' मे लाटानुप्रास अलंकार ।

मूल-सो०-नाचहिं गावहिं गीत, परम तरगी भूत सब ।
देखत अति बिपरीत बोलहिं बचन बिचित्र बिधि ।।९३।।

भावार्थ—भूत-प्रेत नाचते और गाते है, वे सब वडे मौजी हैं । देखने म वहुत ही वेढगे जान पडते हैं और वडे ही विचित्र ढग से बोलते हैं ।

काव्य सौदर्य—वृत्यनुप्रास अलकार ।

मूल–चौ०-जस दूलहु तसि बनी बराता । कौतुक बिबिध होहिं मग जाता ।।
इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना । अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना ।।१।।
सैल सकल जहँ लगि जगमाहीं । लघु बिसाल नहिं बरनि सिराहीं ।।
बन सागर सब नदीं तलावा । हिमगिरि सब कहुँ नेवत पठावा ।।२।।
कामरूप सुन्दर तन धारी । सहित समाज सहित बर नारी ।।
गए सकल तुहिनाचल गेहा । गावहिं मगल सहित सनेहा ।।३।।
प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराए । जथाजोगु तहँ तहँ सब छाए ।।
पर सोभा अवलोकि सुहाई । लागइ लघु बिरचि निपुनाई ।।४।।

भावार्थ—शिवजी की बरात जा रही है । जैसा दूल्हा है अव वैसी ही बरात वन गयी है । मार्ग मे चलते हुए भाँति-भाँति के कौतुक (तमाशे) होते जाते है । इधर हिमाचल ने ऐसा विचित्र मण्डप बनाया कि जिसका वर्णन नही हो सकता ।

हिमाचल ने विवाहोत्सव मे सम्मिलित होने के लिए ससार मे जितने भी छोटे और वडे पर्वत थे, जिनका पार नही पाया जा सकता, उनको तथा जितने वन, समुद्र, नदियाँ और तालाव थे, उन सबको निमत्रण भेजा ।

वे सब अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार (मन-चाहा) रूप धारण करके, सुन्दर शरीर वाले बन कर सुन्दरी स्त्रियो और अपने समाज के सहित हिमाचल के यहाँ आ गये । वे सब प्रेम-पूर्वक मगलीक गीत गाने लगे ।

हिमाचल ने पहले ही से वहुत से घर सजवा रक्खे थे । यथायोग्य उन-उन स्थानो मे सब लोग उतर गये । नगर की सुन्दर शोभा देख कर ब्रह्मा की

रचना-चातुरी भी तुच्छ लगती थी।

मूल-छ०-लघु लाग विधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही।
वन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही॥
मंगल विपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं।
वनिता पुरुष सुन्दर चतुर छवि देखि मुनि मन मोहहीं॥

भावार्थ—नगर की शोभा देखकर ब्रह्मा की निपुणता सचमुच तुच्छ लगती है। वन, बाग कुएँ, तालाब, नदियाँ सभी सुन्दर हैं, उनका वर्णन कौन कर सकता है? घर-घर बहुत से मङ्गल सूचक तोरण और ध्वजा-पताकाएं सुशोभित हो रही हैं। वहाँ के सुन्दर और चतुर स्त्री-पुरुषों की छवि देखकर मुनियो के भी मन मोहित हो जाते हैं।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश अलकार।

मूल-दो०-जगदवा जहँ अवतारी सो पुर वरनि कि जाइ।
रिद्धि सिद्धि सपत्ति सुख नित नूतन अधिकाइ ॥९४॥

भावार्थ—जिस नगर मे स्वय जगदम्बा ने अवतार लिया, क्या उसका वर्णन हो सकता है। वहाँ ऋद्धि, सिद्धि, सम्पत्ति और सुख नित नये बढ़ते जाते हैं ॥९४॥

मूल-चौ०-नगर निकट बरात सुनि आई। पुर खरभरु सोभा अधिकाई॥
करि बनाव सजि बाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना॥१॥
हियँ हरषे सुर सेन निहारी। हरिहि देखि अति भए सुखारी॥
सिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले बाहन सब भागे॥२॥
धरि धीरज तहँ रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने॥
गएँ भवन पूछहिं पितु माता। कहहिं बचन भय कंपित गाता॥३॥
कहिअ काह कहि जाइ न बाता। जम कर धार किधौं बरिआता॥
बरु बौराह बसहँ असवारा। ब्याल कपाल बिभूषन छारा॥४॥

शब्दार्थ—खरभरु=खलबली, चहल-पहल। अगवाना=सामने जाकर लाना। सेन=समाज। बिडरि=डर कर। पराने=भागे। जम कर=यमराज की। धार=सेना। बरिआता=बरात। बौराह=पागल। बसहँ=बैल। ब्याल=सर्प।

भावार्थ—शिवजी की बरात को नगर के निकट आयी सुनकर नगर मे चहल-पहल मच गयी, जिससे उसकी शोभा बढ गयी। अगवानी करने वाले बनाव-शृंगार करके तथा नाना प्रकार की सवारियो को सजाकर आदर सहित बरात को लेने चले।

देवताओ के समाज को देखकर सब मन मे प्रसन्न हुए और विष्णु-भगवान् को देखकर तो बहुत ही सुखी हुए। किन्तु जब शिवजी के दल को देखने लगे तब तो उनके सब वाहन (सवारियो के हाथी, घोडे, रथ के बैल आदि) डर कर भाग चले।

कुछ बडी उम्र के समझदार लोग धीरज धरकर वहाँ डटे रहे। लडके तो सब अपने प्राण लेकर भागे। घर पहुँचने पर जब माता-पिता पूछते हैं, तब वे भय से काँपते हुए शरीर से ऐसा वचन कहते है—

'क्या कहें और किसको कहे, कोई बात कहने मे नही आती ? यह समझ मे नही आता कि यह बरात है या यमराज की सेना ? दूल्हा पागल है और बैल पर सवार और साँप, कपाल और राख ही उसके आभूषण है।'

काव्य-सौन्दर्य——अनुप्रास, सदेह अलकार। बालको की भय-प्रवृत्ति का स्वाभाविक वर्णन।

मूल-छं०—तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयकरा।
संग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा॥
जो जिअत रहिहि बरात देखत पुन्य बड तेहि कर सही।
देखिहि सो उमा बिबाहु घर घर बात असि लरिकन्ह कही॥

भावार्थ—दूल्हे के शरीर पर राख लगी है, साँप और कपाल के गहने हैं, वह नगा, जटाधारी और भयकर है। उसके साथ भयानक मुख वाले भूत, प्रेत, पिसाच, योगिनियाँ और राक्षस है। जो बरात को देखकर जीता बचेगा, सचमुच उसके बडे ही पुण्य हैं और वही पार्वती का विवाह देखेगा। लडको ने घर-घर यही बात कही।

मूल-दो०—समुझि महेस समाज सब जननि जनक मुसुकाहि।
बाल बुझाए बिबिध बिधि निडर होहु डर नाहि॥९५॥

भावार्थ—महेश्वर (शिवजी) का समाज समझ कर सब लडको के माता-

पिता मुसकराते हैं। उन्होंने बहुत तरह से लड़को को समझाया कि निडर हो जाओ, डर की कोई बात नहीं है।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलकार।

मूल-चौ०—लै अगवान बरातहि आए। दिए सबहि जनवास सुहाए॥
मैनाँ सुभ आरती सँवारी। संग सुमगल गावहिं नारी॥१॥
कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी॥
बिकट बेष रुद्रहि जब देखा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा॥२॥
भागि भवन पैठीं अति त्रासा। गए महेसु जहाँ जनवासा॥
मैना हृदयँ भयउ दुखु भारी। लीन्ही बोलि गिरीसकुमारी॥३॥
अधिक सनेहँ गोद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे बारी॥
जेहिं बिधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा॥४॥

छं०—कस कीन्ह बरु बौराह बिधि जेहिं तुम्हहि सुन्दरता दई।
जो फलु चहिअ सुरतरुहि सो बरबस बबूरहि लागई॥
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं।
घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं॥

शब्दार्थ—लै अगवान=अगवानी करके। सुहाए=सुन्दर। बर=श्रेष्ठ। पानी=हाथ। अबलन्ह उर=स्त्रियो के मन मे। त्रासा=डर। सरोज=कमल। बारी=जल। पावक=अग्नि।

भावार्थ—जो लोग अगवानी करने गए थे, वे बरात को लिवा लाए। उन्होंने सबको सुन्दर जनवासे मे ठहरने को स्थान दे दिया। पार्वती की माता मैना ने शुभ आरती सजाई और उनके साथ की स्त्रियों ने मागलीक गीत गाये।

मैना के हाथो मे सोने का सुन्दर थाल सुशोभित है। इस प्रकार मैना शिवजी का परछन करने चली। समीप जाकर जब उन्होंने (स्त्रियो ने) महादेव जी का भयानक वेश देखा, तब उनके मन में बड़ा भारी भय उत्पन्न हो गया।

वे बहुत अधिक भयभीत होकर घर के भीतर घुस गईं। शिवजी, जहाँ जनवासा था, वहाँ चले गए। शिवजी के उस वेश को देखकर मैना के हृदय मे बड़ा भारी दुःख हो गया। तब उसने पार्वती को बुला लिया।

और अत्यन्त स्नेह मे गोद मे बैठाकर अपने नील कमल के समान नेत्रों

मे आँसू भरकर कहा — जिस विधाता ने तुमको ऐसा सुन्दर रूप दिया, उस मूर्ख ने तुम्हारे दूल्हे को बावला कैसे बनाया ?

जिस विधाता ने तुमको सुन्दरता दी, उसने तुम्हारे लिए वर बावला कैसे बनाया ? जो फल कल्पवृक्ष मे लगना चाहिए, वह जबरदस्ती बबूल मे लग रहा है। मैं तुम्हें लेकर पहाड से गिर पडूँगी, आग मे जल जाऊँगी या समुद्र मे कूद पडूँगी। चाहे घर उजड जाय और ससार भर में अपकीर्ति फैल जाय, पर जीते-जी मैं इस बावले वर से तुम्हारा विवाह न करूँगी।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और विषम अलकार।

मूल-दो०—भईं विकल अबला सकल दुखित देखि गिरिनारि।
करि बिलापु रोदति बदति सुता सनेहु सँभारि ॥९६॥

चौ०—नारद कर मैं काह बिगारा। भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा॥
अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा। बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा ॥१॥
साँचेहुँ उनके मोह न माया। उदासीन धनु धामु न जाया॥
पर घर घालक लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा ॥२॥
जननिहि बिकल बिलोकि भवानी। बोली जुत बिबेक मृदु बानी॥
अस बिचारि सोचहि मति माता। सो न टरइ जो रचइ बिधाता ॥३॥
करम लिखा जौं बाउर नाहू। तौ कत दोसु लगाइअ काहू॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका। मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका ॥४॥

शब्दार्थ—गिरिनारि=मैना। बौरे = पागल। जाया = स्त्री। घालक= बिगाडने वाला। भीरा=भय, डर। प्रसव=बच्चा जनना। नाहू=पति। अंका= लेख।

भावार्थ — हिमाचल की स्त्री (मैना) को दुःखी देखकर सारी स्त्रिया व्याकुल हो गयी। मैना अपनी कन्या के स्नेह को याद करके विलाप करती, रोती और कहती थी –

मैंने नारद का क्या बिगाडा था, जिन्होने मेरा बसता हुआ घर उजाड दिया और जिन्होने पार्वती को ऐसा उपदेश दिया कि जिससे उसने बावले वर के लिए तप किया।

सचमुच उनके न किसी का मोह है, न माया, न उनके धन है, न घर

है और न स्त्री ही है, वे सबसे उदासीन हैं। इसी से वे दूसरे का घर उजाड़ने वाले हैं। उन्हें न किसी की लाज है, न डर है। भला बाँझ स्त्री प्रसव की पीडा को क्या जाने ?

माता को विकल देखकर पार्वतीजी विवेकयुक्त कोमल वाणी बोलीं—हे माता ! जो विधाता रच देते हैं, वह टलता नही, ऐसा विचार कर तुम सोच मत करो !

जो मेरे भाग्य मे बावला ही पति लिखा है तो किसी को क्यो दोष लगाया जाय ? हे माता ! क्या विधाता के अंक तुमसे मिट सकते हैं ? वृथा कलक का टीका मत लो।

मूल—छं०—जनि लेहु मातु कलंकु करुना परिहरहु अवसर नहीं।
दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरें जाब जहँ पाउब तहीं॥
सुनि उमा बचन बिनीत कोमल सकल अवला सोचहीं।
बहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषन नयन बारि बिमोचहीं॥

भावार्थ—हे माता ! कलंक मत लो, रोना छोडो, यह अवसर विषाद करने का नहीं है। मेरे भाग्य मे जो दुख-सुख लिखा है उसे मैं जहाँ जाऊँगी, वहाँ पाऊँगी ! पार्वतीजी के ऐसे विनय भरे कोमल वचन सुनकर सारी स्त्रियाँ सोच करने लगीं, और भाँति-भाँति से विधाता को दोष देकर आँखो से आँसू बहाने लगीं।

मूल—दो०—तेहि अवसर नारद सहित अरु रिषि सप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिनगिरि गवने तुरत निकेत॥९७॥

भावार्थ — इस समाचार को सुनते ही हिमाचल उसी समय नारदजी और सप्तर्षियो को साथ लेकर अपने घर गए।

शब्दार्थ—तुहिनगिरि=हिमाचल। निकेत=घर।

मूल—चौ०—तब नारद सबही समुझावा। पूरुब कथाप्रसंगु सुनावा॥
मयना सत्य सुनहु मम बानी। जगदंबा तव सुता भवानी॥१॥
अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि॥
जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला बपु धारिनि॥२॥

जनमीं प्रथम दच्छ गृह जाई। नामु सती सुन्दर तनु पाई ॥
तहँहुँ सती संकरहि बिवाहीं। कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं ॥३॥
एक बार आवत सिव संगा। देखेउ रघुकुल कमल पतंगा ॥
भयउ मोहु सिव कहा न कीन्हा। भ्रमबस बेषु सीय कर लीन्हा ॥४॥

छं०—सिय बेषु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं।
हर बिरहँ जाइ बहोरि पितु कें जग्य जोगानल जरीं ॥
अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तपु किया।
अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्बदा संकरप्रिया ॥

दो०—सुनि नारद के बचन तब सब कर मिटा बिषाद।
छन महुँ ब्यापेउ सकल पुर घर-घर यह संबाद ॥९८॥

शब्दार्थ—पूरुब=पूर्व जन्म की। भवानी=भव (शिव) की पत्नी। अजा =अजन्मा। संभव=उत्पत्ति। लय=संहार। लीला वपु=लीला शरीर। पतंगा = सूर्य। ब्यापेउ=फैल गया।

भावार्थ—तदनन्तर नारद जी ने सबको समझाकर पार्वती के पूर्व जन्म की कथा सुनाई। उन्होने कहा—हे मैना ! तुम मेरी बात सच मानो। तुम्हारी पुत्री पार्वती (भवानी) साक्षात् जगज्जननी है।

ये अजन्मा, अनादि और अविनाशिनी शक्ति हैं। सदा शिवजी के अर्द्धांग मे रहती हैं। ये जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाली है और अपनी इच्छा से ही लीला-शरीर धारण करती हैं।

पहले ये दक्ष के घर जाकर जन्मी थी, तब इनका सती नाम था, बहुत सुन्दर शरीर पाया था। वहाँ भी सती शंकरजी से ही ब्याही गई थी। यह कथा सारे जगत् मे प्रसिद्ध है।

एक बार जब ये शिवजी के साथ आ रही थी, तब मार्ग मे इन्होंने रघु-कुल रूपी कमल को खिलाने वाले सूर्य को, अर्थात् रामचन्द्रजी को देखा, तब इन्हें मोह हो गया और इन्होंने शिवजी का कहा न माना और भ्रम-वश (राम की परीक्षा लेने हेतु) सीताजी का रूप धारण कर लिया।

सती जी ने सीता का वेष धारण किया, उसी अपराध के कारण शंकर जी ने उनको त्याग दिया। फिर शिवजी के वियोग में वे अपने पिता के यज्ञ में

जाकर वही योगाग्नि से भस्म हो गयी। अब इन्होंने तुम्हारे घर जन्म लेकर अपने पति के लिए कठिन तप किया है। ऐसा जान कर सन्देह छोड दो, पार्वती जी तो सदा ही शिवजी की प्रिया (अर्द्धाङ्गिनी) हैं।

तब नारद के वचन सुनकर सबका विषाद मिट गया और क्षण भर में यह समाचार सारे नगर में घर-घर फैल गया।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, रूपक और पुनरुक्ति प्रकाश अलकार।

मूल-चौ०—तब मयना हिमवंतु अनंदे। पुनि पुनि पारबती पद बंदे॥
नारि पुरुष सिसु जुबा सयाने। नगर लोग सब अति हरषाने॥१॥
लगे होन पुर मंगलगाना। सजे सबहि हाटक घट नाना॥
भाँति अनेक भई जेवनारा। सूपसास्त्र जस कछु व्यवहारा॥२॥
सो जेवनार कि जाइ बखानी। बसहिं भवन जेहिं मातु भवानी॥
सादर बोले सकल बराती। बिष्नु बिरंचि देव सब जाती॥३॥
बिबिध पाँति बैठी जेवनारा। लागे परुसन निपुन सुआरा॥
नारिबृंद सुर जेवँत जानी। लगीं देन गारीं मृदु बानी॥४॥

छं०—गारी मधुर स्वर देहिं सुन्दरि बिंग्य बचन सुनावहीं।
भोजनु करहिं सुर अति बिलंबु बिनोदु सुनि सचु पावहीं॥
जेवँत जो बढ्यो अनंदु सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यो।
अचवाँइ दीन्हे पान गवने बास जहँ जाको रह्यो॥

दो०—बहुरि मुनिन्ह हिमवंत कहुँ लगन सुनाई आइ।
समय बिलोकि बिबाह कर पठए देव बोलाइ॥९९॥

शब्दार्थ—अनन्दे=आनन्द-मग्न हो गए। जुबा=युवा। हाटक=सोना। घट=घडा, कलश। सूपसास्त्र=पाक-शास्त्र (रसोई बनाने की विद्या)। सुआरा=रसोइये, परोसने वाले। सचु=सुख। बास=निवास-स्थान। अचवाँई = हाथ-मुँह धुलवा कर।

भावार्थ—नारदजी के वचनों को सुनकर मैना और हिमवान् आनन्दित हो गए। उन्होंने पार्वती के चरणों की वन्दना की। नारदजी की बात में नगर के सभी लोगों को — स्त्री, पुरुष, बालक और वृद्ध, सभी को बहुत प्रसन्नता हुई। नगर में मंगलीक गीत गाये जाने लगे और सबने अनेक प्रकार के मंगल-

कलश सजाये। पाक-शास्त्र के नियमो के अनुसार अनेक प्रकार की भोजन-सामग्री तैयार की गई। भला, जिस घर मे माता भवानी रहती हो, वहाँ की भोजन-सामग्री का क्या वर्णन किया जा सकता है ?

हिमवान् ने आदर-पूर्वक सब बरातियो को, विष्णु, ब्रह्मा और सब जाति के देवताओ को बुलवा लिया। भोजन करने वालो की अनेक पक्तियाँ बैठी। चतुर परोसगारे भोजन-सामग्री परोसने लगे। देवताओ के समूह को जीमन करते देखकर स्त्रियो ने कोमल-मधुर वाणी से गालियाँ गाई।

सब सुन्दर स्त्रियाँ मीठे स्वर मे गालियाँ गाने लगी और व्यग्य-विनोद करने लगी। देवताओ ने व्यग्य विनोद सुनकर सुख का अनुभव किया। इसलिए उन्होंने भोजन करने मे चला कर विलम्ब किया—धीरे-धीरे भोजन करते रहे। भोजन करते समय जो उन्हें आनन्द हुआ, वह करोडो मुखो से भी नहीं कहा जा सकता। भोजन कर चुकने पर सबको आचमन करा कर (मुँह-हाथ धुलवा कर) पान के बीडे दिए गए। इसके बाद सब बराती, जो जहाँ ठहरे थे, वहाँ चले गए।

फिर मुनियों ने लौटकर हिमवान् को लगन (लग्नपत्रिका) सुनाई और विवाह का समय देखकर देवताओ को बुला भेजा।

मूल-चौ०—बोलि सकल सुर सादर लीन्हे। सबहि जथोचित आसन दीन्हे॥
बेदी बेद बिधान सँवारी। सुभग सुमंगल गावहि नारी॥१॥
सिघासनु अति दिव्य सुहावा। जाइ न बरनि बिरंचि बनावा॥
बैठे सिव बिप्रन्ह सिरु नाई। हृदयँ सुमिरि निज प्रभु रघुराई॥२॥
बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाईं। करि सिंगारु सखीं लै आईं॥
देखत रूपु सकल सुर मोहे। बरनै छबि अस जग कबि को है॥३॥
जगदंबिका जानि भव भामा। सुरन्ह मनहि मन कीन्ह प्रनामा॥
सुन्दरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी॥४॥
छं०—कोटिहुँ बदन नहि बनै बरनत जगजननि सोभा महा।
सकुचहि कहत श्रुति सेष सारद मंदमति तुलसी कहा॥
छबिखानि मातु भवानि गवनीं मध्य मंडप सिव जहाँ।
अवलोकि सकहि न सकुच पति पद कमल मनु मधुकरु तहाँ॥

शब्दार्थ—विरञ्चि=ब्रह्मा। भव भामा = शिवजी की पत्नी। मधुकर= भौंरा।

भावार्थ—हिमवान् ने सब देवताओं को आदर-पूर्वक बुलवा लिया और सबको बैठने के लिए यथोचित आसन दिए। वैदिक रीति से विवाह की वेदी बनाई गई और स्त्रियाँ सुन्दर और श्रेष्ठ मंगलाचार गाने लगीं।

वेदी पर एक अत्यन्त सुन्दर और दिव्य सिंहासन था, जिसकी सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह सिंहासन स्वयं ब्रह्मा का बनाया हुआ था। ब्राह्मणों को प्रणाम कर तथा अपने स्वामी रामचन्द्र जी का स्मरण करके शिवजी उस सिंहासन पर विराजमान हो गए।

फिर मुनीश्वरों ने पार्वती जी को बुलाया। सखियाँ शृंगार करके उन्हें ले आयीं। पार्वती जी के रूप को देखते ही सब देवता मोहित हो गए। संसार में ऐसा कवि कौन है जो उस सुन्दरता का वर्णन कर सके?

पार्वती जी को जगदम्बा और शिवजी की पत्नी समझ कर देवताओं ने मन-ही-मन प्रणाम किया। भवानीजी सुन्दरता की सीमा हैं। करोड़ों मुखों से भी उनकी शोभा नहीं कही जा सकती।

जगज्जननी पार्वती जी की महान् शोभा का वर्णन करोड़ों मुखों से भी करते नहीं बनता। वेद, शेषजी और सरस्वतीजी तक उसे कहते हुए सकुचा जाते हैं, तब मन्दबुद्धि तुलसी किस गिनती में हैं। सुन्दरता और शोभा की खान माता भवानी मण्डप के बीच में, जहाँ शिवजी थे, वहाँ गईं। संकोच के मारे पति (शिवजी) के चरण-कमलों को देख नहीं सकतीं, परन्तु उनका मन-रूपी भौंरा तो वहीं [रस-पान कर रहा] था। मन पति-चरणों में था और सिर लज्जा के कारण झुका हुआ था।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और रूपक अलंकार।

मूल-दो०—मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि ॥१००॥

भावार्थ—मुनियों की आज्ञा से शिवजी और पार्वतीजी ने गणेशजी का पूजन किया। मन में देवताओं को अनादि समझकर कोई इस बात को सुनकर शंका न करे, [कि गणेशजी तो शिव-पार्वती की सन्तान हैं, अभी विवाह से

पूर्व ही वे कहाँ से आ गए] देवता तो अनादि हैं।

मूल-चौ०--जसि बिबाह कै बिधि श्रुति गाई। महामुनिन्ह सो सब करवाई॥
गहि गिरीस कुस कन्या पानी। भवहि समरपी जानि भवानी॥१॥
पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। हियँ हरषे तब सकल सुरेसा॥
वेदमंत्र मुनिबर उच्चरहीं। जय जय जय संकर सुर करहीं॥२॥
बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। सुमनबृष्टि नभ भै बिधि नाना॥
हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू। सकल भुवन भरि रहा उछाहू॥३॥
दासीं दास तुरग रथ नागा। धेनु बसन मनि बस्तु बिभागा॥
अन्न कनकभाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना॥४॥

छं०--दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो।
का देउँ पूरनकाम संकर चरन पंकज गहि रह्यो॥
सिवँ कृपासागर ससुर कर संतोषु सब भाँतिहिं कियो।
पुनि गहे पद पाथोज मयनाँ प्रेम परिपूरन हियो॥

दो०--नाथ उमा मम प्रान सम गृहकिंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु॥१०१॥

शब्दार्थ--कुस=एक प्रकार का घास। पानी=हाथ। नागा=हाथी। कनक-भाजन=सोने के बर्तन। दाइज=दहेज। पूरन काम=जिसकी इच्छाएँ पूर्ण हो गई हों। पाथोज=कमल। किंकरी=दासी। जाना=यान, गाडी, सवारी।

भावार्थ--वेदों में जो विवाह की रीति बताई गई है उसी के अनुसार महामुनियों ने शिव-पार्वती का विवाह कराया। हिमाचल ने हाथ में कुश ग्रहण कर तथा कन्या का हाथ पकड कर, उसे भवानी (भव की पत्नी) जान कर शिवजी को समर्पित कर दी। जब शिवजी ने पार्वती का पाणिग्रहण किया, तब इन्द्र आदि सब देवता बड़े प्रसन्न हुए। मुनिलोग वेद-मन्त्रोच्चारण करने लगे तथा देवताओं ने शिवजी का जय-जयकार किया। उस समय अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे और आकाश से नाना प्रकार के फूलों की वर्षा हुई। शिव-पार्वती का विवाह हो गया--यह जान कर सारे लोकों में उत्साह की लहर दौड गई। दासी, दास, रथ, घोडे, हाथी, गायें, वस्त्र, मणि आदि अनेक प्रकार की वस्तुएँ, अन्न तथा सोने के बर्तन गाडियाँ भर-भर दहेज में दिये गये, जिनका

वर्णन नही किया जा सकता।

बहुत प्रकार का दहेज देकर फिर हाथ जोडकर हिमाचल ने कहा—हे शंकर! आप पूर्णकाम हैं, मैं आपको क्या दे सकता हूँ? इतना कहकर वे शिवजी के चरण कमल पकड कर रह गये। तब कृपा के सागर शिवजी ने अपने ससुर का सभी प्रकार से समाधान किया। फिर प्रेम से परिपूर्ण हृदय मैनाजी ने शिवजी के चरण कमल पकड़े और कहा—

हे नाथ! यह उमा मुझे मेरे प्राणों के समान प्यारी है। आप इसे अपने घर की दासी बनाइयेगा और इसके सब अपराधो को क्षमा करते रहियेगा। अब प्रसन्न होकर मुझे यही वर दीजिये।

काव्य-सौन्दर्य—सुन्दर पद मैत्री।

मूल—चौ०—बहु बिधि संभु सासु समुझाई। गवनी भवन चरन सिरु नाई॥
जननीं उमा बोलि तब लीन्ही। लै उछंग सुंदर सिख दीन्ही॥१॥
करेहु सदा संकर पद पूजा। नारिधरमु पति देउ न दूजा॥
बचन कहत भरे लोचन बारी। बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी॥२॥
कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं॥
भै अति प्रेम बिकल महतारी। धीरजु कीन्ह कुसमय बिचारी॥३॥
पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रेमु कछु जाइ न बरना॥
सब नारिन्ह मिलि भेटि भवानी। जाइ जननि उर पुनि लपटानी॥४॥

शब्दार्थ—उछंग=गोद। सिख=शिक्षा। देउ=देवता। बारी=जल, आँसू।

भावार्थ—शिवजी ने बहुत तरह से अपनी सास को समझाया। तब वे शिवजी के चरणो मे सिर नवा कर घर चली गयीं। फिर माता ने पार्वती को बुला लिया और गोद मे बैठा कर यह सुन्दर सीख दी—

हे पार्वती! तू सदा शिवजी के चरणों की पूजा करना, नारियो का यही धर्म है। उनके लिये पति ही देवता है और कोई देवता नहीं है। इस प्रकार की बातें कहते-कहते उनकी आँखों मे आँसू भर आये और उन्होंने कन्या को छाती से चिपटा लिया।

माता ने फिर कहा कि विधाता ने जगत् मे स्त्री जाति को क्यों पैदा किया? पराधीन को सपने मे भी सुख नहीं मिलता। यों कहती हुई माता

प्रेम मे अत्यन्त विकल हो गयी, परन्तु कुसमय जानकर (दुःख करने का अवसर न समझ कर) उसने धीरज धरा।

मैना बार-बार मिलती है और पार्वती के चरणो को पकड कर गिर पडती है। दोनो के बीच बडा ही प्रेम है, कुछ वर्णन नही किया जाता। भवानी सब स्त्रियो से मिल-भेंट कर फिर अपनी माता के हृदय से जा लिपटी।

काव्य-सौन्दर्य—मातृ-हृदय की सुन्दर झलक के साथ पुत्री के प्रथम वियोग का बडा ही मार्मिक चित्र अंकित किया गया है।

मूल—छं०—जननिहि बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहूँ दई।
फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब सखीं लै सिव पहिं गई॥
जाचक सकल संतोषि संकरु उमा सहित भवन चले।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निसान नभ बाजे भले॥
दो०—चले संग हिमवंतु तब पहुँचावन अति हेतु।
बिबिध भाँति परितोषु करि बिदा कीन्ह बृषकेतु॥१०२॥

शब्दार्थ—तन=तरफ। पहिं=समीप, पास। जाचक=याचक, भिखारी। अमर=देवता। सुमन=फूल। निसान=नगाडे। बृषकेतु=शिव।

भावार्थ—पार्वती जी माता से मिलकर चली। सब किसी ने उसको उचित आशीर्वाद दिये। पार्वती फिर-फिर कर माता की ओर देखती जाती थी। तब सखियाँ उसे शिवजी के पास ले गयी। महादेव जी सब याचको को सन्तुष्ट कर पार्वती के साथ घर (कैलास) को चले गये। सब देवता प्रसन्न होकर फूलो की वर्षा करने लगे और आकाश मे सुन्दर नगाडे बजाने लगे।

तब अत्यन्त स्नेह के साथ हिमाचल उन्हे पहुँचाने के लिए थोडी दूर साथ गये, किन्तु महादेव जी ने उन्हे अनेक प्रकार से सन्तोष दिला कर विदा किया।

मूल—चौ०—तुरत भवन आए गिरिराई। सकल सैल सर लिए बोलाई।
आदर दान बिनय बहुमाना। सब कर बिदा कीन्ह हिमवाना॥१॥
जबहिं संभु कैलासहिं आए। सुर सब निज निज लोक सिधाए॥
जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहिं सिंगारु न कहउँ बखानी॥२॥

करहिं विविध विधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा॥
हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ॥३॥
तब जनमेउ षटबदन कुमारा। तारकु असुर समर जेहिं मारा॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षन्मुख जन्मु सकल जग जाना॥४॥

शब्दार्थ—सिधाए=चले गये। गनन्ह=गण। नयऊ=नया।

भावार्थ—शिवजी और पार्वती को पहुँचा कर पर्वत राज शीघ्र ही अपने घर लौट आये और उन्होंने तमाम पर्वतों और सरोवरों को बुला कर आदर, दान, विनय और सम्मान के साथ उन्हें विदा कर दिया।

जब शिवजी कैलाश पर पहुँच गये, तब सब देवता अपने अपने लोकों को चले गये। तुलसीदास जी कहते हैं कि पार्वती और शिवजी जगत् के माता पिता हैं, अतः मैं उनके शृंगार का वर्णन नहीं करता।

कैलाश पर्वत पर अपने गणों के साथ रहते हुए शिव-पार्वती विविध प्रकार से भोग-विलास करने लगे। वे नित्य नये विहार करते थे। इस तरह भोग-विलास और विहार करते हुए बहुत समय बीत गया।

तब उनके छः मुख वाले पुत्र स्वामिकार्तिक का जन्म हुआ, जिन्होंने बड़े होने पर युद्ध में तारकासुर को मारा। वेद शास्त्र और पुराणों में स्वामिकार्तिक के जन्म की कथा प्रसिद्ध है और सारा जगत् उसे जानता है।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलंकार।

स्त्री-पुरुष कहेंगे और गायेंगे, वे कल्याण के कार्यों और विवाहादि मङ्गलों में सदा सुख पायेंगे।

तुलसीदास कहते हैं कि गिरिजा-पति शकर का चरित्र समुद्र के समान अपार है, वेद भी उसका पार नहीं पा सकते। मैं तो अत्यन्त मद बुद्धि वाला गवार हूँ, उसका वर्णन कर ही कैसे सकता हूँ।

मूल-चौ०-सभु चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुखु पावा ॥
बहु लालसा कथा पर बाढी। नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढी ॥१॥
प्रेम बिबस मुख आव न बानी। दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी ॥
अहो धन्य तव जन्मु मुनीसा। तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा ॥२॥
सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं ॥
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू ॥३॥
सिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी ॥
पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहि प्रिय भाई ॥४॥
दो०—प्रथमहि मैं कहि सिव चरित बूझा मरमु तुम्हार।
सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त बिकार ॥१०४॥

शब्दार्थ—बाढी=बढ गई। रोमावली ठाढी=रोमाच हो आया। गौरीसा=शिव। रति=प्रेम। विश्वनाथ=महादेव। बूझा=समझ लिया। एहू=यही।

भावार्थ—शिवजी के सरस और सुन्दर चरित्र को सुन कर भरद्वाज मुनि बहुत प्रसन्न हुए। कथा सुनने की उनकी लालसा और भी बढ गई। उनके नेत्रों में जल भर आया और रोमाञ्च खडे हो गये (अत्यधिक प्रेम और भक्ति के कारण)। बहुत अधिक प्रेम उमडने के कारण उनके मुख से वाणी नहीं निकली। उनकी ऐसी दशा देख कर ज्ञानी मुनि याज्ञवल्क्य बहुत प्रसन्न हुए। वे बोले—हे मुनिवर ! अहो ! तुम्हारा जन्म धन्य है, क्योंकि तुम्हें महादेवजी प्राणों के समान प्रिय हैं।

तदनन्तर याज्ञवल्क्य ने कहा कि जिनका प्रेम शिवजी के चरण-कमलों में नहीं है, राम जी वे स्वप्न में भी पसन्द नहीं आते। विश्वनाथ शिव के चरणों में निश्छल प्रेम होना ही राम-भक्ति का लक्षण है। श्रीराम के व्रत को

रखने वाला शिवजी से बढ़ कर और कौन है? राम-भक्ति के व्रत के कारण ही उन्होंने विना कोई पाप किये ही सती जैसी स्त्री को भी त्याग दिया और वे प्रतिज्ञा-पूर्वक राम-भक्ति पर दृढ़ रहे। हे भाई! शिवजी के समान राम को और कौन प्यारा है?

तुम समस्त विकारों से रहित राम के पवित्र सेवक हो। तुम्हारा मर्म समझ कर ही मैंने पहले तुम्हें शिवजी का चरित्र सुनाया है—क्योंकि जो शिव-भक्त नहीं, वह राम-भक्त नहीं हो सकता।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और रूपक अलंकार।

मूल—चौ०—मैं जाना तुम्हार गुन सीला। कहउँ सुनहु अब रघुपति लीला॥
सुनु मुनि आजु समागम तोरें। कहि न जाइ जस सुखु मन मोरें॥१॥
राम चरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा॥
तदपि जथाश्रुत कहउँ बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी॥२॥
सारद दारुनारि सम स्वामी। रामु सूत्रधर अंतरजामी॥
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥३॥
प्रनवउँ सोइ कृपाल रघुनाथा। बरनउँ बिसद तासु गुन गाथा॥
परम रम्य गिरिबरु कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू॥४॥
दो०—सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किंनर मुनिबृन्द।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सिव सुखकन्द॥१०५॥

शब्दार्थ—समागम=भेंट। अहीसा=शेषनाग। जथाश्रुत=जैसा सुना वैसा। धनुपानी=राम। दारुनारि=कठपुतली। सूत्रधार=इच्छानुसार नचाने वाला। अजिर=आँगन। बानी=सरस्वती। सुकृती=पुण्यात्मा। अन्तरजामी=घट घट की जानने वाले।

भावार्थ—याज्ञवल्क्य ऋषि भरद्वाज मुनि से कह रहे हैं — मैं तुम्हारे गुण और शील से भले प्रकार परिचित हो गया हूँ। अब मैं तुम्हें श्रीराम की लीला कहता हूँ। हे मुनि! सुनो, आज तुम से भेंट कर जो आनन्द मुझे हुआ है वह कहा नहीं जा सकता। हे मुनीश! श्रीराम के चरित्र का कहीं ओर-छोर नहीं है, वह अपार है। सौ करोड़ शेषनाग भी उसका वर्णन नहीं कर सकते। फिर भी, जैसा मैंने सुना है, वैसा वाणीपति ब्रह्मा तथा धनुष्पाणि राम का स्मरण करके कहता हूँ।

हे मुनिवर ! सरस्वतीजी कठपुतली के समान हैं और अन्तर्यामी स्वामी श्रीरामचन्द्रजी सूत पकडकर कठपुतली को नचाने वाले सूत्रधार है। अपना भक्त जानकर जिस कवि पर वे कृपा करते हैं, उसके हृदय रूपी आगन मे सरस्वती को वे नचाया करते हैं।

उन्ही कृपालु श्री रघुनाथजी को मैं प्रणाम करता हूँ और उन्ही के निर्मल गुणो की कथा कहता हूँ। कैलास पर्वतो मे श्रेष्ठ और बहुत ही रमणीय है, जहाँ शिव-पार्वती जी सदा निवास करते हैं।

सिद्ध, तपस्वी, योगीगण देवता, किन्नर और मुनियो के समूह उस पर्वत पर रहते हैं। वे सब बडे पुण्यात्मा है और आनन्दकन्द श्री महादेव जी की सेवा करते हैं।

काव्य-सौन्दर्य — अनुप्रास, उपमा से पुष्ट रूपक और निरग रूपक अलकार

मूल-चौ०—हरि हर विमुख धर्म रति नाहीं। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाहीं॥
तेहि गिरि पर वट विटप बिसाला। नित नूतन सुन्दर सब काला॥१॥
त्रिविध समीर सुसीतलि छाया। शिव विश्राम विटप श्रुति गाया॥
एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। तरु बिलोकि उर अति सुख भयऊ॥२॥
निज कर डासि नागरिपु छाला। बैठे सहजहिं सभु कृपाला॥
कुन्द इन्दु दर गौर सरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा॥३॥
तरुन अरुन अंबुज सम चरना। नख दुति भगत हृदय तम हरना॥
भुजंग भूति भूषन त्रिपुरारी। आननु सरद चद छवि हारी॥४॥
दो०—जटा मुकुट सुरसरित सिर लोचन नलिन बिसाल।
नीलकंठ लावन्यनिधि सोह बालबिधु भाल॥१०६॥

शब्दार्थ—विटप=वृक्ष। तर=नीचे। डासि=बिछाकर। नाग-रिपु=हाथी। शत्रु, सिंह। छाला=छाल, चमडा। नाग रिपु-छाला=बाघम्बर। कुन्द=सफेद छोटे कुन्द के फूल। इन्दु=चन्द्रमा। दर=शख। प्रलम्ब=लंबी। परिधान=वस्त्र। मुनिचीरा=मुनियो के पहनने के वस्त्र (वल्कल)। तरुन=पूर्ण रूप से खिले हुए। भगत=भक्त। अबुज=कमल। भुजग=साप। भूति=राख। आननु=मुख। सुर-सरिता=गगा। नलिन = कमल। लावण्य-निधि = सौन्दर्य-सागर। बाल बिधु=

द्वितीया का चन्द्रमा। नील कंठ=शिवजी।

भावार्थ—याज्ञवल्क्य भरद्वाज से कह रहे हैं—जो विष्णु और महादेव से विमुख हैं तथा जिनकी धर्म मे प्रीति नही है, वे मनुष्य स्वप्न मे भी वहाँ नही जा सकते। उसी पहाड अर्थात् कैलास पर एक बहुत बडा बड का पेड है जो सब ऋतुओ मे नित्य नवीन और सुन्दर रहता है।

वहाँ तीन प्रकार की वायु (शीतल, मंद, सुगन्वित) सदा वहती रहती है। वेदो का ऐसा कथन है कि वह बड का पेड शिवजी का विश्राम करने या समाधि लगाने का वृक्ष है। एक बार शिवजी उस वृक्ष के नीचे गये और उसे देख कर उनके हृदय मे बडा सुख हुआ।

अपने हाथ मे बाघबर बिछाकर कृपालु शिवजी स्वभाव से ही (बिना किसी खास प्रयोजन के) वहाँ बैठ गये। कुन्द के पुष्प, चन्द्रमा और शख के समान उनका गौर शरीर था। बडी लम्बी भुजाएँ थी और वे मुनियो के से (वल्कल) वस्त्र धारण किये हुए थे।

उनके चरण नये (पूर्ण रूप से खिले हुए) लाल कमल के समान थे, नखों की ज्योति भक्तो के हृदय का अन्धकार हरने वाली थी। साँप और भस्म ही उनके आभूषण थे और उन त्रिपुरासुर के शत्रु शिवजी का मुख शरद् पूर्णिमा के चन्द्रमा की शोभा को भी हरने वाला (फीकी करने वाला) था।

उनके सिर पर जटाओ का मुकुट और गङ्गाजी शोभायमान थी। उनके कमल के समान बडे-बडे नेत्र थे। उनका नील कण्ठ था और वे सुन्दरता के भडार थे। उनके मस्तक पर द्वितीया का चन्द्रमा शोभित हो रहा था।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, उपमा, व्यतिरेक अलकार।

मल–चौ०–बैठे सोह कामरिपु कैसें। धरें सरीरु सातरसु जैसें॥
पारवती भल अवसरु जानी। गई संभु पहिं मातु भवानी॥१॥
जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। वाम भाग आसनु हर दीन्हा॥
बैठीं सिव समीप हरपाई। पूरुब जन्म कथा चित आई॥२॥
पति हियँ हेतु अधिक अनुमानी। बिहसि उमा बोलीं प्रिय बानी॥
कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैलकुमारी॥३॥

विस्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा विदित तुम्हारी ॥
चर अरु अचर नाग नरदेवा। सकल करहिं पद पकज सेवा ॥४॥

दो०-प्रभु समरथ सर्बग्य सिव सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान बैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम ॥१०७॥

शब्दार्थ—काम रिपु=शिव। वाम भाग=बायी ओर। सैलकुमारी=पार्वती। विश्वनाथ=ससार के स्वामी शिव। पुरारी=त्रिपुरासुर का वध करने वाले। प्रनत=शरणागत। विदित जानी हुई।

भावार्थ—उस बड के वृक्ष के नीचे बैठे हुए शिवजी ऐसे शोभित हो रहे थे मानो शान्त रस ही शरीर धारण करके बैठा हो। पार्वती ने इस अवसर को उपयुक्त समझा और वे शिवजी के पास आईं। शंकर ने पार्वती को अपनी प्यारी पत्नी जान कर उसका बहुत आदर-सत्कार किया और उसे अपनी बायी ओर बैठने को स्थान दिया। पार्वती प्रसन्न होकर शिवजी के समीप बैठ गई और उसको उस समय अपने पिछले जन्म की कथा स्मरण हो आई।

स्वामी के हृदय मे अपने ऊपर पहले की अपेक्षा अधिक प्रेम समझ कर पार्वतीजी हँस कर प्रिय वचन बोली। याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि जो कथा सब लोगो का हित करने वाली है, उसे ही पार्वतीजी शिवजी से पूछना चाहती है।

पार्वतीजी ने कहा—हे ससार के स्वामी! हे मेरे नाथ! हे त्रिपुरासुर का वध करने वाले! आपकी महिमा तीनो लोको मे विख्यात है। चर, अचर नाग, मनुष्य और देवता सभी आपके चरण कमलो की सेवा करते हैं।

हे प्रभो! आप समर्थ, सर्वज्ञ और कल्याणस्वरूप हैं। सब कलाओ और गुणो के निधान हैं और योग, ज्ञान तथा वैराग्य के भडार है। आपका नाम शरणागतो के लिये कल्प वृक्ष है।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, उदाहरण, रूपक और लाटानुप्रास अलंकार।

मूल-चौ०-जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी। जानिअ सत्य मोहि निज दासी ॥
तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना ॥१॥

जासु भवनु सुरतर तर होई। सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई॥
ससिभूषण अस हृदयँ बिचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी॥२॥
प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी॥
सेस सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना॥३॥
तुम्ह पुनि राम रार दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥
रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलख गति कोई॥४॥

दो०—जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरी॥१०८॥

शब्दार्थ—जनित=उत्पन्न। ससि-भूषन=शिव। परमारथवादी=ब्रह्मज्ञानी। अनँग-आराती=कामदेव के शत्रु (शिव)। अज=अजन्मा। तनय=पुत्र। भोरि=भोली।

भावार्थ—पार्वती शिव से कह रही है—हे सुख-राशि! यदि मुझ पर आप प्रसन्न हैं और सचमुच मुझे आप अपनी दासी समझते हैं, तो हे प्रभो! मुझे आप अनेक प्रकार से श्रीरामचन्द्रजी की कथा कह कर मेरा अज्ञान दूर कीजिये। जिसका घर कल्प वृक्ष के नीचे हो, वह भला दरिद्रता से उत्पन्न दुःख क्यों सहे? हे चन्द्रमा को आभूषण बनाने वाले! हे नाथ! हृदय में ऐसा विचार कर आप मेरी बुद्धि के इस बड़े भारी भ्रम को दूर कीजिए।

हे प्रभो! जो परमार्थ तत्व को जानने वाले मुनि लोग हैं, वे राम को अनादि ब्रह्म कहते हैं तथा शेषजी, सरस्वती, वेद और पुराण सब राम के गुण गाते हैं।

मूल-चौ०—जौं अनीह व्यापक बिभु कोऊ । कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ ॥
अग्य जानि रिस उर जनि धरहू । जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू ॥१॥
मैं बन दीखि राम प्रभुताई । अति भय बिकल न तुम्हहि सुनाई ॥
तदपि मलिन मन बोधु न आवा । सो फलु भली भाँति हम पावा ॥२॥
अजहूँ कछु संसउ मन मोरें । करहु कृपा बिनवउँ कर जोरें ॥
प्रभु तब मोहि बहु भाँति प्रबोधा । नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा ॥३॥
तब कर अस बिमोह अब नाहीं । रामकथा पर रुचि मन माहीं ॥
कहहु पुनीत राम गुन गाथा । भुजगराज भूषन सुरनाथा ॥४॥
दो०—बंदउँ पद धरि धरनि सिरु बिनय करउँ कर जोरि ।
बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धात निचोरि ॥१०९॥

शब्दार्थ—अनीह=इच्छा-रहित । बुझाइ=समझा कर । विमोह=अज्ञान । भुजगराज-भूषण=शिव । धरनि=पृथ्वी ।

भावार्थ—पार्वती शिव से कह रही है—हे नाथ ! यदि इच्छा-रहित सर्व-व्यापक ब्रह्म कोई और है तो हे स्वामी ! मुझे समझा कर कहिए । मुझे ज्ञान-रहित समझ कर मुझ पर क्रोध न करिए । जिस किसी भी प्रकार मेरा अज्ञान (भ्रम) दूर हो, आप वही कीजिए । मैंने अपने पिछले जन्म मे वन मे श्रीराम की प्रभुता देखी थी, मैंने भय के मारे आपको वह वात नही कही, छिपाली, परन्तु मेरे मलिन मन को उस समय वोध नही हुआ और मुझे उसका फल भी मिल गया । मैं आपके द्वारा मन से त्याग दी गई) ।

किन्तु अब भी इस सम्बन्ध मे मेरे मन में कुछ सन्देह बना हुआ है । आप कृपा कीजिए । मैं हाथ जोडकर आपसे प्रार्थना करती हूँ । हे नाथ ! आप मुझे भली भाँति समझा चुके हैं, फिर भी मैं नही समझ सकी—ऐसा समझ कर आप मुझ पर क्रोध न करें । पहले जितना अज्ञान अब मुझ मे नही है, अब तो मेरे मन मे राम-कथा सुनने की रुचि है ! हे सर्पराज-भूषणधारी ! हे देवताओ के स्वामी ! अब आप मुझे पवित्र राम-गुण-गाथा सुनाइए ।

मैं पृथ्वी पर सिर रख कर आपके चरणो की बदना करती हूँ और हाथ जोड कर विनती करती हूँ कि आप वेदो के सिद्धान्त को निचोड कर श्रीराम का निर्मल यश वर्णन कीजिए ।

मूल-चौ०—जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन क्रम वचन तुम्हारी॥
गूढउ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥१॥
अति आरति पूछउँ सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन वपु धारी॥२॥
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु जथा जानकी बिबाहीं। राज तजा सो दूषन काहीं॥३॥
बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा॥
राज बैठि कीन्हीं बहु लीला। सकल कहहु नाथ संकर सुखसीला॥४॥

दो०—बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम॥११०॥

शब्दार्थ—जोषिता=योषिता, स्त्री। आरत=दुखी। सुर-राया=देवताओं के स्वामी। दाया=दया। वपु=शरीर।

भावार्थ—पार्वती शिवजी से कह रही है कि हे नाथ! यद्यपि स्त्री होने के कारण मैं उसे सुनने की अधिकारिणी नहीं हूँ, तथापि मैं मन, वचन कर्म से आपकी दासी हूँ। संत लोग जहाँ आर्त अधिकारी पाते हैं, वहाँ गूढ़ तत्त्व भी उससे नहीं छिपाते।

हे देवताओं के स्वामी! मैं बहुत ही आर्तभाव (दीनता) से पूछती हूँ, आप मुझ पर दया करके श्रीरघुनाथजी की कथा कहिये। पहले तो वह कारण विचार कर बतलाइये जिससे निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण करता है।

फिर हे प्रभु! श्रीरामचन्द्रजी के अवतार (जन्म) की कथा कहिये, तथा उनका उदार बालचरित कहिये। फिर जिस प्रकार उन्होंने श्रीजानकीजी से विवाह किया, वह कथा और फिर यह बतलाइये कि उन्होंने जो राज्य छोड़ा सो किस दोष से।

हे नाथ! फिर उन्होंने वन में रह कर जो अपार चरित्र किये तथा जिस तरह रावण को मारा, वह कहिये। हे सुखस्वरूप शंकर! फिर आप उन सारी लीलाओं को कहिये जो उन्होंने राज्य सिंहासन पर बैठकर की थी।

हे दया के धाम! फिर आप मुझे उनका वह अद्भुत चरित्र सुनाइए जो श्रीराम ने किया। फिर यह बतलाइए कि रघुकुल-शिरोमणि राम अपनी

प्रजा के सहित किस प्रकार अपने धाम को गये।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और लाटानुप्रास अलंकार।

मूल-चौ०-पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी। जेहि बिग्यान मगन मुनि ग्यानी॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा॥१॥
औरउ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका॥
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल राखहु जनि गोई॥२॥
तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना। आन जीव पाँवर का जाना॥
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई॥३॥
हर हियँ रामचरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाये॥
श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानन्द अमित सुख पावा॥४॥
दो०-मगन ध्यानरस दंड जुग पुनि बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥१११॥

शब्दार्थ—गोई=छिपाकर। पाँवर=नीच। दंड जुग=दो घड़ी तक।

भावार्थ—पार्वती शिवजी से कह रही है—हे प्रभो! फिर आप मुझे उस तत्त्व को समझाइए जिसका विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर ज्ञानी मुनि सदा मग्न रहते हैं। फिर भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य का उनकी शाखा-उपशाखाओं सहित वर्णन कीजिए।

[इसके सिवा] श्रीरामचन्द्रजी के और भी जो अनेक रहस्य (छिपे हुए भाव अथवा चरित्र) हैं, उनको कहिये। हे नाथ! आपका ज्ञान अत्यन्त निर्मल है। हे प्रभो! जो बात मैंने न भी पूछी हो, हे दयालु! उसे भी आप छिपा न रखियेगा, मुझे कह डालिये।

वेदों ने आपको तीनों लोकों का गुरु कहा है। दूसरे पामर जीव इस रहस्य को क्या जानें। पार्वतीजी के सहज सुन्दर और छल रहित (सरल) प्रश्न सुनकर शिवजी के मन को बहुत अच्छे लगे।

उस समय श्री महादेवजी के हृदय में सारे रामचरित्र आ गये। प्रेम के मारे उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में जल भर आया। श्रीरघुनाथजी का रूप उनके हृदय में प्रकट हो गया, जिससे स्वयं परमानन्द स्वरूप शिवजी ने भी अपार सुख पाया।

श्रीराम के ध्यान के आनन्द मे शिवजी दो घड़ी तक डूबे रहे, फिर उन्होंने मनको वाह्य समार की ओर खींचा। इसके वाद शिवजी प्रसन्न होकर श्रीराम का चरित्र वर्णन करने लगे।

मूल—चौ०—झूठेउ सत्य जाहि विनु जानें। जिमि भुजंग विनु रजु पहिचानें॥
जेहि जानें जग जाइ हेराई। जागें जथा सपन भ्रम जाई॥१॥
वदउँ वालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥
मंगल भवन अमगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर विहारी॥२॥
करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी॥
धन्य धन्य गिरिराज कुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥३॥
पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गगा॥
तुम्ह रघुवीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी॥४॥

दो०—राम कृपा तें पारवति सपनेहुँ तव मन माहिं।
सोक मोह संदेह भ्रम मम विचार कछु नाहिं॥११२॥

शब्दार्थ—रज्जु=रस्सी। हेराई=लोप हो जाता है, छूट जाता है। द्रवउ=कृपा करें, प्रसन्न हो। अजिर=आँगन। भुजग=साँप।

भावार्थ—(अब यहाँ से शिवजी पार्वती को समझाते) हे प्रिये! जिसके विना जाने झूंठ भी सत्य प्रतीत होता है, जैसे विना पहचाने रस्सी मे सर्प का भ्रम हो जाता है और जिसके जान लेने पर ससार इस तरह लोप हो जाता है जैसे जागने पर स्वप्न का भ्रम छूट जाता है।

मैं उन्हीं श्रीरामचन्द्रजी के वालरूप की वन्दना करता हूँ जिनका नाम जपने से सब सिद्धियाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं। मङ्गल के धाम, अमङ्गल के हरने वाले और श्री दशरथजी के आँगन मे खेलने वाले (वालरूप) श्रीरामचन्द्रजी मुझ पर कृपा करें।

तदनन्तर त्रिपुर राक्षस का वध करने वाले शंकर ने श्रीराम को प्रणाम किया और फिर प्रसन्न होकर अमृत के समान मीठी वाणी मे कहा—हे गिरिराज कुमारी पार्वती! तुम धन्य हो, धन्य हो। तुम्हारे समान कोई भी उपकारी नहीं है। तुमने श्रीराम की कथा का जो प्रसंग पूछा है, वह समस्त लोकों तथा ससार को पवित्र कर देने वाली गगा के समान है। तुम श्रीराम

के चरणों में प्रेम रखने वाली हो, इसी से तुमने संसार के हित के लिए ऐसे प्रश्न पूछे हैं।

हे पार्वती ! मेरे विचार मे तो श्रीरामजी की कृपा से तुम्हारे मनमे स्वप्न मे भी शोक, मोह, सन्देह और भ्रम कुछ भी नही है।

काव्य-सौन्दर्य अनुप्रास, उदाहरण, लाटानुप्रास, उपमा, वीप्सा और रूपक अलंकार।

चौ०—तदपि असंका कीन्हिहु सोई। कहत सुनत सब कर हित होई ॥
जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहिभवन समाना ॥१॥
नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा ॥
ते सिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला ॥२॥
जिन्ह हरिभगति हृदय नहिं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी ॥
जो नहिं करइ राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना ॥३॥
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती ॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज बिमोहनसीला ॥४॥
दो०—रामकथा सुरधेनु सम सेवत सब सुख दानि।
संतसमाज सुरलोक सब को न सुनै अस जानि ॥११३॥

शब्दार्थ—असंका=शंका। श्रवन रन्ध्र=कानो के छेद। अहि-भवन=बाँबी, साँप का बिल। समतूला=समान, तुल्य। सव=शव, मुर्दा। जीह=जीभ। दादुर=मेढक। सुरहित=देवताओ का हित करने वाली। सुरधेनु=कामधेनु गाय। दनुज=राक्षस।

भावार्थ—शिवजी पार्वती से कह रहे हैं—हे प्रिये ! तुमने फिर भी वही पुरानी शंका इसलिए की है कि इस प्रसग के कहने-सुनने से सबका कल्याण होगा। जिन्होंने अपने कानो से भगवान् की कथा नहीं सुनी, उनके कानो के छेद साँप के बिल के समान हैं। अपने नेत्रो से जिन्होंने संतों के दर्शन नही किये, उनके नेत्र मोर-पंखों के ऊपर अंकित नकली नेत्र हैं। वे सिर जो हरि और गुरु के चरणों मे नहीं झुके, कड़वी तूँबी के समान हैं।

जिन्होंने भगवान् की भक्ति को अपने हृदय में स्थान नही दिया, वे प्राणी जीते हुए ही मुर्दे के समान हैं। जो जीभ श्रीरामचन्द्रजी के गुणों का

का गान नही करती, वह मेढक की जीभ के समान है।

वह हृदय वज्र के समान कड़ा और निष्ठुर है जो भगवान् के चरित्र सुन कर हर्षित नही होता। हे पार्वती! श्रीरामचन्द्रजी की लीला सुनो, यह देवताओं का कल्याण करने वाली और दैत्यों को विशेष रूप से मोहित करने वाली है।

श्रीरामचन्द्रजी की कथा कामधेनु के समान सेवा करने से सब सुखों को देने वाली है और सत्पुरुषों के समाज ही सब देवताओं के लोक हैं, ऐसा जान कर इसे कौन न सुनेगा!

काव्य-सौन्दर्य—उपमा, लाटानुप्रास और रूपक अलंकार।

मूल-चौ०-राम कथा सुन्दर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनिहारी॥
राम कथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी॥१॥
राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए॥
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना॥२॥
तदपि जथा श्रुत जसि मति मोरी। कहिहउँ देखि प्रीति अति तोरी॥
उमा प्रस्न तव सहज सुहाई। सुखद संतसंमत मोहि भाई॥३॥
एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोह बस कहेहु भवानी॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥४॥
दो०-कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच॥११४॥

शब्दार्थ—करतारी=हाथ की तालो। बिहग=पक्षी। बिटप=वृक्ष। तुम्हारी=तुम्हारी। जथाश्रुत=जैसा सुना है। सोहानी=अच्छी लगी। आना=अन्य, दूसरा।

तरह उनकी कथा, कीर्ति और गुण भी अनन्त है।

तो भी तुम्हारी अत्यन्त प्रीति देखकर, जैसे कुछ मैंने सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है, उसीके अनुसार मैं कहूँगा। हे पार्वती! तुम्हारा प्रश्न स्वाभाविक ही सुन्दर, सुखदायक और सतसम्मत है और मुझे तो बहुत ही अच्छा लगा है।

परन्तु हे पार्वती! एक बात मुझे अच्छी नही लगी, यद्यपि वह तुमने मोह के वश हो कर ही कही है। तुमने जो कहा कि वे राम कोई और है, जिन्हें वेद गाते और मुनिजन जिनका ध्यान धरते हैं—

ऐसा तो वे लोग कहते हैं जो मोह रूपी पिशाच के द्वारा ग्रस्त है, पाखडी हैं, भगवान् के चरो से विमुख हैं और जो झूठ-सच कुछ भी नही समझते है अर्थात् महा मूर्ख है।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, परम्परित रूपक अलकार।

मू०—चौ०—अग्य अकोविद अंध अभागी। काई विषय मुकुर मन लागी॥
लपट कपटी कुटिल बिसेषी। सपनेहुँ संतसभा नहिं देखी॥१॥
कहहिं ते बेद असमत बानी। जिन्ह कें सूझ लाभु नहिं हानी॥
मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना॥२॥
जिन्ह कें अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहिं कल्पित बचन अनेका॥
हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहि कहत कछु अघटित नाहीं॥३॥
बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना॥४॥

शब्दार्थ—अकोविद=मूर्ख, जो पडित न हो। मुकुर=दर्पण। लम्पट=व्यभिचारी। जल्पहिं=बकते हैं। कल्पित=मनगढन्त। अघटित=असंभव। बातुल=वायुरोग-ग्रस्त।

भावार्थ—शिवजी पार्वती से कह रहे हैं—

जो लोग अज्ञानी, मूर्ख, अन्धे और भाग्यहीन हैं और जिनके मनरूपी दर्पण पर विषय रूपी काई जमी हुई है, जो व्यभिचारी, छली और बडे कुटिल हैं और जिन्होने कभी स्वप्न मे भी सत-समाज के दर्शन नही किये जिन्हे अपनी लाभ-हानि का खयाल नही, वे ही ऐसी वेद-विरुद्ध बातें कहते हैं। जिनका

हृदय रूपी दर्पण मैल से ढका हुआ है और जो नेत्रो से हीन हैं, वे वेचारे राम के रूप-स्वरूप को कैसे देख-समझ सकते हैं ?

जिनको निर्गुण-सगुण कुछ भी विवेक नही है, जो अनेक मनगढ़त बातें बका करते हैं, जो श्रीहरि की माया के वश मे हो कर जगत् मे (जन्म-मृत्यु के चक्र मे) भ्रमते फिरते हैं, उनके लिये कुछ भी कह डालना असम्भव नही है।

जिन्हे वायुका रोग (सन्निपात, उन्माद आदि) हो गया हो, जो भूत के वश हो गये हैं और जो नशे मे चूर हैं, ऐसे लोग विचार कर वचन नही बोलते। जिन्होंने महामोह रूपी मदिरा पी रक्खी है, उनके कहने पर कान नही देना चाहिये

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, रूपक और लाटानुप्रास अलंकार।

मूल-सो०-अस निज हृदयँ विचारि तजु संसय भजु राम पद।
सुनु गिरिराज कुमारि भ्रम तम रबि कर बचन मम ॥११५॥

भावार्थ—अपने हृदय में ऐसा विचार कर सन्देह छोड दो और श्रीराम-चन्द्रजी के चरणो को भजो। हे पार्वती ! भ्रमरूपी अन्धकार के नाश करने के लिये सूर्य की किरणो के समान मेरे वचनों को सुनो !

काव्य-सौन्दर्य—परम्परित रूपक 'भ्रम तम रवि कर बचन मम' मे।

मूल-चौ० सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥१॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहि जैसें॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा ॥२॥
राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहि तहँ मोह निसा लवलेसा॥
सहज प्रकासरूप भगवाना। नहि तहँ पुनि बिग्यान बिहाना ॥३॥
हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना ॥४॥
दो०-पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रकट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ ॥११६॥

शब्दार्थ—अगुनहि=निर्गुण मे। बुध=बुद्धिमान। अरूप=निराकार। अलख=अव्यक्त। हिम-उपल=ओले (जो आकाश से वर्षा के समय गिरते है)। पतगा=सूर्य। दिनेसा=सूर्य। विहाना=प्रात काल। अहमिति=अहभाव। परेस=परमात्मा। पुराना=पुराण पुरुष। परावर नाथ=संसार के स्वामी।

भावार्थ—शिवजी पार्वती को समझा रहे है—शिवजी कहते है कि ईश्वर के दोनो रूपो मे—

(सगुण और निर्गुण मे) कुछ भी भेद नही है—मुनि, पुराण, पण्डित और वेद सभी ऐसा कहते हैं। जो निर्गुण, अरूप (निराकार), अलख (अव्यक्त) और अजन्मा है, वही भक्तो के प्रेमवश सगुण हो जाता है।

जो निर्गुण है वही सगुण कैसे हो है? जैसे जल और ओले मे भेद नही। (दोनो जल ही हैं, ऐसे ही निर्गुण और सगुण एक ही हैं।) जिसका नाम भ्रमरूपी अन्धकार के मिटाने के लिये सूर्य है। उसके लिये मोह का प्रसग भी कैसे कहा जा सकता है?

राम तो सत् चित् और आनन्द के स्वरूप हैं, सूर्य हैं, वहाँ मोह रूपी रात्रि का लवलेश भी नही है। वे निसर्गत प्रकाश-स्वरूप हैं, और वे छ ऐश्वर्यो से युक्त हैं। जब वे स्वय प्रकाश-स्वरूप हैं, तब वहाँ ज्ञान रूपी प्रात -काल के होने का प्रश्न ही नही उठता।

हे प्रिये! हर्ष शोक, ज्ञान, अज्ञान, अहभाव और अभिमान ये सब जीव के धर्म हैं। श्रीराम तो व्यापक ब्रह्म है, परमानन्द-स्वरूप हैं, परात्पर परमात्मा है और पुराण पुरुष हैं, इस बात को सारा ससार जानता है।

जो पुराण पुरुष हैं, प्रसिद्ध है, सब रूपो मे प्रकट हैं, जीव, माया और जगत् सबके स्वामी हैं, वे ही रघुकुल मणि श्रीरामचन्द्र जी मेरे स्वामी हैं ऐसा कह कर शिवजी ने उनको मस्तक नवाया।

काव्य-सौन्दर्य—उदाहरण अलकार।

मूल-चौ०—निज भ्रम नहि समुझहि अग्यानी। प्रभु पर मोह धरहि जड़ प्रानी॥
जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहि कुबिचारी॥१॥
चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएँ॥
उमा राम बिषइक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा॥२॥

विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥३॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥४॥
दो०—रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानु कर वारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि॥११७॥

शब्दार्थ—घन-पटल=बादलों का समूह। झाँपेउ=ढक लिया। चितव=देखते हैं। जुगल=दो। सोहा=दिखाई देना। करन=करण, इन्द्रिय। रजत=चाँदी। भास=प्रतीत होना। कर=किरण। मृषा=झूठा, असत्य।

भावार्थ—शिवजी पार्वती को समझा रहे है। वे कहते हैं कि अज्ञानी पुरुष स्वयं अपनी भूल नहीं देखते, किन्तु वे भगवान् पर मोह का आरोप करते हैं। आकाश मे बादलों के समूह मे सूर्य के ढक जाने पर कुविचारी अर्थात् अज्ञानी ऐसा कहते हैं कि सूर्य अस्त हो गया, किंतु उनका ऐसा कहना गलत है।

जो मनुष्य अपनी आँख के आगे अंगुली रख कर देखता है, उसके लिए तो प्रत्यक्ष ही दो चन्द्रमा दिखाई देते हैं, हे उमे! श्रीरामचन्द्र जी के विषय मे इस प्रकार मोह की कल्पना करना ऐसा ही है जैसा यह सोचना कि आकाश मे अंधकार, धुआँ और धूल भरी है। वास्तव मे आकाश निर्मल और निर्लेप है, वहाँ धूल और धुआँ का क्या काम? इसी प्रकार राम भी नित्य, निर्मल और निर्लेप हैं, वहाँ मोह का क्या काम?

विषय, इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के देवता और जीव—ये सब एक से एक सचेत हैं अर्थात् विषयो का प्रकाश इन्द्रियो से, इन्द्रियो का इन्द्रियो के देवताओ से और इन्द्रिय देवताओ का चेतन जीवात्मा से प्रकाश होता है। किन्तु इन सब का जो परम-प्रकाश है, वह अनादि ब्रह्म अयोध्यापति श्रीराम हैं। (सब को प्रकाश राम से ही प्राप्त होता है)।

यह जगत् तो प्रकाशित होने वाला है और राम इसके प्रकाशक हैं। वे माया के स्वामी तथा ज्ञान और गुण के धाम हैं जिनकी सत्यता या सत्ता से मोह के कारण यह जड माया भी सत्य सी प्रतीत होती है।

जैसे सीप मे चांदी की और सूर्य की किरणो मे पानी की (बिना हुए भी) प्रतीति होती है। यद्यपि यह प्रतीति तीनो कालो मे झूठ है, तथापि इस भ्रम को कोई हटा नही सकता।

मूल–चौ०–एहि विधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥
जौं सपनें सिर काटै कोई। बिनु जागें न दूरि दुख होई॥१॥
जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥२॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥३॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥४॥
दो०–जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहि मुनि ध्यान॥
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥११८॥

शब्दार्थ—अहई=है। आनन=मुख। बकता=वक्ता (बोलने वाला)। परस=स्पर्श करना। घ्रान=नाक। जाहि=जिसका।

भावार्थ—शिव पार्वती को समझा रहे है—इस प्रकार यह सारा ससार भगवान् के आश्रित रहता है। यद्यपि यह ससार असत्य है और यह दु ख देने वाला है, किन्तु यह दु ख उस समय तक ही रहता है जब तक कि भगवान् की कृपा से भ्रम दूर नही होता। स्वप्न मे जिस प्रकार सिर काटे जाने पर दु ख होता है, किन्तु जागते ही वह दु ख दूर हो जाता है। हे पार्वती! जिनकी कृपा से यह भ्रम दूर हो जाता है, वे कृपालु राम ही हैं, जिनका आदि और अन्त आज तक किसी ने नही पाया। वेदो ने भी जिनके सम्बन्ध मे अपनी बुद्धि के अनुसार इस प्रकार गाया है—

वह (ब्रह्म) बिना ही पैर के चलता है, बिना कान के सुनता है, बिना हाथ के नाना प्रकार के काम करता है, बिना मुँह (जिह्वा) के ही सारे (छहो) रसो का आनन्द लेता है और बिना ही वाणी के बहुत योग्य वक्ता है।

वह बिना ही शरीर (त्वचा) के स्पर्श करता है, बिना ही आखो के देखता

है और बिना ही नाक के सब गन्धों को ग्रहण करता है (सूँघता है)। उस ब्रह्म की करनी सभी प्रकार से ऐसी अलौकिक है कि जिसकी महिमा कही नहीं जा सकती।

जिसका वेद और पण्डित इस प्रकार वर्णन करते हैं और मुनि जिसका ध्यान धरते हैं, वही दशरथ नन्दन, भक्तों के हितकारी, अयोध्या के स्वामी भगवान् श्रीरामचन्द्र जी हैं।

काव्य-सौंदर्य—उदाहरण एवं विभावना अलकार।

चौ०—कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुवर सब उर अंतरजामी॥१॥
बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥२॥
राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अबिहित तव बानी॥
अस संसय आनत उर माहीं। ग्यान बिराग सकल गुन जाहीं॥३॥
सुनि सिव के भ्रम भंजन बचना। मिटि गै सब कुतरक कै रचना॥
भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती। दारुन असंभावना बीती॥४॥
दो०—पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि जोरि पंकरुह पानि।
बोलीं गिरिजा बचन बर मनहुँ प्रेम रस सानि॥११९॥

शब्दार्थ—बिबसहुँ=बिना इच्छा के। अघ=पाप। दहहीं=जल जाते हैं बारिध=समुद्र। गोपद=गाय के खुर जितना गड्ढा। अबिहित=अनुचित। आनत=लाते ही। जाहीं=नष्ट हो जाते हैं। कुतरक कै रचना=वृथा वाद-विवाद करना। दारुन=कठिन। पंकरुह पानि=कमल के समान हाथ।

भावार्थ—शिव पार्वती से कह रहे हैं—हे पार्वती! काशी में मैं मरते प्राणी को राम-नाम का मंत्र देकर शोक रहित अर्थात् मुक्त कर देता हूँ। जिनके नाम का प्रताप ऐसा है, वे ही मेरे प्रभु चराचर के स्वामी और सबके हृदय के भीतर की जानने वाले श्रीराम हैं।

विवश होकर (बिना इच्छा के) भी जिनका नाम लेने से मनुष्यों के अनेक जन्मों के किए हुए पाप जल जाते हैं। फिर जो मनुष्य आदर पूर्वक उनका स्मरण करते हैं, वे तो संसार रूपी दुस्तर समुद्र को गाय के खुर से बने

f

हुए गड्ढे के समान (अर्थात् विना किसी परिश्रम के) पार कर जाते हैं।

हे भवानी ! राम ऐसे परमात्मा हैं, उनमे मोह-वश तुम्हारा भ्रम करना अनुचित है। इस प्रकार के भ्रम के मन मे उत्पन्न होते ही मनुष्य के सब ज्ञान, वैराग्य आदि सद्गुण नष्ट हो जाते हैं।

शिवजी के भ्रम मिटाने वाले वचनों को सुन कर पार्वती के सारे कुतर्क नष्ट हो गये। राम के चरणो मे उनका प्रेम और विश्वास हो गया और उनकी कठिनता मे दूर होने वाली मिथ्या कल्पना (भ्रांति) जाती रही।

पार्वती ने वार-वार अपने स्वामी शिवजी के चरण-कमलो को पकड कर तथा अपने कमल के समान हाथ जोड कर प्रेम-रस मे सने हुए वचन कहे—

काव्य-सौन्दर्य—लाटानुप्रास, रूपक, उपमा और उदाहरण अलकार।

चौ०—ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी॥
तुम्ह कृपाल सबु ससउ हरेऊ। राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ॥१॥
नाथ कृपाँ अब गयउ विषादा। सुखी भयउँ प्रभु चरन प्रसादा॥
अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड़ नारि अयानी॥२॥
प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। जौं मो पर प्रसन्न प्रभु अहहू॥
राम ब्रह्म चिनमय अविनासी। सर्ब रहित सब उर पुर वासी॥३॥
नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु वृषकेतू॥
उमा वचन सुनि परम विनीता। रामकथा पर प्रीति पुनीता॥४॥

शब्दार्थ—ससिकर=चन्द्रमा की किरण। सरदातप=शरद ऋतु की धूप का ताप। किंकरी=दासी। अयानी=मूर्खा, ज्ञान-हीन। अहहू=हैं। चिनमय =ज्ञान स्वरूप। वृषकेतू=शिव।

भावार्थ—जब शिवजी के समझाने से पार्वती को राम के विषय मे पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया, तब वह शिवजी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट कर रही है। वह कहती है—हे स्वामी ! आपकी चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल वाणी सुन कर मेरा अज्ञान रूपी शरदातप (ताप) मिट गया है। हे कृपालु ! आपने मेरा सब सन्देह दूर कर दिया, अब मुझे राम का यथार्थ स्वरूप ज्ञात हो गया। हे नाथ ! अब आपकी कृपा से मेरा सारा विषाद जाता

रहा। मैं आपके चरणों की कृपा से सुखी हो गई। यद्यपि मैं स्वभाव से ही ज्ञानहीन मूर्ख नारी हूँ, तथापि अब आप मुझे अपनी दासी समझ कर, हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो जो बात मैंने सर्व-प्रथम आप से पूछी थी, वह बताइए। राम ब्रह्म हैं, ज्ञान-स्वरूप हैं और नाश-रहित हैं और वे सबसे रहित हैं, वे सबकी हृदय रूपी नगरी मे निवास करने वाले हैं—ये सब सत्य होते हुए भी हे नाथ! उन्होंने नर-तन किस कारण से धारण किया? हे धर्म की ध्वजा को धारण करने वाले प्रभो! यह बात आप मुझे समझा कर कहिए। इस प्रकार पार्वती के परम विनीत वचनो को सुन कर तथा पवित्र राम-कथा पर उसका प्रेम देख कर

दो०—हियँ हरषे कामारि तब संकर सहज सुजान।
बहु बिधि उमहि प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान ॥१२०(क)॥

भावार्थ—तब कामदेव के शत्रु, स्वभावतः ही सुजान, कृपानिधान शिवजी मन मे बहुत ही हर्षित हुए और अनेक प्रकार से पार्वती की बड़ाई करके फिर बोले—

सो०—सुनु सुभ कथा भवानि रामचरितमानस बिमल।
कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहग-नायक गरुड़ ॥१२०(ख)॥

भावार्थ—हे पार्वती! निर्मल रामचरित मानस की वह मङ्गलमयी कथा सुनो जिसे काकभुशुण्डि ने विस्तार से कहा और पक्षियो के राजा गरुड़जी ने सुना था।

सो संबाद उदार, जेहि बिधि भा आगें कहब।
सुनहु राम अवतार, चरित परम सुंदर अनघ ॥१२०(ग)॥

भावार्थ—वह श्रेष्ठ संवाद जिस प्रकार हुआ, वह मैं आगे कहूँगा अभी तुम श्रीरामचन्द्र जी के अवतार का परम सुन्दर और पवित्र पापनाशक चरित्र सुनो—

हरि गुन नाम अपार कथा रूप अगनित अमित॥
मैं निज मति अनुसार कहउँ उमा सादर सुनहु ॥१२०(घ)॥

भावार्थ—श्रीहरि के गुण, नाम, कथा और रूप सभी अपार, अगणित और असीम हैं, फिर भी हे पार्वती! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता।

तुम आदर पूर्णक सुनो ।

चौ०—सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए । विपुल बिसद निगमागम गाए ।
हरि अवतार हेतु जेहि होई । इदमित्थं कहि जाइ न सोई ॥१॥
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी । मत हमार अस सुनहि सयानी ।
तदपि संत मुनि बेद पुराना । जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना ॥२॥
तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही । समुझि परइ जस कारन मोही ॥
जब जब होइ धरम कै हानी । बाढहिं असुर अधम अभिमानी ॥३॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी । सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥४॥
दो०—असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु ॥१२१॥

शब्दार्थ—इतमित्यम्=बस ऐसा ही । स्वमति=अपनी बुद्धि । सीदहिं=कष्ट पाते हैं । थापहि=स्थापित करते हैं । श्रुतिसेतु=वेदो की मर्यादा ।

भावार्थ—शिव पार्वती को यहाँ से राम-जन्म के कारण बता रहे हैं—

हे पार्वती ! सुनो, वेद-शास्त्रो ने श्रीहरि के सुन्दर, विस्तृत और निर्मल चरित्रो का गान किया है । हरि का अवतार जिस कारण से होता है, वह कारण 'बस यही है' ऐसा नही कहा जा सकता (अनेको कारण हो सकते हैं और ऐसे भी हो सकते है जिन्हे कोई जान ही नही सकता) ।

हे सयानी ! सुनो, हमारा मत तो यह है कि राम बुद्धि, मन और तर्क से परे हैं । तथापि संत, मुनि, वेद और पुराण—अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा कुछ कहते हैं, और जैसा कुछ मेरी समझ मे आता है, हे सुमुखि ! वही कारण मैं तुमको सुनाता हूँ, जब-जब धर्म का ह्रास होता है और नीच अभिमानी राक्षस बढ जाते है और वे ऐसा अन्याय करते हैं, कि जिसका वर्णन नही हो सकता तथा ब्राह्मण, गौ, देवता और पृथ्वी कष्ट पाते है, तब-तब वे कृपानिधान प्रभु भाँति-भाँति के (दिव्य) शरीर धारण कर सज्जनो की पीडा हरते हैं ।

भगवान् असुरो को मार कर देवताओ की स्थापना करते हैं और अपने

वदो की मर्यादा की रक्षा करते हैं और ससार मे अपना निर्मल यश फैलाते हैं—राम-जन्म का एक कारण तो यही है।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश अलकार।

चौ०—सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥
राम जनम के हेतु अनेका। परम विचित्र एक तें एका॥१॥
जनम एक दुइ कहउँ बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी॥
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥२॥
बिप्र श्राप तें दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई।
कनककसिपु अरु हाटकलोचन। जगत विदित सुरपति मद मोचन॥३॥
बिजई समर बीर बिख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा॥४॥

दो०—भए निसाचर जाइ तेइ महावीर बलवान।
कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान॥१२२॥

शब्दार्थ—भव=ससार। कालक कसिपु=हिरण्यकशिपू (भक्त प्रहलाद के पिता)। हाटक लोचन=हिरण्याक्ष. हिरण्यकशिपु का यमज भाई जिसको विष्णु ने वराह का अवतार लेकर मारा था)। निपाता=मारा। नरहरि=नृसिह। सुभट=योद्धा।

भावार्थ—शिव पार्वती से कह रहे है—हे पार्वती! जन्म लेकर राम जगत् मे जो यश फैलाते हैं, उसी यश को गा-गा कर भक्त लोग ससार रूपी सागर से तिर जाते है। कृपा के समुद्र भगवान् भक्तो के हित के लिए शरीर धारण करते है। राम के जन्म लेने के अनेक कारण हैं जो एक से एक बढ कर और विचित्र हैं।

हे सुन्दर बुद्धिवाली भवानी! तुम सावधान होकर सुनो। मैं उनके दो-एक जन्मो का विस्तार मे वर्णन करूँगा।

विष्णु भगवान् के जय और विजय नाम के दो प्रिय द्वारपाल थे जिनके बारे मे हर एक जानता है।

उन दोनो भाइयो ने ब्राह्मण (सनकादि) के शाप मे असुरो का तामसी शरीर पाया। एक का नाम था हिरण्यकशिपु और दूसरे का हिरण्याक्ष। ये

देवराज इन्द्र के गर्व को छुडाने वाले सारे जगत् मे प्रसिद्ध हुए।

वे युद्ध मे विजय पाने वाले विख्यात वीर थे। इनमे से एक (हिरण्याक्ष) को भगवान् ने वराह (सूअर) का शरीर धारण करके मारा, फिर दूसरे (हिरण्यकशिपु) का नरसिंह रूप धारण करके वध किया और अपने भक्त प्रह्लाद का सुन्दर यश फैलाया।

वे दोनो मर कर पुन देवताओ को जीतने वाले बडे बलवान् और वीर राक्षस थे, जिन्हें सारा जगत् जानता है।

मूल–चौ०-मुकुत न भए हुते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना॥
एक वार तिन्ह के हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥१॥
कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या विख्याता॥
एक कलप एहि विधि अवतारा। चरित पवित्र किए ससारा॥२॥
एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर सन सब हारे॥
सभु कीन्ह सग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा॥३॥
परम सती असुराधिप नारी। तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी॥४॥

दो०—छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह॥१२३॥

शब्दार्थ—मुकुत=मुक्त। हुते=मारे जाने पर। प्रवाना=प्रमाण। जलन्धर=एक राक्षस जिससे सब देवता युद्ध मे हार गए थे। भगवान ने छल से उसकी पतिव्रता पत्नी वृन्दा को पर-पुरुष का स्पर्श कराकर सतीपन नष्ट कर दिया। तब जलन्धर शिवजी के हाथ से मारा गया। वृन्दा ने भगवान् को शाप को दिया कि वे स्त्री के वियोग मे दुखी होगे और उसका पति उनकी स्त्री हर ले जायेगा। दनुज=राक्षस। असुराधिप=दैत्यराज। टारेउ=भंग किया।

भावार्थ– शिव पार्वती को राम के अवतार लेने के कारण बता रहे हैं। शिव कहते हैं कि वे दोनो (हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु) भगवान के हाथ से मारे जाने पर भी मुक्त नही हुए, क्योंकि ब्राह्मण के वचन का प्रमाण तीन जन्म के लिए था (उन्हे तीन बार राक्षस बनने का शाप दिया

गया था। अतः एक बार भगवान् को उनके कल्याण के लिए शरीर धारण करना पड़ा।)

वहाँ (उस अवतार में) कश्यप और अदिति उनके माता-पिता हुए, जो दशरथ और कौशल्या के नाम से प्रसिद्ध थे। एक कल्प में इस प्रकार अवतार लेकर उन्होंने संसार में पवित्र लीलाएँ की।

एक कल्प में देवताओं को दुखी देख कर क्योंकि वे सब जलन्धर दैत्य से युद्ध में हार गये थे, यहाँ तक कि शिवजी ने भी उससे घोर युद्ध किया, फिर भी वह महाबली दैत्य नहीं मारा गया। उस दैत्य के न मारे जाने का कारण उसकी पत्नी वृन्दा थी—वह परम सती थी, इस कारण त्रिपुर राक्षस का विनाश करने वाले शंकर भी उस दैत्य को नहीं जीत सके। ऐसी स्थिति में भगवान ने छल से उसकी स्त्री का व्रत भङ्ग कर देवताओं का काम किया। जब उस स्त्री ने यह भेद जाना, तब उसने क्रोध करके भगवान् को शाप दिया।

मूल-चौ०—तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना॥
तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ॥१॥
एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नर देहा॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेरी॥२॥
नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कल्प एक तेहि लगि अवतारा॥
गिरिजा चकित भई सुनि बानी। नारद बिष्नुभगत पुनि ग्यानी॥३॥
कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी॥४॥

दो०—बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहिं छन होइ॥१२४(क)॥

दो०—कहउँ राम गुन गाथ भरद्वाज सादर सुनहु।
भव भंजन रघुनाथ भजु तुलसी तजि मान मद॥१२४॥(ख)॥

शब्दार्थ—प्रमाना दीन्ह=प्रमाण मान लिया (स्वीकार कर लिया)। हति=मार कर। एहा=यह। रमापति=लक्ष्मीपति भगवान्। तस=वैसा।

भावार्थ—शिवजी पार्वती को राम-जन्म के कारण बता रहे हैं—जलन्धर की पत्नी वृन्दा ने भगवान् को जो शाप दिया, उसे उन्होंने स्वीकार

कर लिया, क्योंकि वे कौतुक के खजाने और कृपालु हैं। वही जलन्धर (राक्षस) शिवजी के हाथ से मर रावण हुआ, जिसे युद्ध में मार कर रामचन्द्रजी ने परम पद (मोक्ष) दिया।

एक जन्म का कारण यह था, जिससे श्रीरामचन्द्रजी ने मनुष्य देह धारण किया।—हे भरद्वाज मुनि! सुनो, प्रभु के प्रत्येक अवतार की कथा का कवियों ने नाना प्रकार से वर्णन किया है।

एक बार नारदजी ने शाप दिया, अतः एक कल्प में उसके लिये अवतार हुआ। यह बात सुन कर पार्वती बड़ी चकित हुईं और बोलीं कि नारद जी तो विष्णु भक्त और ज्ञानी हैं।

मुनि ने भगवान् को शाप किस कारण से दिया? लक्ष्मीपति भगवान् ने उनका क्या अपराध किया था? हे पुरारि (शङ्करजी!) यह कथा मुझसे कहिए। मुनि नारद के मन में मोह होना बड़े आश्चर्य की बात है।

तब शिवजी ने हँस कर कहा—न कोई ज्ञानी है और न मूर्ख। राम जब जिसको जैसा करते हैं, उस समय वह वैसा ही बन जाता है।

याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज मुनि से कहा—हे भरद्वाज! मैं श्रीराम के गुणों की कथा कहता हूँ, तुम आदर-पूर्वक सुनो। तुलसीदास कहते हैं कि मान और मद को त्याग कर श्रीरघुनाथ को भजो, क्योंकि वे ही संसार के आवागमन को मिटाने वाले हैं।

चौ०—हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि॥
आश्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवरिषि मन अति भावा॥१॥
निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा॥
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी॥२॥
मुनि गति देखि सुरेस डेराना। कामहि बोलि कीन्ह सनमाना॥
सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हियँ जलचरकेतू॥३॥
सुनासीर मन महुँ असि त्रासा। चहत देवरिषि मम पुर बासा॥
जे कामी लोलुप जग माहीं। कुटिल काक इव सबहि डेराहीं॥४॥
दो०—सूख हाड़ लै भाग सठ स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जान जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज॥१२५॥

शब्दार्थ—गुहा=गुफा। सुरसरी=[illegible]। [illegible]। [illegible]

गई। जलचर-केतु=कामदेव। नुनासीर=इन्द्र। तिमि=उस प्रकार।

भावार्थ—याज्ञवल्क्य भरद्वाज से कह रहे हैं—हिमालय पर्वत मे एक अत्यन्त पवित्र गुफा थी, उसके समीप ही सुन्दर गगा बहती थी। वह स्थान एक परम पवित्र आश्रम था, जिसे देख कर नारदजी का मन लुभा गया।

पर्वत, नदी और वन के सुन्दर विभागो को देख कर नारदजी का प्रेम भगवान् के चरणो मे लग गया। भगवान् का स्मरण करते ही नारद मुनि का शाप छूट गया (यह शाप प्रजापति द्वारा दिया गया था कि वे अधिक समय तक एक जगह न रुक सकेंगे, सदा घूमते रहेंगे) और उनके स्वाभाविक निर्मल मन मे भगवत्प्रेम उत्पन्न होने के कारण उनकी समाधि लग गई।

नारदजी की यह तपोमयी दशा देखकर इन्द्र डर गया। उसने कामदेव को बुलाकर उसका आदर-सत्कार किया और कहा—तुम अपने सहायको को साथ लेकर मेरे काम के लिए नारद मुनि के पास जाओ। यह सुन और मनमे प्रसन्न होकर मीनध्वज कामदेव वहाँ से चल दिया।

इन्द्र के मन यह भय उत्पन्न हो गया कि नारद मेरी पुरी अमरावती का वास (राज्य) चाहता है। संसार मे जो कामी और लोभी होते हैं, वे कुटिल कौए की तरह सबसे डरते हैं।

जैसे मूर्ख कुत्ता सिंह को देखकर सूखी हड्डी लेकर भागे और वह मूर्ख यह समझे कि कहीं उस हड्डी को सिंह छीन न ले, वैसे ही इन्द्र को [नारदजी मेरा राज्य छीन लेंगे, ऐसा सोचते] लाज नहीं आयी।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और उदाहरण अलकार।

चौ०—तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ। निज मायाँ बसंत निरमयऊ॥
कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा॥१॥
चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। काम कृसानु बढ़ावनि हारी॥
रंभादिक सुरनारि नवीना। सकल असमसर कला प्रवीना॥२॥
करहिं गान बहु तान तरंगा। बहुबिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा॥
देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना॥३॥
काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी। निज भयँ डरेउ मनोभव पापी॥
सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥४॥

दो०—सहित सहाय सभीत अति मानि हारि मन मैन।
गहेसि आइ मुनि चरन तब कहि सुठि आरत बैन॥१२६॥

शब्दार्थ—मदन=कामदेव। निरमयउ=रचा। कुसुमित=फूलो से लदे। विटप=वृक्ष। कूजहि=कूकती है। बयारी=हवा। कृशानु=अग्नि। सुरनारि=अप्सरा, देवागना। अममसर-कला=कामकला। पानि=हाथ। पतगा=गेंद। प्रपंच=मायाजाल। मनोभव=कामदेव। सीम=सीमा, मर्यादा। चांपि=दवाना। मैन=कामदेव। गहेसि=पकड लिये। सुठि=सुन्दर। आरत बैन=दीन वचन।

भावार्थ—जब कामदेव उस आश्रम मे गया, तब उसने अपनी माया से वहाँ वसन्त-ऋतु को उत्पन्न किया। तरह-तरह के वृक्षो पर रग-विरगे फूल खिल गये, उन पर कोयलें कूकने लगी और भौरे गु जार करने लगे।

कामाग्नि को भडकाने वाली तीन प्रकार की (शीतल, मन्द और सुगध) सुहावनी हवा चलने लगी। रम्भा आदि नवयुवती देवाङ्गनाएँ, जो सबकी-सब कामकला में निपुण थी, वे बहुत प्रकार की तानो की तरङ्ग के साथ गाने लगी और हाथ मे गेंद लेकर नाना प्रकार के खेल खेलने लगी। कामदेव अपने इन सहायको को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और फिर उसने नाना प्रकार के मायाजाल किये।

परन्तु कामदेव की कोई भी कला मुनि पर असर न कर सकी। तब तो पापी कामदेव अपने ही [नाश के] भय से डर गया। लक्ष्मीपति भगवान् जिसके बडे रक्षक हो, भला उसकी सीमा (मर्यादा) को कोई दबा सकता है।

तदनन्तर अपने सहायको सहित कामदेव मन मे अत्यन्त डरता हुआ और मन मे अपनी हार मान कर उसने जाकर नारदजी के चरण पकड लिये और सुन्दर दीन वाणी से कहा।

काव्य-सौन्दर्य—सुन्दर पद-मैत्री।

मूल-चौ०—भयउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय वचन काम परितोषा॥
नाइ चरन सिरु आयसु पाई। गयउ मदन तब सहित सहाई॥१॥
मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुरपति सभाँ जाइ सब बरनी॥
सुनि सब कें मन अचरजु आवा। मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिरु नावा॥२॥
तब नारद गवने सिव पाहीं। जिता काम अहमिति मन माहीं॥
मार चरित संकरहि सुनाए। अति प्रिय जानि महेस सिखाए॥३॥

बार बार बिनवउँ मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोही॥
तिमि जनि हरिहि सुनायहु कबहूँ। चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ॥४॥
दो०—संभु दीन्ह उपदेस हित नहिं नारदहि सोहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान॥१२७॥

हरषि मिले उठि रमानिकेता। बैठे आसन रिषिहि समेता।।
बोले बिहसि चराचर राया। बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया।।३।।
काम चरित नारद सब भाषे। जद्यपि प्रथम बरजि सिवँ राखे।।
अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया।।४।।
दो०—रूख बदन करि बचन मृदु बोले श्रीभगवान।
तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं मोह मार मद मान।।४।।

शब्दार्थ—बिरंचि=ब्रह्मा। श्रुतिमाथा=वेदों के मस्तक स्वरूप (मूर्तिमान् वेदान्त तत्व)। राया=राजा, स्वामी। जाया=पैदा हुआ। बदन=मुख। जेहि=जिसको।

भावार्थ—राम जो करना चाहता है, वही होता है। संसार में ऐसा कोई नहीं है जो उनकी इच्छा के विरुद्ध चले या कुछ करे। शिवजी ने यद्यपि नारदजी को हित की बात कही थी, तथापि वह नारदजी के चित्त पर नहीं चढ़ी। तब नारदजी वहाँ से ब्रह्मलोक को चल दिये।

एक बार गान विद्या में निपुण मुनिनाथ नारदजी हाथ में सुन्दर वीणा लिये, हरिगुण गाते हुए क्षीरसागर को गये, जहाँ वेदों के मस्तकस्वरूप (मूर्तिमान् वेदान्ततत्व) लक्ष्मी निवास भगवान् नारायण रहते हैं।

नारदजी को आता देख रमा निवास भगवान् उठ खड़े हुए और बड़े आनन्द से उनसे मिल कर उनको आसन पर बिठा स्वयं बैठ गये। तब चराचर के स्वामी भगवान् ने हँस कर कहा—हे मुनि! आज तो बहुत दिनों बाद आपने कृपा की है। यद्यपि शिवजी ने उन्हें पहले ही मना कर दिया था कि वे श्रीहरि के सामने कामदेव-सम्बन्धी चर्चा न करें, तथापि नारदजी ने कामदेव की सारी करतूत भगवान् को कह सुनाई। भगवान की माया बड़ी प्रबल है। जगत् में ऐसा कौन पैदा हुआ है जिसे वह मोहित न कर सके।

भगवान् ने रूखा मुँह करके कोमल वचन कहे—हे मुनिराज! आपका स्मरण करने से दूसरों के मोह, काम, मद और अभिमान मिट जाते हैं फिर आपके लिये तो कहना ही क्या?

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलंकार।

चौ०—सुनु मुनि मोह होइ मन ताकें। ग्यान विराग हृदय नहिं जाके॥
ब्रह्मचरज ब्रत रत मतिधीरा। तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा॥१॥
नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना॥
करुनानिधि मन दीख विचारी। उर अंकुरेउ गरब तरु भारी॥२॥
बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी। पन हमार सेवक हितकारी॥
मुनि कर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करवि मैं सोई॥३॥
तब नारद हरि पद सिर नाई। चले हृदयँ अहमिति अधिकाई॥
श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी॥४॥

दो०—बिरचेउ मग महुँ नगर तेहिं सत जोजन विस्तार।
श्रीनिवासपुर तें अधिक रचना विविध प्रकार॥१२९॥

शब्दार्थ—मनोभव=कामदेव। अहमिति=अभिमान। जोजन=योजन (चार कोस या आठ मील का प्रमाण)।

भावार्थ—नारायण नारद जी से कह रहे हैं—हे मुनि! सुनिए, मोह तो उसके मन में होता है जिसके हृदय में न तो ज्ञान होता और न वैराग्य। आप तो ब्रह्मचर्यव्रत में लीन हैं तथा धैर्यवान् हैं। भला आपको कामदेव कैसे सता सकता है? यह सुन कर नारदजी ने अभिमान के साथ कहा—भगवन्! यह सब आपकी कृपा का ही फल है। करुणानिधान भगवान् ने मन में विचार कर देखा कि इनके मन में गर्व के भारी वृक्ष का अंकुर पैदा हो गया है। इसलिए मैं इसे तुरन्त ही उखाड़ फेंकूंगा। क्योंकि अपने भक्तों का हित करना हमारा प्रण है। मैं अवश्य ही वह उपाय करूंगा जिससे मुनि का तो हित होगा ही, साथ ही मेरे लिए भी एक खेल होगा।

इसके बाद नारदजी श्रीहरि के चरणों में सिर झुका कर चले गये। उस समय नारदजी के मन में अभिमान और भी बढ़ा हुआ था। तब भगवान् ने अपनी माया को प्रेरित किया। अब तुम उस माया की कठिन करतूत सुनो—

उस (हरिमाया) ने रास्ते में सौ योजन (चार सौ कोस) का एक नगर रचा। उस नगर की भाँति-भाँति की रचनाएँ लक्ष्मी निवास भगवान् विष्णु के नगर (वैकुण्ठ) से भी अधिक सुन्दर थीं।

चौ०—बसहिं नगर सुंदर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनुधारी॥
तेहिं पुर बसइ सीलनिधि राजा। अगनित हय गय सेन समाजा॥१॥
सत सुरेस सम बिभव बिलासा। रूप तेज बल नीति निवासा॥
बिस्वमोहनी तासु कुमारी। श्री बिमोह जिसु रूपु निहारी॥२॥
सोइ हरिमाया सब गुनखानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी॥
करइ स्वयबर सो नृपबाला। आए तहँ अगनित महिपाला॥३॥
मुनि कौतुकी नगर तेहिं गयऊ। पुरबासिन्ह सब पूछत भयऊ॥
सुनि सब चरित भूप गृहँ आए। करि पूजा नृप मुनि बैठाए॥४॥
दो०—आनि देखाई नारदहि भूपति राजकुमारि।
कहहु नाथ गुन दोष सब एहि के हृदयँ बिचारि॥१३०॥

शब्दार्थ—मनसिज=कामदेव। हय=घोडा। गय=हाथी। बिमोह=मोहित हो जाय। आनि=लाकर।

भावार्थ—जो नारदजी के मार्ग मे माया द्वारा रचा गया था, उस नगर मे ऐसे सुन्दर नर-नारी बसते थे मानो बहुत से कामदेव और उसकी स्त्री रति ही मनुष्य शरीर धारण किए हुए हो। उस नगर मे शीलनिधि नाम का राजा रहता था, जिसके यहाँ असख्य घोडे, हाथी और सेना के समूह (टुकडियाँ) थे।

उसका वैभव और विलास सौ इन्द्रो के समान था। वह रूप, तेज, बल और नीति का घर था। उसके विश्वमोहिनी नाम की एक ऐसी रूपवती कन्या थी, जिसके रूप को देख कर लक्ष्मीजी भी मोहित हो जायँ।

वह सब गुणो की खान भगवान् की माया ही थी। उसकी शोभा का वर्णन कैसे किया जा सकता है। वह राजकुमारी स्वयवर करना चाहती थी, इससे वहाँ अगणित राजा आये हुए थे।

खिलवाडी मुनि नारदजी उसी नगर मे गये और नगरवासियो से उन्होंने सब हाल पूछा। सब समाचार सुनकर वे राजा के महल मे आये। राजा ने पूजा करके मुनि को आसन पर बैठाया।

फिर राजा ने राजकुमारी को बुला कर नारदजी को दिखाया और पूछा कि हे नाथ! अपने हृदय मे विचार कर इस लड़की के गुण दोष बताइए।

चौ०—देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी ॥
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। हृदयँ हरष नहिं प्रगट बखाने ॥१॥
जो एहि बरइ अमर सोइ होई। समरभूमि तेहि जीत न कोई ॥
सेवहिं सकल चराचर ताही। बरइ सीलनिधि कन्या जाही ॥२॥
लच्छन सब बिचारि उर राखे। कछुक बनाई भूप सन भाषे ॥
सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं। नारद चले सोच मन माहीं ॥३॥
करौं जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी ॥
जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला ॥४॥
दो०—एहि अवसर चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल।
जो बिलोकि रीझै कुअँरि तब मेलै जयमाल ॥१३१॥

शब्दार्थ—बिरति=वैराग्य। बरइ=ब्याहेगा। बरै=विवाह करे। मेलै=गले में डाले, पहनाये। कवन बिधि=किस प्रकार से। बाला=कन्या।

भावार्थ—नारद मुनि विश्वमोहिनी के रूप को देख कर अपना वैराग्य भूल गये और बहुत देर तक उसको देखते ही रहे। उसके लक्षणों को देखकर वे आत्म-सुधि खो बैठे। वे हृदय में बड़े प्रसन्न हुए, परन्तु प्रगट में उन्होंने कुछ न कहा। लक्षणों के बारे में विचार कर वे अपने मन में इस तरह कहने लगे कि जो इसके साथ विवाह करेगा, वह अमर हो जायगा और रण-भूमि में उसे कोई भी पराजित न कर सकेगा। जिस किसी को यह शीलनिधि की कन्या ब्याहेगी, चर-अचर सब उसकी सेवा करेंगे।

विश्वमोहिनी के सब लक्षणों को विचार कर नारदजी ने अपने हृदय में रख लिया और अपनी ओर से बना कर कुछ लक्षण राजा से कह दिये। उन्होंने राजा से कहा—तुम्हारी कन्या अच्छे लक्षणों वाली है। ऐसा कह कर नारदजी चले गये, परन्तु मन में यह सोचते हुए कि मैं जाकर सोच-विचार कर अब वही उपाय करूँ जिससे यह कन्या मुझे ही वरे। इस समय जप तप कुछ भी न हो सकेगा। उन्होंने अपने मन में कहा—'हे विधाता! मुझे यह कन्या किस तरह मिले?'

इस अवसर पर तो अनूठी शोभा और रूप चाहिए, जिन्हें देख कर राजकुमारी रीझ जाय और गले में जयमाला डाल दे।

चौ०—हरि सन मागौं सुंदरताई। होइहि जात गहरु अति भाई॥
मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ॥१॥
बहुबिधि विनय कीन्हि तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला॥
प्रभु विलोकि मुनि नयन जुड़ाने। होइहि काजु हिएँ हरषाने॥२॥
अति आरति कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई॥
आपन रूप देहु प्रभु मोही। आन भाँति नहिं पावौं ओही॥३॥
जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो वेगि दास मैं तोरा॥
निज माया बल देखि बिसाला। हियँ हँसि बोले दीनदयाला॥४॥
दो०—जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥१३२॥

शब्दार्थ—गहरु=देर, विलम्ब। जुड़ाने=शीतल हो गये। आरति=दीन। ओही=उसको। मोरा=मेरा। करब=करेंगे। मृषा=असत्य।

भावार्थ—नारदजी विश्वमोहिनी को प्राप्त करने के उपाय पर विचार कर रहे हैं—

एक काम करूँ कि भगवान् से सुन्दरता माँगू, पर भाई! उनके पास जाने में तो बहुत देर हो जावेगी। किन्तु श्रीहरि के समान मेरा कोई दूसरा हितू भी नहीं है, इसलिये इस समय वे ही मेरी सहायता कर सकेंगे।

उस समय नारदजी ने भगवान् की बहुत प्रकार से विनती की। तब लीलामय कृपालु प्रभु वहीं प्रकट हो गये। स्वामी को देखकर नारदजी के नेत्र शीतल हो गये और वे मन में बड़े ही हर्षित हुए कि अब तो काम बन ही जायगा।

नारदजी ने बहुत आर्त होकर सब कथा कह सुनायी और प्रार्थना की कि कृपा कीजिये और कृपा करके मेरे सहायक बनिये। हे प्रभो! आप अपना रूप मुझको दीजिये मैं और किसी प्रकार से उस (राजकन्या) को नहीं पा सकता।

हे नाथ! जिस तरह मेरा हित हो, आप वही शीघ्र कीजिये। मैं आपका दास हूँ। अपनी माया का विशाल बल देख दीनदयालु भगवान् मन-ही मन हँसकर बोले—

हे नारदजी ! सुनो, जिस प्रकार आपका परम हित होगा, हम वही करेंगे, दूसरा कुछ नहीं । हमारा वचन असत्य नहीं होता ।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलंकार ।

चौ०-कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी । बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ॥
एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ । कहि अस अन्तरहित प्रभु भयऊ ॥१॥
माया बिबस भए मुनि मूढ़ा । समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा ॥
गवने तुरत तहाँ रिषिराई । जहाँ स्वयबर भूमि बनाई ॥२॥
निज निज आसन बैठे राजा । बहु बनाव करि सहित समाजा ॥
मुनि मन हरष रूप अति मोरें । मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरें ॥३॥
मुनि हित कारन कृपानिधाना । दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना ॥
सो चरित्र लखि काहुँ न पावा । नारद जानि सबहिं सिर नावा ॥४॥
दो०-रहे तहाँ दुइ रुद्र गन ते जानहिं सब भेउ ।
बिप्रबेष देखत फिरहिं परम कौतुकी तेउ ॥१३३॥

शब्दार्थ—माँग=माँगे । रुज=रोग बीमारी। ठयउ=करने की ठानि है । अन्तरहित=गायब । निगूढ़ा=अस्पष्ट । भेउ=भेद ।

भावार्थ—भगवान् श्रीहरि नारदजी से कह रहे हैं—हे योगी मुनि ! सुनिए । रोग से व्याकुल रोगी यदि कुपथ्य माँगे तो वैद्य उसे नहीं देता । इसी प्रकार मैंने भी तुम्हारा हित करने की ठान ली है—ऐसा कह कर भगवान अन्तर्धान हो गये ।

भगवान् की माया के वशीभूत हुए मुनि ऐसे मूढ़ हो गये कि वे भगवान की गूढ़ (अस्पष्ट) वाणी को भी न समझ सके । ऋषिराज नारदजी तुरन्त वहाँ गये जहाँ स्वयंवर की रचना की गई थी ?

राजा लोग खूब सज-धजकर समाज सहित अपने-अपने आसनों पर बैठे थे । मुनि (नारद) मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे कि मेरा रूप बड़ा सुन्दर है, मुझे छोड़ कन्या भूलकर भी दूसरे को न वरेगी ।

कृपानिधान भगवान ने मुनि के कल्याण के लिए उन्हें ऐसा कुरूप बना दिया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता; पर यह चरित्र कोई भी न जान सका । सबने उन्हें नारद ही समझकर प्रणाम किया ।

वहाँ दो शिवजी के गण भी थे। वे सब भेद जानते थे और ब्राह्मण का वेष बना कर सारी लीला देखते फिरते थे। वे भी बड़े मौजी थे।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार।

जेहिं समाज बैठे मुनि जाई। हृदयँ रूप अहमिति अधिकाई।
तहँ बैठे महेस गन दोऊ। बिप्रबेष गति लखइ न कोऊ ॥१॥
करहिं कूटि नारदहि सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई ॥
रीझिहि राजकुअँरि छवि देखी। इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेषी। २॥
मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ। हँसहिं संभु गन अति सचु पाएँ॥
जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी। समुझि न परइ बुद्धि भ्रम सानी ॥३॥
काहुँ न लखा सो चरित बिसेषा। सो सरूप नृपकन्याँ देखा॥
मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदयँ क्रोध भा तेही ॥४॥
दो०—सखीं संग लै कुअँरि तब चलि जनु राजमराल।
देखत फिरइ महीप सब कर सरोज जयमाल ॥१३४॥

शब्दार्थ—अहमिति=अभिमान। कूटि=व्यंग्य-वचन। हरि (१) भगवान् (२) वानर। सचु=सुख। मर्कट=वानर। बदन=मुख। मराल=हंस। सरोज=कमल। भा=हुआ।

भावार्थ—स्वयंवर स्थल मे जाकर नारदजी बैठ गये हरि रूप में। जिस समाज मे (लोगों मे) जाकर नारदजी बैठे थे, वहाँ उन्हे अपने रूप का अपने मन मे बड़ा अभिमान था। संयोगवश वही महादेवजी के दो गण भी बैठे थे, वे ब्राह्मण के वेश मे थे, इसलिए उन्हे कोई पहचान न सका।

वे नारदजी को सुना-सुना कर व्यंग्य-वचन कहते थे—भगवान् ने इनको अच्छी 'सुन्दरता' दी है। इनकी शोभा देख कर राजकुमारी रीझ ही जायगी और 'हरि' (वानर) जानकर इन्ही को खास तौर से वरेगी।

नारद मुनि को मोह हो रहा था, क्योंकि उनका मन दूसरे के हाथ (माया के वश) मे था। शिवजी के गण बहुत प्रसन्न होकर हँस रहे थे। यद्यपि मुनि उनकी अटपटी बातें सुन रहे थे, पर बुद्धि भ्रम मे सनी हुई होने के कारण वे बातें उनकी समझ मे नही आती थी (उनकी बातों को वे अपनी प्रशंसा समझ रहे थे)।

इस विशेष चरित्र को और किसी ने नहीं जाना, केवल राजकन्या ने (नारदजी का) वह रूप देखा। उनका बंदर का-सा मुँह और भयंकर शरीर देखते ही कन्या के हृदय में क्रोध उत्पन्न हो गया।

स्वयंवर स्थल में राजकुमारी सखियों को साथ लेकर इस तरह चली मानो राजहंसिनी चल रही हो। वह अपने कमल-जैसे हाथों में जयमाला लिये सब राजाओं को देखती हुई घूमने लगी।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकार।

चौ०—जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर गन मुसुकाहीं॥१॥
धरि नृपतनु तहँ गयउ कृपाला। कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला॥
दुलहिनि लै गे लच्छिनिवासा। नृपसमाज सब भयउ निरासा॥२॥
मुनि अति बिकल मोहँ मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी॥
तब हर गन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई॥३॥
अस कहि दोउ भागे भयँ भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी॥
बेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा॥४॥
दो०—होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ॥
हँसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हँसेहु मुनि कोउ॥१३५॥

शब्दार्थ—दिसि=तरफ। उकसहिं=उचकते हैं। लच्छि-निवासा=लक्ष्मी निवास भगवान्। नाठी=नष्ट हो गई। गाँठी=गाँठ। मुकुर=दर्पण। वारि=जल। सराप=शाप।

भावार्थ—जिस ओर नारदजी अपने रूप के घमंड में फूले बैठे थे, उस ओर विश्वमोहिनी ने भूल कर भी नहीं देखा। नारदजी बेचैन होकर बार-बार उचकते हैं कि विश्वमोहिनी इधर ध्यान दे। उनकी यह दशा देख कर शिवजी के गण मुस्कराते हैं। इतने ही में कृपालु भगवान् भी राजा का शरीर धारण कर वहाँ पहुँच गये। उनके पहुँचते ही प्रसन्न होकर राजकुमारी ने उनके गले में जयमाला डाल दी। लक्ष्मी निवास भगवान् दुलहिन को लेकर चले गये। सब राज-समाज निराश हो गया।

मोह के कारण मुनि की बुद्धि नष्ट हो गई थी। इसलिए वे यह जान कर कि राजकुमारी हाथ से गई, बहुत व्याकुल हो गये। उन्हे इतना दुःख हुआ मानो गाँठ से छूट कर कोई बहुमूल्य मणि गिर गई हो। मुनि का इस बेचैनी को देख कर शिवजी के गणो ने मुसकराते हुए उनसे कहा—आप जाकर अपना मुख दर्पण मे तो देखिए। ऐसा कह कर वे दोनो डर के मारे भाग गये। मुनि ने जल मे झाँक कर देखा। अपना ऐसा रूप (वानर-रूप) देख कर नारद जी को बहुत क्रोध आया। उन्होने क्रोध मे आकर शिवजी के गणो को अत्यन्त कठोर शाप दे दिया—तुम दोनो कपटी और पापी हो, इसलिए जाओ, राक्षस हो जाओ। तुमने जो हमारी हँसी की, उसका फल चखो। तुम फिर किसी मुनि की हँसी करना।

काव्य-सौन्दर्य—पुनरुक्तिप्रकाश, लाटानुप्रास और उत्प्रेक्षा अलकार।

चौ०-पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदयँ संतोष न आवा॥
फरकत अधर कोप मन माहीं। सपदि चले कमलापति पाहीं॥१॥
देहउँ श्राप कि मरिहउँ जाई। जगत मोरि उपहास कराई॥
बीचहिं पंथ मिले दनुजारी। संग रमा सोइ राजकुमारी॥२॥
बोले मधुर वचन सुरसाईं। मुनि कहँ चले बिकल की नाईं॥
सुनत वचन उपजा अति क्रोधा। माया बस न रहा मन बोधा॥३॥
पर संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरें इरिषा कपट बिसेषी॥
मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु। सुरन्ह प्रेरि विष पान करायहु॥४॥
दो०-असुर सुरा विष संकरहि आपु रमा मनि चारु।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट व्यवहारु॥१३६॥

शब्दार्थ—अधर=ओठ। सपदि=शीघ्र। दनुजारी=राक्षसो के शत्रु विष्णु भगवान्। सुरसाईं=देवताओ के स्वामी। नाईं=तरह। इरिषा=जलन। रुद्रहि=शिवजी को। बौरयहु=पागल बना दिया। सुरा=मदिरा। चारु=सुन्दर।

भावार्थ—इसके बाद जब मुनि ने फिर जल मे देखा, तब उन्हे अपना असली रूप प्राप्त हो गया, किन्तु तब भी उन्हे सन्तोष नही हुआ। उनके ओठ फड़क रहे थे और मन मे क्रोध भरा था। तुरन्त ही भगवान् कमलापति के पास चले।

वे मन मे सोचते जाते थे कि—जाकर या तो शाप दूँगा या प्राण दे दूँगा। उन्होंने जगत् मे मेरी हँसी कराई है। दैत्यो के शत्रु भगवान् हरि उन्हे बीच रास्ते मे ही मिल गये। साथ मे लक्ष्मीजी और वही राजकुमारी थी।

देवताओ के स्वामी भगवान् ने मीठी वाणी मे कहा—हे मुनि ! व्याकुल की तरह कहाँ चले ? ये शब्द सुनते ही नारद को बडा क्रोध आया, माया के वशीभूत होने के कारण मन मे चेत नही रहा।

मुनि ने कहा तुम दूसरों की सम्पदा नही देख सकते, तुम्हारे मन मे ईर्ष्या और कपट बहुत है। समुद्र मथते समय तुमने शिवजी को बावला बना दिया और देवताओ को प्रेरित करके उन्हें विषपान कराया।

असुरो को मदिरा और शिवजी को विष देकर तुमने स्वय लक्ष्मी और सुन्दर कौस्तुभ मणि ले ली। तुम बडे धोखे बाज और मतलबी हो। सदा कपट का व्यवहार करते हो।

काव्य-सौन्दर्य—सुन्दर पद-मैत्री।

चौ०- परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई॥
भलेहि मंद मदेहि भल करहू। बिसमय हरष न हियँ कछु धरहू॥१॥
डहकि डहकि परिचेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू॥
करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा। अब लगि तुम्हहि न काहूँ साधा॥२॥
भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा॥
बचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा॥३॥
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी॥४॥
दो०-श्राप सीस धरि हरषि हियँ प्रभु बहु बिनती कीन्हि।
निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्हि॥१३७॥

शब्दार्थ—भावइ=अच्छा लगे। डहकि=ठग कर। परिचेहु=परीक्षा करते हो। साधा=ठीक किया। बायन दीन्हा=छेड छाड की। बचेहु=ठगा है। जवनि देहा=जिस शरीर को। कीस=बानर। होब=होगे। करषि=खीचली।

भावार्थ—नारदजी भगवान् विष्णु को उनकी करतूतें गिना रहे हैं—

तुम परम स्वतन्त्र हो, सिर पर तो कोई है नही, इससे जब जो मन को भाता है, स्वच्छन्दता से वही करते हो। भले को बुरा और बुरे को भला कर देते हो। हृदय मे हर्ष-विषाद कुछ भी नहीं लाते।

सबको ठग-ठग कर परक गये हो और अत्यन्त निडर हो गये हो, इसी से ठगने के काम मे मन मे सदा उत्साह रहता है। शुभ-अशुभ कर्म तुम्हें बाधा नही देते। अब तक तुमको किसी ने ठीक नही किया है।

अब की तुमने अच्छे घर बैना दिया है (मेरे-जैसे जबर्दस्त आदमी से छेड़खानी की है)। अत. अपने किये का फल अवश्य पाओगे। जिस शरीर को धारण करके तुमने मुझे ठगा है, तुम भी वही शरीर धारण करो, यह मेरा शाप है।

तुमने हमारा रूप वन्दर का-सा बना दिया था, इससे वन्दर ही तुम्हारी सहायता करेंगे। मैं जिस स्त्री को चाहता उससे मेरा वियोग कराकर तुमने मेरा बड़ा अहित किया है, इससे तुम भी स्त्री के वियोग मे दु खी होगे।

भगवान् ने नारदजी के शाप को सिर पर धारण कर लिया और हृदय मे प्रसन्न होते हुए उन्होंने नारदजी से बहुत विनती की। तदनन्तर कृपालु भगवान् ने अपनी माया की प्रबलता को खींच लिया।

काव्य-सौन्दर्य—लाटानुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश अलकार।

चौ०—जब हरि माया दूरि निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी॥
तब मुनि अति सभीत हरि चरना। गहे पाहि प्रनतारति हरना॥१॥
मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला॥
मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहि किमि मेरे॥२॥
जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदयँ तुरत विश्रामा॥
कोउ नहिं शिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें॥३॥
जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥
अस उर धरि महि विचरहु जाई। अब न तुम्हहि माया निअराई॥४॥
दो०—बहुबिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु तब भए अंतरधान।
सत्यलोक नारद चले करत राम गुन गान॥१३८॥

शब्दार्थ—गहे=पकड़ लिये। पाहि=रक्षा कीजिए। प्रनतारति=शरणागत का कष्ट। मृषा=मिथ्या। बिश्रामा=विश्राम। भोरेहुँ=भूल कर भी। निअराई=निकट आयेगी।

भावार्थ—जब भगवान् ने अपनी माया को हटा लिया, तब वहाँ न लक्ष्मी ही रह गयी, न राजकुमारी ही। तब मुनि ने अत्यन्त भयभीत होकर श्रीहरि के चरण पकड़ लिये और कहा—हे शरणागत के दुःखों को हरने वाले ! मेरी रक्षा कीजिये।

हे कृपानिधि ! मैंने जो शाप दिया है, वह मिथ्या हो जाय। तब दीनों पर दया करने वाले भगवान् ने कहा—यह सब मेरी ही इच्छा से हुआ है। तब नारद मुनि ने कहा—मैंने आपको अनेक दुर्वचन कहे हैं (गालियाँ दी हैं), मेरे ये पाप कैसे दूर होंगे ?

तब भगवान् ने कहा—तुम जाकर शंकर के नाम का सौ बार जप करो, ऐसा करने से तुम्हें शीघ्र ही शांति मिल जायगी। शिवजी के समान मुझे कोई प्रिय नहीं है। तुम यह दृढ़ विश्वास रखो—इसे कभी न छोड़ना। हे मुनि ! शिवजी जिस पर कृपा नहीं करते, वह मेरी भक्ति नहीं पा सकता। तुम अपने हृदय में ऐसा निश्चय करके जाओ और पृथ्वी पर विचरण करो। अब मेरी माया तुम्हें नहीं सतायेगी।

इसके बाद नारद मुनि को अनेक प्रकार से समझा-बुझा कर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। नारदजी भी वहाँ से राम के गुण गाते हुए सत्यलोक के लिए प्रस्थान कर गये।

चौ०—हर गन मुनिहि जात पथ देखी। बिगत मोह मन हरष बिसेषी॥
अति सभीत नारद पहिं आए। गहि पद आरत बचन सुनाए॥१॥
हर गन हम न बिप्र मुनि राया। बड़ अपराध कीन्ह फल पाया॥
श्राप अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीनदयाला॥२॥
निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ। बैभव बिपुल तेज बल होऊ॥
भुज बल बिस्व जितब तुम जहिआ। धरिहहिं बिष्नु मनुज तनु तहिआ॥३॥
समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि संसारा॥
चले जुगल मुनि पद सिर नाई। भए निसाचर कालहि पाई॥४॥

दो०—एक कलप एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार।
सुर रंजन सज्जन सुखद हरि भजन भुवि भार ॥१३९॥

शब्दार्थ—जितव=जीतोगे। जहिआ=जब। तहिआ=तब। जुगल=दोनों। रंजन=प्रसन्न करना। भुवि=पृथ्वी।

भावार्थ—शिवजी के गणों ने जब मुनि को मोह रहित और मन में बहुत प्रसन्न होकर मार्ग में जाते हुए देखा, तब वे अत्यन्त भयभीत होकर नारद जी के पास आये और उनके चरण पकड़ कर दीन वचन बोले—हे मुनिराज! हम ब्राह्मण नहीं हैं, हम तो शिवजी के गण हैं। हमने बड़ा भारी अपराध किया, जिसका फल हमें मिल गया। हे कृपालु मुनि! अब आप शाप दूर करने की कृपा करें। तब दीनों पर दया करने वाले नारदजी ने कहा—तुम दोनों जाकर राक्षस हो जाओ तुम्हें महान् ऐश्वर्य, तेज और बल प्राप्त हो। जब तुम अपनी भुजाओं के बल से सारे संसार को जीत लोगे, तब भगवान् विष्णु नर-तन धारण करेंगे (अवतार लेंगे), उनके हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी, जिसमें तुम्हें मुक्ति मिलेगी और फिर तुम्हें संसार में जन्म न लेना पड़ेगा। शिवजी के वे दोनों गण मुनि के चरणों में सिर नवा कर चले गये और समय पाकर फिर वे राक्षस हुए।

देवताओं को प्रसन्न करने वाले, सज्जनों को सुख देने वाले और पृथ्वी का भार हरण करने वाले भगवान् ने एक कल्प में इसी कारण मनुष्य का अवतार लिया था।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलंकार।

चौ०—एहि बिधि जनम करम हरि केरे। सुन्दर सुखद बिचित्र घनेरे॥
कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना बिधि करहीं॥१॥
तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबन्ध बनाई॥
बिबिध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आचरजु सयाने॥२॥
हरि अनंत हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहु बिधि सब संता॥
रामचन्द्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाए॥३॥
यह प्रसंग मैं कहा भवानी। हरि मायाँ मोहहिं मुनि ग्यानी॥
प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी। सेवत सुलभ सकल दुखहारी॥४॥

दो०—सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रवल ।
अस विचारि मन माहिं भजिअ न मोहमाया पतिहि ॥१४०॥

शब्दार्थ—कैरे=के । प्रनन=शरणागत ।

भावार्थ—शिवजी कह रहे है—हे भवानी ! इस प्रकार भगवान् के अनेक सुन्दर, सुख देने वाले तथा अलौकिक जन्म और कर्म है । भगवान् प्रत्येक कल्प मे जब जब लीलाएँ करते हैं, तब-तब मुनि लोग परम पवित्र काव्य-रचना करके उनकी कथा को गाते हैं और वे भाँति-भाँति के अनुपम प्रसगो का वर्णन करते हैं, जिन्हें सुन कर समझदार लोग कभी आश्चर्य प्रकट नही करते ।

श्रीहरि अनन्त हैं उनका कोई पार नही पा सकता और उनकी कथा भी अनन्त है, सब सत लोग उसे वहुत प्रकार से कहते सुनते हैं । श्रीरामचन्द्र जी के सुन्दर चरित्र करोड कल्पो मे भी गाये नही जा सकते ।

शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! मैंने यह वतलाने के लिये इस प्रसङ्ग को कहा कि ज्ञानी मुनि भी भगवान् की माया से मोहित हो जाते हैं । प्रभु कौतुकी (लीलामय) हैं और शरणागत का हित करने वाले हैं । वे सेवा करने मे वहुत सुलभ और सब दुःखो के हरने वाले हैं ।

ससार मे ऐसा कोई भी देवता, मनुष्य और मुनि नहीं है जिसे भगवान् की प्रवल माया मोहित न करदे । इसलिए मन मे ऐसा विचार करके उस मया माया के पति भगवान् का भजन करना चाहिए ।

काव्य-सौन्दर्य—लाटानुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश अलकार ।

चौ०—अपर हेतु सुनु सैलकुमारी । कहउँ विचित्र कथा विस्तारी ॥
जेहि कारन अज अगुन अरूपा । ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा ॥१॥
जो प्रभु विपिन विपिन फिरत तुम्ह देखा । बंधु समेत धरें मुनिवेषा ॥
जासु चरित अवलोकि भवानी । सती सरीर रहिहु बौरानी ॥२॥
अजहुँ न छाया मिटति तुम्हारी । तासु चरित सुनु भ्रम रुज हारी ॥
लीला कीन्हि जो तेहिं अवतारा । सो सव कहिहउँ मति अनुसारा ॥३॥
भरद्वाज सुनि संकर वानी । सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी ॥
लगे वहुरि वरनै वृषकेतू । सो अवतार भयउ जेहि हेतू ॥४॥

दो०—सो मैं तुम्ह सन कहउँ सबु सुनु मुनीस मन लाइ ।
राम कथा कलि मल हरनि मगल करनि सुहाइ ।।१४१।।

शब्दार्थ—अपर=दूसरा । बौरानी=बावली । रुज=रोग ।

भावार्थ—शिव पार्वती से कह रहे हैं—हे गिरिराज कुमारी ! अब तुमको भगवान् के अवतार लेने का एक अन्य कारण सुनाता हूँ । उसकी विचि कथा मैं विस्तार से कहता हूँ । ब्रह्म जो अज (अजन्मा), निर्गुण और अरूप है वह किस प्रकार अयोध्या के राजा बने ।

जिस प्रभु को तुमने अपने बन्धु लक्ष्मण के साथ मुनि-वेष मे वन फिरते देखा था और हे भवानी ! जिसके चरित्र को देख कर सती के रूप तुम ऐसी बावली हो गई थी कि—

अब भी तुम्हारे उस बावले पन की छाया नही मिटती, उन्ही के भ्रम रूपी रोग के हरण करने वाले चरित्र सुनो । उस अवतार मे भगवान् ने जो-ज लीला की, वह सब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हे कहूँगा ।

याज्ञवल्क्यजी ने कहा—हे भरद्वाज ! शकर के वचन सुनकर पार्वतीज सकुचाकर प्रेमसहित मुसकरायी । फिर वृषकेतु शिवजी जिस कारण से भगवा का वह अवतार हुआ था, उसका वर्णन करने लगे ।

हे मुनीश्वर भरद्वाज ! मैं वह सब तुमसे कहता हूँ, तुम मन लगाक सुनो । श्रीरामचन्द्रजी की कथा कलियुग के पापो को हरने वाली, कल्याण करने वाली और बडी सुन्दर है ।

चौ०—स्वायंभू मनु अरु सतरूपा । जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा ।।
दपति धरम आचरन नीका । अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका ।।१।
नृप उत्तानपाद सुत तासू । ध्रुव हरि भगत भयउ सुत जासू ।
लघु सुत नाम प्रियव्रत ताही । बेद पुरान प्रसंसहिं जाही ।।२।
देवहूति पुनि तासु कुमारी । जो मुनि कर्दम के प्रिय नारी ।।
आदिदेव प्रभु दीनदयाला । जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला ।।३।।
सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना । तत्त्व बिचार निपुन भगवाना ।।
तेहिं मनु राज कीन्ह बहु काला । प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला ।।४।।

सो०—होइ न विषय विराग भवन बसत भा चौथपन।
हृदय बहुत दुख लाग जनम गयउ हरि भगति बिनु ॥१४२॥

शब्दार्थ—स्वायंभू=स्वायम्भुव। सतरूपा=शतरूपा। भै=हुईं। लीका=मर्यादा। जठर=पेट। आयसु=आज्ञा। चौथपन भा=बुढ़ापा आ गया।

भावार्थ—याज्ञवल्क्य ऋषि भरद्वाज मुनि से कह रहे हैं—स्वायम्भुव मनु और उनकी पत्नी शतरूपा, जिनसे यह अनुपम मानव-सृष्टि हुई है, दोनो भले प्रकार धर्म और आचरण के साथ रह रहे थे, आज भी जिनकी मर्यादा का वेद गान करता है। राजा उत्तानपाद, जिनके प्रसिद्ध हरि भक्त ध्रुव उत्पन्न हुए, इन्ही के सुपुत्र थे। मनु के छोटे लड़के का नाम प्रियव्रत था, जिनकी वेद और पुराण प्रशंसा करते हैं। उत्तानपाद और प्रियव्रत के बाद उनके एक लड़की उत्पन्न हुई जिसका नाम देवहूति था जो कर्दम मुनि की प्यारी पत्नी बनी, जिसने भगवान् कपिल को जो आदिदेव, दीनदयालु एव कृपालु हैं, गर्भ मे धारण किया।

तत्त्वो का विचार करने मे अत्यन्त निपुण जिन कपिल भगवान् ने सांख्यशास्त्र का प्रकट रूप मे वर्णन किया, उन स्वायम्भुव मनु ने बहुत समय तक राज्य किया और सब प्रकार से भगवान् की आज्ञा का पालन किया। शास्त्र-विहित शासन किया। उनका घर में रहते बुढ़ापा आ गया, परन्तु विषयों से वैराग्य नहीं हुआ, इस बात को सोच कर उनके मन मे बड़ा दु ख हुआ कि श्रीहरि की भक्ति बिना जन्म यो ही चला गया।

चौ०—बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥
तीरथ बर नैमिष बिख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता॥१॥
बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा। तहँ हियँ हरषि चलेउ मनु राजा॥
पंथ जात सोहहिं मतिधीरा। ग्यान भगति जनु धरें सरीरा॥२॥
पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा। हरषि नहाने निरमल नीरा॥
आए मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी। धरम धुरंधर नृपरिषि जानी॥३॥
जहँ जहँ तीरथ रहे सुहाए। मुनिन्ह सकल सादर करवाए॥
कृस सरीर मुनि पट परिधाना। सत समाज नित सुनहिं पुराना॥४॥

दो० —द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग।
वासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग ।।१४३।।

शब्दार्थ—नैमिष=नैमिष एक तीर्थ है (अवध मे यह एक प्राचीन वन है जो हिन्दुओ का एक प्राचीन तीर्थ माना जाता है)। इसे 'नैमिषारण्य' कहते हैं। धेनुमति=गोमती नदी। नृप रिषि=राजर्षि। पट=वस्त्र। पकरुह=कमल। द्वादस अच्छर मत्र=बारह अक्षरो वाला मत्र—'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'।

भावार्थ—तब स्वायंभुव मनु ने जबरदस्ती अपने पुत्र को राज्य दे दिया और वे पत्नी सहित वन को चले गये। वहाँ तीर्थो मे श्रेष्ठ प्रसिद्ध नैमिषारण्य था जो अत्यन्त पवित्र था और साधको को सिद्धि देता था। वहाँ मुनियो और सिद्धो के समूह बसते थे। राजा मनु हृदय मे हर्षित होते हुए वहाँ चले गये। धीर बुद्धि वाले वे मार्ग मे जाते हुए इस तरह शोभित हो रहे थे मानो ज्ञान और भक्ति ही शरीर धारण किये जा रहे हो। (मनु ज्ञान और शतरूपा भक्ति)।

चलते-चलते वे गोमती के किनारे जा पहुँचे। हर्षित होकर उन्होने निर्मल जल मे स्नान किया। उनको धर्मधुरन्धर राजर्षि जानकर सिद्ध और ज्ञानी मुनि उनसे मिलने आये।

जहाँ-जहाँ सुन्दर तीर्थ थे, मुनियो ने आदरपूर्वक सभी तीर्थ उनको करा दिये। उनका शरीर दुर्बल हो गया था, वे मुनियो के से वल्कल वस्त्र धारण करते थे और सतो के समाज मे नित्य पुराण सुनते थे।

वे प्रेम-सहित बारह अक्षरो वाला मत्र—'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' जपते थे। भगवान् वासुदेव के चरण कमलो मे उस दम्पती का मन खूब ही लग गया था।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, उत्प्रेक्षा और रूपक अलकार।

चौ०—करहिं अहार साक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा।।
पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि अधार मूल फल त्यागे ।।१।।
उर अभिलाष निरंतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई।।
अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथबादी ।।२।।

नेति नेति जेहि वेद निरूपा। निजानन्द निरुपाधि अनूपा ॥
संभु विरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहि जासु अंस तें नाना ॥३॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई ॥
जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा ॥४॥
दो०—एहि बिधि बीते बरष षट सहस बारि आहार।
संबत सप्त सहस्र पुनि रहे समीर अधार ॥१४४॥

शब्दार्थ—कंदा=जमीकन्द। परमारथवादी=तत्त्व ज्ञानी। चिंतहिं=चिंतन करते हैं। निरुपाधि=उपाधि रहित। लीलातनु=लीलामय शरीर। पूजिहि=पूरी होगी। समीर=वायु।

भावार्थ—मनु और उनकी पत्नी रानी शतरूपा वन में तपस्या करते हुए शाक, फल और कन्द का आहार करते थे और सच्चिदानन्द ब्रह्म का स्मरण करते थे। इसके बाद उन्होंने श्रीहरि की प्राप्ति के लिए तप करना आरम्भ किया, उस समय उन्होंने मूल और फल भी त्याग दिये, वे केवल जल के आधार पर रहने लगे।

उनके हृदय में निरन्तर यही अभिलाषा हुआ करती कि हम कैसे उन परम प्रभु को आंखों से देखें, जो निर्गुण, अखण्ड, अनन्त और अनादि हैं और परमार्थवादी अर्थात् ब्रह्मज्ञानी लोग जिनका चिन्तन किया करते हैं।

जिन्हें वेद 'नेति-नेति' (यह भी नहीं) कहकर निरूपण करते हैं। जो आनन्दस्वरूप, उपाधि रहित और अनुपम हैं, एवं जिनके अंश से अनेकों शिव, ब्रह्मा और विष्णु भगवान् प्रकट होते हैं।

वह महान् प्रभु सेवक के वश में है और वह अपने भक्त के लिए लीलामय शरीर धारण करता है। वेदों में यदि यह वचन सत्य कहा गया है तो हमारी अभिलाषा अवश्यमेव पूरी होगी।

इस प्रकार स्वायम्भुव मनु और शतरूपा को केवल जल के आधार पर तप करते-करते छ हजार वर्ष बीत गये, फिर सात हजार वर्ष तक वे केवल वायु के आधार पर रहे।

चौ०—बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एक पद दोऊ ॥
बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा ॥१॥

मागहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए॥
अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा। तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा॥२॥
प्रभु सर्बग्य दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी॥
मागु मागु बरु भै नभ बानी। परम गभीर कृपामृत सानी॥३॥
मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। श्रवन रंध्र होइ उर जब आई॥
हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए। मानहुँ अबहिं भवन ते आए॥४॥
दो०—श्रवन सुधा सम बचन सुनि पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दंडवत प्रेम न हृदयँ समात॥१४५॥

शब्दार्थ—चलहिं = विचलित होते हैं। मनाग = थोड़ी-सी भी। भै = हुई। गिरा = वाणी। श्रवन-रंध्र = कानों के छेद। गात = शरीर।

भावार्थ—इस प्रकार बाद में उन्होंने वायु का आहार भी छोड़ दिया। दोनों एक पैर से खड़े रहे। उनका अपार तप देख कर ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी कई बार मनुजी के पास आये और उन्होंने इन्हें अनेक प्रकार से ललचाया और कहा कि कुछ वर माँगो। पर वे परम धैर्यवान् (राजा-रानी अपने तप से डिगाने से) डिगाये नहीं डिगे। यद्यपि उनका शरीर हड्डियों का ढाँचा-मात्र रह गया था, फिर भी उनके मन में ज़रा भी पीड़ा नहीं थी।

तब सर्वज्ञ भगवान् ने अनन्य गति वाले तपस्वी राजा और रानी को अपना दास जान कर आकाशवाणी की। परम गंभीर और कृपा रूपी अमृत से सनी आकाशवाणी की—'वर माँगो, वर माँगो'।

मुर्दों को भी जीवित कर देने वाली जब यह सुन्दर वाणी मनु और शतरूपा के कानों के छेदों से होकर हृदय में आई, तब उनके शरीर इस तरह हृष्ट-पुष्ट हो गए, मानो वे अभी-अभी घर से आये हों।

कानों द्वारा अमृत के समान मधुर वचन सुनकर उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया था। तब दंडवत करके मनु ने कहा, उस समय उनके हृदय में प्रेम नहीं समा रहा था।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा अलङ्कार।

चौ०—सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। बिधि हरि हर बंदित पद रेनू॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रनतपाल सचराचर नायक॥१॥

जौं अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह वर देहू ॥
जो सरूप बस सिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं ॥२॥
जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा ॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन ॥३॥
दंपति बचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे ॥
भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना ॥४॥

दो०—नील सरोरुह नील मनि नील नीलधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम ॥१४६॥

शब्दार्थ—सुरतरु=कल्पवृक्ष। मन-मानस=मनरूपी मान सरोवर। प्रनतारति-मोचन=शरणागत के दुःख को मिटाने वाले। भगत-बछल=भक्त-वत्सल (भक्तो को प्यार करने वाले) सरोरुह=कमल। नीरधर=बादल।

भावार्थ—आकाशवाणी सुन कर मनु श्री हरि से प्रार्थना करते हैं—हे प्रभो! सुनिए, आप अपने सेवकों से लिए कल्पवृक्ष और कामधेनु हैं। आपके चरणो की रज की ब्रह्मा, विष्णु और महेश वन्दना करते हैं। सेवा करने पर आप आसानी से प्राप्त हो जाते हैं और आप सब को सुख देने वाले हैं। आप शरणागत के पालने वाले तथा चराचर के स्वामी हैं।

हे अनाथो के हितैषी! यदि आप का हम पर स्नेह है तो प्रसन्न हो कर आप हमें यह वर दीजिये कि आपका जो स्वरूप शिवजी के मन मे बसता है, और जिसकी प्राप्ति के लिए मुनिजन सदा यत्न करते हैं, जो काकभुशुण्डि के मन रूपी मान सरोवर का हंस है तथा वेद सगुण-निर्गुण कह कर जिसकी प्रशंसा करते हैं, हे शरणागत-वत्सल! आप ऐसी कृपा कीजिए कि हम आपके उसी रूप को नेत्र भर कर देखें।

कोमल, नम्र और प्रेम-रस मे पगे राजा-रानी के वचन भगवान् श्रीहरि को बहुत ही प्रिय लगे। इसलिए वे भक्त-वत्सल, कृपानिधि, सम्पूर्ण विश्व में व्यापक भगवान् राजा-रानी के सामने प्रकट हुए।

नील कमल, नीलमणि और सजल नील मेघ के समान भगवान् के श्यामवर्ण शरीर की शोभा को देख कर करोड़ों कामदेव भी लजा जाते हैं।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, लाटानुप्रास, परम्परित रूपक और पुनरुक्ति प्रकाश अलकार।

चौ०-सरद मयंक वदन छवि सींवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा ॥
अधर अरुन रद सुंदर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा ॥१॥
नव अंबुज अंबक छवि नीकी। चितवनि ललित भावँती जी की ॥
भृकुटि मनोज चाप छवि हारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी ॥२॥
कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा ॥
उर श्रीवत्स रुचिर वनमाला। पदिक हार भूषन मनि जाला ॥३॥
केहरि कंधर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषन सुंदर तेऊ ॥
केहरि कंधर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषन सुंदर तेऊ ॥
करि कर सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग कर सर कोदंडा ॥४॥
दो०-तड़ित बिनिंदक पीत पट उदर रेख वर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु जमुन भवँर छवि छीनि ॥१४७॥

शब्दार्थ—मयंक=चन्द्रमा। वदन=मुख। कपोल=गाल। चिबुक=ठोडी दर=शंख। रद=दन्त। नासा=नाक। बिधुकर-निकर=चन्द्रमा की किरणो का समूह। अम्बुज=कमल। अंबक=नेत्र। ललित=मनोहर। भावँती=प्यारी लगने वाली। चाप=धनुष। मकर=मछली। भ्राजा=सुशोभित था। पदिक हार=रत्न-जटित हार। केहरि-कंधर=सिंह के कंधे। करि-कर=हाथी की सूँड। सरिस=समान। निषंग=तरकस। कोदंडा=धनुष। तड़ित=बिजली। विनिन्दक=लजाने वाला। रेख=रेखाएँ।

भावार्थ—स्वयंभुव मनु और शतरूपा के सामने भगवान् जिस रूप में प्रकट हुए, उसका वर्णन किया जा रहा है—

भगवान् का मुख शरद-पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान शोभा की सीमा था। उनके गाल और ठोडी सुन्दर थे। गर्दन शंख के समान त्रिरेखा-युक्त थी। ओठ लाल थे, दाँत और नाक अत्यंत सुन्दर थे। उनका हास (हँसना) चन्द्रमा की किरणो के समूह को लज्जित करने वाला था। नवीन खिले हुए कमल के समान नेत्रो की छवि बहुत ही सुन्दर थी। उनकी मनोहर चितवन जी को बहुत ही प्यारी लगती थी। उनकी भौंहे कामदेव के धनुष की शोभा को हरने

वाली थी। ललाट पर प्रकाशमय सुन्दर तिलक था। कानों में मछली के आकार के कुंडल थे। सिर पर मुकुट सुशोभित था। घुंघराले काले बाल ऐसे लगते थे मानो भ्रमर-समूह ही बैठा हो। उनके हृदय पर श्री वत्स का चिह्न, सुन्दर वनमाला, रत्न-जटित हार एवं मणियों के आभूषण सुशोभित थे। उनके सिंह के सदृश कंधे पर सुन्दर जनेऊ था तथा भुजाओं में जो गहने पहन रखे थे, वे भी सुन्दर थे। उनके भुजदंड हाथी की सूंड के समान सुन्दर थे। कमर में तरकस तथा हाथ में धनुष-बाण शोभा दे रहे थे। उनका पीताम्बर बिजली को लजाने वाला था तथा पेट पर सुन्दर त्रिवली थी। नाभि ऐसी मनोहर थी मानो यमुना के भँवर की छवि छीन रही हो।

काव्य-सौन्दर्य—उपमा, रूपक, यमक और उत्प्रेक्षा अलंकार।

चौ०—पद राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि मन मधुप बसहिं जेन्ह माहीं॥
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला॥१॥
जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥२॥
छबिसमुद्र हरि रूप बिलोकी। एकटक रहे नयन पट रोकी॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा॥३॥
हरष बिबस तन दसा भुलानी। परे दंड इव गहि पद पानी॥
सिर परसे प्रभु निज कर कंजा। तुरत उठाए करुनापुंजा॥४॥
दो०—बोले कृपानिधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि।
मागहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि॥१४८॥

शब्दार्थ—राजीव=कमल। नयन-पट=नेत्र-पलक। दंडइव=डंडे की तरह सीधे। पानी=हाथ। कंजा=कमल।

भावार्थ—भगवान् के उन चरणों का तो, जिनमें मुनियों के मन रूपी भौंरे बसते हैं, वर्णन हो नहीं किया जा सकता। भगवान् के वाम भाग में सदा अनुकूल रहने वाली, शोभा की राशि, जगत् की मूल कारण रूपा आदिशक्ति श्रीजानकीजी सुशोभित हैं।

जिनके अंश से गुणों की खान अगणित लक्ष्मी, पार्वती और ब्राह्मणी (त्रिदेवों की शक्तियाँ) उत्पन्न होती हैं, तथा जिनकी भौंह के इशारे से ही

जगत् की रचना हो जाती है, वही भगवान् की स्वरूपा-शक्ति श्री सीता जी के बायीं ओर स्थित हैं।

राजा मनु और रानी शतरूपा शोभा-सागर विष्णु भगवान् का यह रूप देख कर पलकों की गति को रोक एकटक देखते रहे। वे आदर पूर्वक भगवान् के उस रूप को निरखते-निरखते तृप्त नहीं होते थे। वे इतने आनन्द-मग्न हो गये कि उन्हें अपने शरीर की सुधि भी नहीं रही। वे अपने हाथों से भगवान् के चरण पकड़ कर दण्डे या लकड़ी की तरह पृथ्वी पर सीधे पड़ गये। करुणा-निधान भगवान् ने अपना अभय-हस्त उनके सिर पर रख कर उन्हें उठा लिया।

तदनन्तर भगवान् ने कहा—मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम मुझे बड़ा भारी दानी समझ कर जो वर तुम्हें अच्छा लगे, वही माँग लो।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और रूपक अलंकार।

चौ०—सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। धरि धीरजु बोली मृदु बानी॥
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे॥१॥
एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जात सो नाहीं॥
तुम्हहि देत अति सुगम गोसाईं। अगम लाग मोहि निज कृपनाईं॥२॥
जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई। बहु संपति मागत सकुचाई॥
तासु प्रभाउ जान नहिं सोई। तथा हृदयँ मम संसय होई॥३॥
सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी॥
सकुच बिहाइ मागु नृप मोही। मोरें नहिं अदेय कछु तोही।
दो०—दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ॥
चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥१४९॥

शब्दार्थ—जुगपानी=दोनों हाथ। अगम=कठिन। कृपनाईं=कृपणता, कंजूसी। बिबुधतरु=देवताओं का वृक्ष (कल्पवृक्ष)। पुरवहु=पूर्ण करो। बिहाइ=छोड़ कर। सति भाउ=सच्चा भाव। दुराव=छिपाना।

भावार्थ—स्वायम्भुव मनु भगवान् से वर माँग रहे हैं—भगवान् के वचनों को सुन कर, दोनों हाथ जोड़ कर तथा धीरज धर कर राजा मनु ने कोमल वचन कहे—हे नाथ! आपके चरण कमलों के दर्शन कर हमारी सब

कामनाएँ पूर्ण हो गईं । फिर भी मन मे एक बड़ी लालसा है । उसका पूर्ण होना सहज भी है और अत्यन्त कठिन भी । इसी से वह कहने मे नही आती (उसे प्रकट करते सकोच होता है) । हे स्वामी ! आपके लिए तो वह देने मे बड़ी सुगम है, पर मुझे उसका मिलना अपनी दीनता (कृपणता) के कारण अत्यत कठिन मालूम पडता है ।

जिस प्रकार कोई दरिद्री कल्पवृक्ष को पाकर भी बहुत सी सम्पत्ति माँगते सकुचाता है, क्योकि वह उसके प्रभाव को नही जानता । उसी प्रकार मेरे मन मे भी सशय हो रहा है ।

किन्तु हे स्वामी ! आप अन्तर्यामी हैं, इसलिये उसे जानते ही हैं । मेरा वह मनोरथ पूरा कीजिये । भगवान् ने कहा—हे राजन् ! सकोच छोड कर मुझसे माँगो । तुम्हें न दे सकूँ, ऐसा मेरे पास कुछ भी नही है । जो तुम माँगोगे, तुम्हें वही मिल जायगा ।

भगवान् के इन वचनो को सुन कर राजा ने कहा—हे कृपा निधान ! आप दानियो मे शिरोमणि हैं । मैं अपने मन का सच्चा भाव कहता हूँ । आपसे तो कुछ छिपा है ही नहीं, मैं आप-जैसा पुत्र चाहता हूँ ।

काव्य सौंदर्य—रूपक, लाटानुप्रास, उदाहरण और उपमा अलंकार ।

चौं०—देखि प्रीति सुनि बचन अमोले । एवमस्तु करुनानिधि बोले ।।
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई । नृप तव तनय होब मैं आई ।।१।।
सतरूपहि बिलोकि कर जोरें । देबि मागु बरु जो रुचि तोरें ।।
जो बरु नाथ चतुर नृप मागा । सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा ।।२।।
प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई । जदपि भगत हित तुम्हहि सोहाई ।।
तुम ब्रह्मादि जनक जग स्वामी । ब्रह्म सकल उर अंतरजामी ।।३।।
अस समुझत मन ससय होई । कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई ।।
जे निज भगत नाथ तव अहहीं । जो सुख पावहिं जो गति लहहीं ।।४।।

दो०—सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु ।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु ।।१५०।।

शब्दार्थ—अमोले=अमूल्य । एवमस्तु=ऐसा ही हो । तनय=पुत्र । होब

होऊँगा । सोहाई=अच्छी लगती है । प्रवान=सत्य ।अहहीं=हैं । लहहीं=पाते हैं । रहनि=रहना ।

भावार्थ—करुणा-निधान भगवान ने राजा का प्रेम देख कर तथा उसके अमूल्य वचनों को सुनकर कहा—'ऐसा ही हो' । हे राजन् ! मैं अपने जैसा अन्य कहाँ जाकर ढूँढूँ, इसलिए मैं स्वयं ही आकर तुम्हारा पुत्र बनूँगा । तदनन्तर भगवान् ने शतरूपा को हाथ जोड़े खड़े देख कर कहा—हे देवी ! तुम्हारी जो इच्छा हो, माँगो (तुम्हे वही मिलेगा) । शतरूपा ने कहा—हे कृपालु भगवन् ! जो वर चतुर राजा ने माँगा है, वह मुझे बहुत ही प्रिय लगा ।

परन्तु हे प्रभु ! बहुत ढिठाई हो रही है, यद्यपि हे भक्तों का हित करने वाले ! वह ढिठाई भी आपको अच्छी ही लगती है । आप ब्रह्मा आदि के भी पिता (उत्पन्न करनेवाले), जगत् के स्वामी और सबके हृदय के भीतर की जानने वाले ब्रह्म हैं ।

ऐसा समझने पर मनमे सन्देह होता है, फिर भी प्रभु ने जो कहा वही प्रमाण (सत्य) है । मैं तो यह मागती हूँ कि हे नाथ ! आपके जो भक्त हैं वे जो अखण्ड सुख पाते हैं और जिस परम गति को प्राप्त होते हैं, हे प्रभो ! वही सुख वही गति, वही भक्ति वही अपने चरणों मे प्रेम, वही ज्ञान और वही रहन-सहन कृपा करके हमे दीजिए ।

काव्य-सौन्दर्य—उपमा और लाटानुप्रास अलकार ।

चौ०—सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बर रचना । कृपासिंधु बोले मृदु बचना ॥
जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं । मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं ॥१॥
मातु बिबेक अलौकिक तोरें । कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें ॥
बंदि चरन मनु कहेउ बहोरी । अवर एक बिनती प्रभु मोरी ॥२॥
सुत बिषइक तव पद रति होऊ । मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ ॥
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना । मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना ॥३॥
अस बरु मागि चरन गहि रहेऊ । एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ ॥
अब तुम्ह मम अनुसासन मानी । बसहु जाइ सुरपति रजधानी ॥४॥

सो०—तहँ करि भोग बिसाल तात गएँ कछु काल पुनि ।
होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत ॥१५१॥

शब्दार्थ—वर रचना=सुन्दर वाक्य रचना । रुचि=इच्छा । तोरें=तुम्हारा । बहोरी=फिर । अवर=और । फनि=साँप । सुरपति-रजधानी=अमरावती । भुआल=राजा ।

भावार्थ—रानी शतरूपा की कोमल- गूढ और सुन्दर वाणी सुनकर कृपा सागर भगवान् ने कोमल वाणी मे कहा—तुम्हारे मन मे जो इच्छा है, वह सब मैंने तुमको दे दी । इसमे सन्देह करने की आवश्यकता नही है । हे माता ! मेरी कृपा मे तुम्हारा अलौकिक ज्ञान कभी नष्ट नही होगा । तब मनु ने भगवान् के चरणो की वन्दना करके कहा—हे नाथ ! मेरी एक विनती और है । चाहे कोई मुझे बडा भारी मूर्ख ही क्यो न कहे, किंतु आपके चरणो मे मेरा वैसा ही प्रेम हो जैसा कि पुत्र के लिए पिता का होता है । जैसे मणि के बिना साँप और जल के बिना मछली नही रह सकती, उसी प्रकार प्राण भी आपके बिना न रह सकें ।

ऐसा वर माँग कर राजा भगवान् के चरण पकडे रह गए । तब दया के निधान भगवान ने कहा ऐसा ही हो । अब तुम मेरी आज्ञा मान कर देवराज इन्द्र की राजधानी (अमरावती) मे जाकर वास करो ।

हे तात ! वहाँ तुम अनेक भोग भोग कर, कुछ काल बीत जाने पर पर अवध के राजा बनोगे, तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा ।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, विनोक्ति और उपमा अलकार ।

चौ०—इच्छामय नरबेष सँवारें । होइहउँ प्रकट निकेत तुम्हारें ॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता । करिहउँ चरित भगत सुखदाता ॥१॥
जो सुनि सादर नर बडभागी । भव तरिहहिं ममता मद त्यागी ॥
आदि सक्ति जेहिं जग उपजाया । सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ॥२॥
पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा । सत्य सत्य पन सत्य हमारा ॥
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना । अंतरधान भए भगवाना ॥३॥
दंपति उर धरि भगत कृपाला । तेहिं आश्रम निवसे कछु काला ॥
समय पाइ तनु तजि अनयासा । जाय कीन्ह अमरावति वासा ॥४॥

दो०—यह इतिहास पुनीत अति उमहि कही वृषकेतु ।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि राम जनम कर हेतु ॥१५२॥

शब्दार्थ—निकेत=घर । पुरउब=पूरी करूँगा । अनयासा=बिना किसी कष्ट के । अपर=अन्य, दूसरा ।

भावार्थ—भगवान् मनु को कह रहे हैं—मैं अपनी इच्छा से मनुष्य शरीर धारण कर तुम्हारे घर प्रकट होऊँगा और हे तात ! मैं अपने अंशो-सहित देह धारण करके भक्तो को सुख देने वाले चरित्र करूँगा, जिसे सुनकर जो भाग्यशाली लोग हैं, वे मोह मद त्याग कर भव-सागर के पार हो जायेंगे । आदि शक्ति भी, जो मेरी माया है और जिसने ससार को उत्पन्न किया है, मेरे साथ अवतार लेगी । इस प्रकार मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूँगा । जो कुछ मैं कह रहा हूँ, सत्य है, बार बार ऐसा कह कर भगवान जो कृपा के निधि हैं, अन्तर्धान हो गये ।

वे स्त्री-पुरुष (राजा-रानी) भक्तों पर कृपा करनेवाले भगवान् को हृदय मे धारण करके कुछ काल तक उस आश्रम मे रहे । फिर उन्होंने समय पाकर, बिना किसी कष्ट के शरीर को छोडकर, अमरावती (इन्द्र की पुरी) मे जाकर वास किया ।

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे भरद्वाज ! इस पवित्र इतिहास को महादेवजी ने उमा से कहा था ।

अब तुम श्रीराम के अवतार लेने का एक कारण और सुनो ।

काव्य-सौंदर्य—अनुप्रास, लाटानुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश अलकार ।

चौ०—सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी । जो गिरिजा प्रति सभु बखानी ॥
बिस्व बिदित एक कैकय देसू । सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू ॥१॥
धरम धुरंधर नीति निधाना । तेज प्रताप सील बलवाना ॥
तेहि कें भए जुगल सुत बीरा । सब गुन धाम महा रनधीरा ॥२॥
राज धनी जो जेठ सुत आही । नाम प्रतापभानु अस ताही ॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा । भुजबल अतुल अचल संग्रामा ॥३॥
भाइहि भाइहि परम समीती । सकल दोष छल बरजित प्रीती ॥
जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा । हरि हित आपु गवन बन कीन्हा ॥४॥

नृप धरम जे वेद बखाने। सकल करइ सादर सुख माने ॥
दिन प्रति देइ विविध विधि दाना। सुनइ सास्त्र वर वेद पुराना ॥३॥
नाना वापीं कूप तड़ागा। सुमन वाटिका सुंदर बागा ॥
विप्रभवन सुरभवन सुहाए। सब तीरथन्ह विचित्र बनाए ॥४॥

दो०—जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग।
वार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग ॥१५५॥

शब्दार्थ—कामधेनु=मनचाही वस्तु देनेवाली। भै=हो गई। महिदेवा=ब्राह्मण। वापी=बावड़ी। सुर भवन=देव मन्दिर। जाग=यज्ञ।

भावार्थ—राजा प्रतापभानु का बल पाकर भूमि सुन्दर कामधेनु बन गई। उनके राज्य में प्रजा सब प्रकार से सुखी थी, सब स्त्री पुरुष सुन्दर और धर्मात्मा थे। मन्त्री धर्मरुचि की हरि के चरणों में प्रीति थी। वह राजा के हित के लिए सदा उसको नीति की बातें सिखाया करता था। राजा सदा गुरु, देवता, संत, पितर और ब्राह्मण—इन सब की सेवा करता रहता था। वह वेदों में वर्णित राज-धर्म का पालन करता था और ऐसा करने में उसको सुख का अनुभव होता था। वह प्रतिदिन अनेक प्रकार का दान देता था और उत्तम शास्त्र, वेद और पुराण सुना करता था।

उसने सार्वजनिक हित को दृष्टि में रख कर अनेक बावड़ियाँ, कुएँ, तालाब, पुष्पवाटिकाएँ, सुन्दर बगीचे, ब्राह्मणों के लिए सुन्दर घर तथा देव-मन्दिर सब तीर्थों में बनवा दिए थे। वेद पुराणों में जितने प्रकार के यज्ञ कहे गए हैं, राजा ने उन सबको बड़े प्रेम से हजार-हजार बार कर डाले थे।

काव्य-सौन्दर्य—शब्दानुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार।

चौ०—हृदयँ न कछु फल अनुसंधाना। नृप विवेकी परम सुजाना ॥
करइ जे धरम करम मन बानी। वासुदेव अर्पित नृप ग्यानी ॥१॥
चढ़ि वर बाजि बार एक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा ॥
बिंध्याचल गभीर बन गयऊ। मृग पुनीत बहु मारत भयऊ ॥२॥
फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू ॥
बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं। मनहुँ क्रोध बस उगिलत नाहीं ॥३॥

कोल कराल दसन छवि गाई। तनु बिसाल पीवर अधिकाई॥
घुरुघुरात हय आरौ पाएँ। चकित बिलोकत कान उठाएँ॥४॥
दो०–नील महीधर सिखर सम देखि बिसाल बराहु।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप हाँकि न होइ निबाहु॥१५६॥

शब्दार्थ—अनुसधाना=टोह, कामना। वाजि=घोडा। मृगया=शिकार। बराह=सूअर। दुरेउ=छिप गया। बिधु=चन्द्रमा। कोल=सूअर। कराल=भयकर। दशन=दाँत। पीवर=मोटा। हय=घोडा। आरौ=आहट। महीधर=पर्वत। चपरि=शीघ्र। सुटुकि=चाबुक। हाँकि=ललकार कर।

भावार्थ—राजा प्रतापभानु सब प्रकार से सतुष्ट था, उसके हृदय मे किसी फल की कामना न थी। वह बडा विवेकशील और ज्ञानी था। वह मन, वचन और कर्म से जो कुछ भी धर्म करता था, उसे वह भगवान् वासुदेव के अर्पित कर देता था। एक बार वह राजा एक अच्छे घोडे पर सवार होकर, शिकार का सब सामान सजा कर विन्ध्याचल के घने जगल मे चला गया और वहाँ उसने बहुत से पवित्र हिरण मारे।

वन मे फिरते हुए राजा ने एक सूअर को देखा, वह ऐसा लगता था मानो चन्द्रमा को ग्रस कर राहु वन मे जा छिपा हो (सूअर के बाहर निकले दाँतो मे चन्द्रमा की कल्पना की गई है।) चन्द्रमा बडा होने से मानो मुख में समाता नही है और वह उसे क्रोधवश उगलता भी नही है।

यह तो सूअर के भयानक दाँतो की शोभा कही गयी। इधर उसका शरीर भी बहुत विशाल और मोटा था। घोडे की आहट पाकर वह घुरघुराता हुआ कान उठाये चौकन्ना होकर देख रहा था।

नील पर्वत के शिखर के समान विशाल शरीरवाले उस सूअर को देखकर राजा घोडे को चाबुक लगा कर तेजीसे चला और उसने सूअर को ललकारा कि अब तेरा बचाव नही हो सकता।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास, उत्प्रेक्षा और उपमा अलकार।

चौ०–आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ बराह मरुत गति भाजी॥
तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना॥१॥

तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा॥
प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिस बस भूप चलेउ संग लागा॥२॥
गयउ दूरि घन गहन बराहू। जहँ नाहिन गज बाजि निबाहू॥
अति अकेल बन बिपुल कलेसू। तदपि न मृग मग तजइ नरेसू॥३॥
कोल बिलोकि भूप बड धीरा। भागि पैठ गिरिगुहाँ गभीरा॥
अगम देखि नृप अति पछताई। फिरेउ महाबन परेउ भुलाई॥४॥
दो०–खेद खिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत।
खोजत ब्याकुल सरित सर जल बिनु भयउ अचेत॥१५७॥

शब्दार्थ—रव=घोडे के टापो की आवाज। वाजी=घोडा। मरुत= हवा। वाना=वाण। कोल=सूअर। गिरिगुहाँ=पहाड की गुफा। परेउ भुलाई= रास्ता भूल गया। खेद खिन्न=श्रम से अत्यधिक थका हुआ।

भावार्थ—आते हुए घोडे की टापो को सुनकर सूअर हवा की चाल से भागा। उसे भागते देखकर राजा ने तुरन्त वाण सधान लिया। वाण को देखते ही वह धरती मे दुबक गया। राजा ने तक तक कर तीर चलाया। परन्तु छल करके सूअर ने अपने शरीर को बचा लिया। भागता हुआ सूअर कभी छिप जाता था और कभी प्रकट हो जाता था। राजा भी क्रोध वश उसके साथ पीछे लगा चला जाता था।

चलते चलते सूअर एक ऐसे घने जगल मे जा पहुँचा जहां हाथी और घोडे की पहुँच नही हो सकती थी, राजा बिल्कुल अकेला था और वन मे अनेक कष्ट थे, फिर भी राजा ने सूअर का पीछा करना नही छोडा। राजा को बड धैर्यवान देखकर सूअर भाग कर पहाड की एक गुफा मे जो बहुत गहरी थी जा घुसा। उसमे जाना कठिन देखकर राजा पछताया और लौट आया। किन्तु उस घोर वन मे वह रास्ता भूल गया।

राजा बहुत दुखी और थका हुआ था, वह घोडे सहित भूख और प्यास मे व्याकुल था, वह पानी के लिए नदी और सरोवर खोजते-खोजते बिना पानी अचेत हो गया।

चौ०–फिरत बिपिन आश्रम एक देखा। तहँ बस नृपति कपट मुनिबेषा॥
जासु देस नृप लीन्ह छडाई। समर सेन तजि गयउ पराई॥१॥

समय प्रतापभानु कर जानी। आपनि अति असमय अनुमानी॥
गयउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी॥२॥
रिस उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसइ तापस कें साजा॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रतापरबि तेहिं तब चीन्हा॥३॥
राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। देखि सुबेष महामुनि जाना॥
उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निज नामा॥४॥

शब्दार्थ—लीन्ह छड़ाई=छीन लिया। चीन्हा=पहिचान लिया। तुरग=घोड़ा। हय=घोड़ा।

भावार्थ—वन में फिरते फिरते उसने एक आश्रम देखा, वहां कपट से मुनि का वेष बनाए एक राजा रहता था, जिसका देश राजा प्रतापभानु ने छीन लिया था और जो सेना को छोड़ कर युद्ध से भाग गया था।

प्रतापभानु का समय (अच्छे दिन) जान कर और अपना कुसमय (बुरे दिन) अनुमान कर उसके मन में बड़ी ग्लानि हुई। इससे वह न तो घर गया और न अभिमानी होने के कारण राजा प्रतापभानु से ही मिला अर्थात् मेल किया।

दरिद्र की भांति मन ही में क्रोध को मार कर वह राजा तपस्वी के वेष में वन में रहता था। राजा प्रतापभानु उसी के पास गया। उसने तुरन्त पहिचान लिया कि यह प्रतापभानु है।

राजा प्यासा होने के कारण व्याकुलता में उसे पहचान न सका। सुन्दर वेष देखकर राजा ने उसे महामुनि समझा और घोड़े से उतर कर उसे प्रणाम किया। परन्तु बड़ा चतुर होने के कारण राजा ने उसे अपना नाम नहीं बतलाया।

दो०—भूपति तृषित बिलोकि तेहिं सरबरु दीन्ह देखाइ॥
मज्जन पान समेत हय कीन्ह नृपति हरषाइ॥१५८॥

भावार्थ—राजा को प्यासा देख कर उसने सरोवर दिखला दिया। हर्षित होकर राजा ने घोड़े सहित उसमें स्नान और जलपान किया।

चौ०—गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निज आश्रम तापस लै गयऊ॥
आसन दीन्ह अस्त रबि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी॥१॥

को तुम्ह कस बन फिरहु अकेलें। सुंदर जुवा जीव परहेलें ॥
चक्रवर्ति के लच्छन तोरें। देखत दया लागि अति मोरें ॥२॥
नाम प्रतापभानु अवनीसा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा ॥
फिरत अहेरें परेउ भुलाई। बड़ें भाग देखेउँ पद आई ॥३॥
हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनिहारा ॥
कह मुनि तात भयउ अँधियारा। जोजन सत्तरि नगरु तुम्हारा ॥४॥

शब्दार्थ—तापस=तपस्वी। जुवा=युवक। जीव पर हेलें=हथेली पर प्राण लिए हुए। अवनीसा=राजा। अहेरें=शिकार के लिए। जोजन=योजन (चार कोस का एक योजन)।

भावार्थ—सारी थकावट मिट गयी, राजा सुखी हो गया। तब तपस्वी उसे अपने आश्रम मे ले गया और सूर्यास्त का समय जानकर उसने राजा को बैठने के लिए आसन दिया। फिर वह तपस्वी कोमल वाणी से बोला—

तुम कौन हो ? सुन्दर युवक होकर, जीवन की परवाह न करके, वन मे अकेले क्यो फिर रहे हो ? तुम्हारे चक्रवर्ती राजा कैसे लक्षण देख कर मुझे बड़ी दया आती है।

राजा ने कहा—हे मुनीश्वर ! सुनिये, प्रतापभानु नाम का एक राजा है, मैं उसका मन्त्री हूँ। शिकार के लिये फिरते हुए राह भूल गया हूँ। बड़े भाग्य से यहाँ आकर मैंने आपके चरणो के दर्शन पाये है।

हमे आपका दर्शन दुर्लभ था, इससे जान पडता है कुछ भला होने वाला है। मुनि ने कहा—हे तात ! अँधेरा हो गया। तुम्हारा नगर यहाँ से सत्तर योजन पर है।

दो०—निसा घोर गभीर बन पंथ न सुनहु सुजान।
बसहु आजु अस जानि तुम्ह जाएहु होत बिहान ॥१५९(क)॥

भावार्थ—हे सुजान ! सुनो, घोर अँधेरी रात है, घना जगल है, रास्ता नही है। ऐसा समझ कर तुम आज यही ठहर जाओ, सवेरा होते ही चले जाना।

दो०—तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलइ सहाइ।
आपुन आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाइ ॥१५९(ख)॥

भावार्थ— तुलसीदास जी कहते हैं—जैसी भवितव्यता (होनहार) होती है, वैसी ही सहायता मिल जाती है। या तो वह आप ही उसके पास आती है, या उसको वहाँ ले जाती है।

चौ०—भलेहिं नाथ आयसु धरि सीसा। बाँधि तुरग तरु बैठ महीसा॥
नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही। चरन बंदि निज भाग्य सराही॥१॥
पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करउँ ढिठाई॥
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी॥२॥
तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना। भूप सुहृद सो कपट सयाना॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज काजा॥३॥
समुझि राजसुख दुखित अराती। अवाँ अनल इव सुलगइ छाती॥
सरल बचन नृप के सुनि काना। बयर सँभारि हृदयँ हरषाना॥४॥
दो०—कपट बोरि बानी मृदुल बोलेउ जुगुति समेत।
नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत॥१६०॥

शब्दार्थ— भलेहिं=बहुत अच्छा। आयसु=आज्ञा। तुरंग=घोड़ा। अराती=शत्रु। बयर=बैर। बोरि=डुबो कर। निकेत=घर।

भवार्थ राजा प्रतापभानु कह रहा है—

हे नाथ! बहुत अच्छा, ऐसा कह कर और उसकी आज्ञा सिर चढ़ा कर, घोड़े को वृक्ष से बाँधकर राजा बैठ गया। राजा ने उसकी बहुत प्रकार से प्रशंसा की और उसके चरणों की वन्दना करके अपने भाग्य की सराहना की।

फिर सुन्दर कोमल वाणी में कहा—हे प्रभो! आपको पिता जानकर मैं ढिठाई करता हूँ। हे मुनिश्वर! मुझे अपना पुत्र और सेवक जान कर अपना (?) नाम(धाम) विस्तार से बतलाइये।

राजा ने उसको नहीं पहचाना, पर वह राजा को पहचान गया था। राजा तो शुद्ध हृदय था और वह कपट करने में चतुर था। एक तो वैरी, फिर जाति का क्षत्रिय, फिर राजा। वह छल-बल से अपना काम बनाना चाहता था। राजा प्रतापभानु से बदला लेकर अपने छीने गये राज्य को पुन प्राप्त करना चाहता था।

वह शत्रु (राजा) अपने राज्य-सुख का स्मरण करके बड़ा दुःखी था। कुम्हार के आँवे की आग की तरह उसकी छाती भीतर-ही-भीतर सुलग रही थी। प्रतापभानु के निष्कपट वचनों को सुनकर तथा अपने वैर का स्मरण करके वह हृदय में बड़ा प्रसन्न हुआ।

वह शत्रु राजा कपट-भरी युक्ति-पूर्ण कोमल वाणी से बोला—अब हमारा नाम भिखारी है, हम निर्धन हैं और हमारे घर-द्वार कुछ भी नहीं है।

काव्य-सौंदर्य—अनुप्रास और उपमा अलंकार।

चौ०—कह नृप जे बिग्यान निधाना। तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना॥
सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ। सब बिधि कुसल कुबेष बनाएँ॥१॥
तेहि तें कहहिं संत श्रुति टेरें। परम अकिंचन प्रिय हरि केरें॥
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरंचि सिवहि संदेहा॥२॥
जोसि सोसि तव चरन नमामी। मो पर कृपा करिअ अब स्वामी॥
सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु बिषय बिस्वास बिसेषी॥३॥
सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई॥
सुनु सतिभाउ कहउँ महिपाला। इहाँ बसत बीते बहु काला॥४॥

शब्दार्थ—सारिखे=सदृश। दुराएँ=छिपाये रहते हैं। अकिंचन=गरीब। अगेहा=घर-रहित। बिरंचि=ब्रह्मा। जोसि सोसि=आप जो कोई भी हों। अपनाई=अपने वश में करके। सतिभाउ=सत्य।

भावार्थ—राजा प्रतापभानु ने कपटवेषी मुनि से कहा—

जो आपके सदृश विज्ञान के निधान और सर्वथा अभिमान रहित होते हैं, वे अपने स्वरूप को सदा छिपाये रहते हैं। क्योंकि कुवेष बनाकर रहने में ही सब तरह का कल्याण है (प्रकट संतवेष में मान होने की सम्भावना है और मान से पतन की।)

इसी से तो संत और वेद पुकारकर कहते हैं कि परम अकिञ्चन सर्वथा अहंकार, ममता और मान रहित ही भगवान को प्रिय होते हैं। आप सरीखे निर्धन, भिखारी और गृहहीनों को देखकर ब्रह्मा और शिवजी को भी सन्देह हो जाता है कि ये वास्तविक संत हैं या भिखारी।

आप जो हों सो हो (अर्थात् जो कोई भी हों), मै आपके चरणो मे नमस्कार करता हूँ। हे स्वामी! अब मुझ पर कृपा कीजिए। अपने ऊपर राजा की स्वाभाविक प्रीति और अपने विषय मे उसका अधिक विश्वास देख-कर सब प्रकार से राजा को अपने वश मे करके, अधिक स्नेह दिखाता हुआ वह (कपट तपस्वी) बोला हे राजन! सुनो, मै तुमसे सत्य कहता हूँ, मुझे यहाँ रहते बहुत समय बीत गया।

दो०–अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ मैं न जनावउँ काहु।
लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु ॥१६१(क)॥

सो०–तुलसी देखि सुवेषु भूलहिं मूढ न चतुर नर।
सुंदर केकिहि पेखु बचन सुधा सम असन अहि ॥१६१(ख)॥

शब्दार्थ—अनल=अग्नि। कानन=वन। पेखु=देखो। केकिहि=मयूर को। असन=भोजन, अहार। अहि=सर्प।

भावार्थ—अब तक न तो कोई मुझसे मिला और न मैं अपने को किसी पर प्रकट करता हूँ, क्योंकि लोक मे प्रतिष्ठा अग्नि के समान है। जो तपरूपी वन को भस्म कर डालती है।

तुलसीदासजी कहते हैं—सुन्दर वेष देख कर मूढ नही (मूढ तो मूढ ही है) चतुर मनुष्य भी धोखा खा जाते है। सुन्दर मोर को देखो, उसका वचन अमृत के समान है और आहार साँप का है।

काव्यसौन्दर्य—उपमा और रूपक अलकार।

चौ०–तातें गुपुत रहउँ जग माहीं। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं॥
प्रभु जानत सब बिनहिं जनाएँ। कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएँ॥१॥
तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरें। प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरें॥
अब जौं तात दुरावउँ तोही। दारुन दोष घटइ अति मोही॥२॥
जिमि जिमि तापसु कथइ उदासा। तिमि तिमि नृपहि उपज बिस्वासा॥
देखा स्वबस कर्म मन बानी। तब बोला तापस बगध्यानी॥३॥
नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई॥
कहहु नाम कर अरथ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी॥४॥

दो०—आदिसृष्टि उपजी जबहिं तब उतपति भै मोरि ।
नाम एक तनु हेतु तेहि देह न धरी बहोरि ॥१६२॥

शब्दार्थ—सुचि=पवित्र । दुराऊ=छिपाऊ । बगध्यानी=कपटी । भै=हुई थी । मोरि=मेरी । बहोरि=फिर ।

भावार्थ—कपटवेषधारी मुनि ने राजा प्रतापभानु से कहा—इसी कारण मैं ससार मे छिपकर रहता हूँ । मुझे श्री हरि के सिवाय किसी से कोई प्रयोजन नही है । भगवान तो बिना जनाये ही सब जानते हैं, फिर कहो, ससार को रिझाने मे लाभ ही क्या ? तुम पवित्र और सुन्दर बुद्धिवाले हो और इसी कारण तुम मुझे बहुत ही प्रिय लगते हो और तुम्हारा प्रेम और विश्वास भी मुझ पर अधिक है । हे तात ! अब यदि मै तुमसे कुछ छिपाता हूँ तो मुझे बहुत ही भयकर दोष लगेगा ।

जैसे जैसे वह कपटी मुनि उदासीनता की बातें कहता जाता था, वैसे ही वैसे राजा प्रतापभानु का विश्वास उस पर जमता जाता था । जब उस बकध्यानी (कपटी मुनि) ने राजा को कर्म, मन और वचन से अपने वश में जान लिया, तब वह बगुला-भगत बोला—'हे भाई ! हमारा नाम एकतनु है ।' यह सुनकर राजा ने फिर प्रणाम किया और कहा—आप मुझे अपना अत्यन्त अनुरागी सेवक समझकर अपने इस नाम का अर्थ तो बताइए ।

तब कपटीमुनि ने कहा—जब सबसे पहले सृष्टि की रचना हुई थी, तभी मेरी उत्पत्ति हुई थी । तबसे मै ने फिर दूसरी देह धारण नही की । इसी कारण मेरा नाम 'एकतनु' है ।

काव्यसौन्दर्य—अनुप्रास अलंकार ।

चौ०—जनि आचरजु करहु मन माहीं । सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तपबल तें जग सृजइ बिधाता । तपबल बिष्नु भए परित्राता ॥१॥
तपबल संभु करहिं संघारा । तप तें अगम न कछु संसारा ॥
भयउ नृपहि सुनि अति अनुरागा । कथा पुरातन कहै सो लागा ॥२॥
करम धरम इतिहास अनेका । करइ निरूपन बिरति बिबेका ॥
उदभव पालन प्रलय कहानी । कहेसि अमिति आचरज बखानी ॥३॥
सुनि महीप तापस बस भयऊ । आपन नाम कहन तब लयऊ ॥
कह तापस नृप जानउँ तोही । कीन्हेहु कपट लाग भल मोही ॥४॥

सो०—सुनु महीस असि नीति जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप ।
मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता बिचारि तव ॥१६३॥

शब्दार्थ—परित्राता=रक्षा या पालन करने वाला । पुरातन=पुरानी ।

भावार्थ—कपट वेषधारी मुनि राजा प्रतापभानु से कह रहा है—हे पुत्र ! मेरी बातें सुनकर तुम आश्चर्य प्रकट न करो, क्योंकि तप से ससार मे कुछ भी दुर्लभ नही है । तप के बल से विधाता ससार की रचना करता है । तप के ही बल से विष्णु ससार की रक्षा करता है । तप के बल से ही शभु रुद्र रूप धारण कर सृष्टि का सहार करता है । ससार मे ऐसी कोई वस्तु नही है जो तप से न प्राप्त हो सके । कपटी मुनि की ये बातें सुनकर राजा को बडा अनुराग उत्पन्न हुआ । तब वह कपटी मुनि राजा को पुरानी कथाए कहने लगा । कर्म और धर्म का अनेक प्रकार का इतिहास कह कर वह वैराग्य और ज्ञान का निरुपण करने लगा । तदनन्तर उसने सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और प्रलय की अपार आश्चर्य भरी कथाए विस्तार पूर्वक कही । उसकी ये सब बाते सुनकर राजा उस तपस्वी के वश मे हो गया और तब वह उसे अपना नाम बताने लगा ।

कपटी तपस्वी ने कहा—

हे राजन् ! सुनो, ऐसी नीति है कि राजा लोग जहा तहा अपना नाम नही कहते । तुम्हारी वही चतुराई समझकर तुम पर मेरा बडा प्रेम हो गया है ।

चौ०—नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा । सत्यकेतु तव पिता नरेसा ॥
गुर प्रसाद सब जानिअ राजा । कहिअ न आपन जानि अकाजा ॥१॥
देख तात तव सहज सुधाई । प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई ॥
उपजि परी ममता मन मोरें । कहउँ कथा निज पूछे तोरें ॥२॥
अब प्रसन्न मैं ससय नाहीं । मागु जो भूप भाव मन माही ॥
मुनि सुबचन भूपति हरषाना । गहि पद बिनय कीन्हि बिधि नाना ॥३॥
कृपासिंधु मुनि दरसन तोरें । चारि पदारथ करतल मोरें ॥
प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी । मागि अगम बर होउँ असोकी ॥४॥

दो०—जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ।
एकछत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ ॥१६४॥

शब्दार्थ—प्रतापदिनेशा = प्रतापभानु। अकाजा=हानि, अमंगल। सुधाई=सीधापन। भाव=अच्छा लगे। कलप=कल्प।

भावार्थ—छद्मवेशी मुनि कह रहा है—तुम्हारा नाम प्रतापभानु है, तुम्हारे पिता सत्यकेतु नरेश थे। हे राजन् ! मैं गुरु की कृपा से सब जानता हूँ, किन्तु मैं अपनी हानि समझ कर कहता नहीं। हे तात ! तुम्हारी स्वाभाविक सरलता देखकर तथा प्रेम, विश्वास और नीति में निपुणता अवलोकन कर मेरे मन में तुम्हारे ऊपर बड़ी ममता उत्पन्न हो गई है। इसीलिए मैं पूछने पर अपनी कहता हूँ।

अब मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, तुम किसी प्रकार का संदेह मत करना। हे राजन् ! जो तुम्हारे मन को अच्छा लगे, वही माग लो। कपटी मुनि के प्रिय वचन सुनकर राजा हर्षित हो गया और मुनि के पैर पकड़ कर उसने अनेक प्रकार से उसकी विनती की। वह बोला—हे दयासागर मुनि ! आपके दर्शनों से ही मुझे चारों पदार्थ मिल गए हैं। फिर भी स्वामी को प्रसन्न देख कर मैं यह दुर्लभ वर माग कर क्यों न शोक रहित हो जाऊँ ?

वर जो मागा गया, इस प्रकार है—यह मेरा शरीर वृद्धावस्था, मृत्यु और दुख से रहित हो जाय, युद्ध में मुझे कोई जीत न सके। पृथ्वी पर मेरा सौ कल्प तक एक छत्र अकंटक राज्य हो।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलंकार।

चौ०—कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। कारन एक कठिन सुनु सोऊ ॥
कालउ तुअ पद नाइहि सीसा। एक विप्रकुल छाडि महीसा ॥१॥
तपबल विप्र सदा बरिआरा। तिन्ह के कोप न कोउ रखवारा ॥
जौं विप्रन्ह बस करहु नरेसा। तौ तुअ बस बिधि बिष्नु महेसा ॥२॥
चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई। सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई ॥
बिप्र श्राप बिनु सुनु महिपाला। तोर नास नहिं कवनेहुँ काला ॥३॥
हरषेउ राउ बचन सुनि तासू। नाथ न होय मोर अब नासू ॥
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना। मो कहुँ सर्व काल कल्याना ॥४॥

दो०–एवमस्तु कहि कपटमुनि बोला कुटिल वरोरि।
मिलब हमार भुलाव निज कहहु त हमहि न खोरि ॥१६५॥

शब्दार्थ—वरिआरा=बलवान। वरिआई=जोर जबरदस्ती। एवमस्तु=ऐसा ही हो। भुलाव=राह भूल जाना। खोरि=दोष।

भावार्थ—कपटीमुनि राजा प्रतापभानु से कह रहा है—हे राजन्! ऐसा ही हो पर एक वात कठिन है, उसे भी सुन लो। हे पृथ्वी के स्वामी केवल ब्राह्मण कुल को छोड कर काल भी तुम्हारे चरणो पर सिर नवायेगा।

तप के वल से ब्राह्मण सदा वलवान रहते हैं। उनके क्रोध से रक्षा करनेवाला कोई नही है। हे नरपति! यदि तुम ब्राह्मणो को वश मे करलो तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी तुम्हारे अधीन हो जायेंगे।

ब्राह्मण कुल के साथ जोर जबरदस्ती नही चल सकती—यह सत्य बात मै दोनों भुजा उठाकर कहता हूँ। हे पृथ्वी पालक! सुनो, बिना ब्राह्मण के शाप के तुम्हारा नाश किसी भी काल में नही होगा।

राजा उसके वचन सुनकर बडा प्रसन्न हुआ और बोला—हे नाथ! अब मेरा नाश नही होगा। हे कृपा-निधि प्रभो! आपकी कृपा से सदा मेरा कल्याण ही होगा।

एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर वह कुटिल कपटी मुनि फिर बोला किंतु तुम मेरे मिलने तथा अपने राह भूल जाने की वात किसी से कहना नही, यदि कह दोगे, तो हमारा दोष नही होगा।

चौ०–तातें मै तोहि बरजउँ राजा। कहे कथा तव परम अकाजा॥
छठें श्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी॥१॥
यह प्रगटें अथवा द्विजश्रापा। नास तोर सुनु भानुप्रतापा॥
आन उपायँ निधन तव नाहीं। जौं हरि हर कोपहिं मन माहीं॥२॥
सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा। द्विज गुर कोप कहहु को राखा॥
राखइ गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जगत्राता॥३॥
जौं न चलब हम कहे तुम्हारें। होउ नास नहिं सोच हमारें॥
एकहिं डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा॥४॥

दो०-होंहि बिप्र बस कवन बिधि कहहु कृपा करि सोउ।
तुम्ह तजि दीनदयाल निज हितू न देखउँ कोउ ॥१६६॥

शब्दार्थ—अकाजा=हानि। निधन=मृत्यु। भाषा=कहा।

भावार्थ—कपटीमुनि राजा प्रतापभानु से कह रहा है—हे राजन्! मैं तुमको इसलिए मना करता हूँ कि इस प्रसङ्ग को कहने से तुम्हारी बड़ी हानि होगी। छठे कान में वह बात पड़ते ही तुम्हारा नाश हो जायगा, मेरा यह वचन सत्य जानना।

हे प्रतापभानु! सुनो, तुम्हारा विनाश दो ही तरह से हो सकता है—या तो इस बात को प्रकट करने से या ब्राह्मणों के शाप से। अन्य किसी तरह से तुम्हारा नाश नहीं हो सकता। यदि ब्रह्मा या शंकर भी मन में क्रोध करलें, तो भी तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी। यह सुनकर राजा ने मुनि के चरण पकड़कर कहा-हे स्वामी! सत्य ही है। ब्राह्मण और गुरु के क्रोध से कहिये, कौन रक्षा कर सकता है? यदि ब्रह्मा भी क्रोध करें तो गुरु बचा लेते हैं, पर गुरु से विरोध करने पर जगत् में कोई भी बचानेवाला नहीं है।

यदि मैं आपके कथन के अनुसार नहीं चलूँगा, तो भले ही मेरा नाश हो जाय, मुझे इसकी चिंता नहीं है। मेरा मन तो हे प्रभो! केवल एक ही डर से डर रहा है कि ब्राह्मणों का शाप बड़ा भयानक होता है।

अब आप कृपा करके मुझे बतलाइए कि ब्राह्मण किस प्रकार वश में हो सकते हैं। हे दीनों पर दया करनेवाले! मैं आपको छोड़कर अन्य किसी को अपना हितैषी नहीं देखता।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और यमक अलङ्कार।

चौ०-सुनु नृप बिबिध जतन जग माहीं। कष्टसाध्य पुनि होंहि कि नाहीं॥
अहइ एक अति सुगम उपाई। तहाँ परन्तु एक कठिनाई॥१॥
मम आधीन जुगुति नृप सोई। मोर जाब तव नगर न होई॥
आजु लगें अरु जब तें भयऊँ। काहू के गृह ग्राम न गयऊँ॥२॥
जौं न जावँ तव होइ अकाजू। बना आइ असमंजस आजू॥
सुनि महीस बोलेउ मृदु बानी। नाथ निगम असि नीति बखानी॥३॥

बड़े सनेह लघुन्ह परे करही । गिर निज सिरनि सदा तृन धरहीं ।।
जलधि अगाध मौलि वह फेनू । संतत धरनि धरत सिर रेनू ।।४।।
दो०—अस कहि गहे नरेस पद स्वामी होहु कृपाल ।
मोहि लागि दुख सहिअ प्रभु सज्जन दीनदयाल ।।१६७।।

शब्दार्थ—असमजस=द्विविधा । मौलि=मस्तक पर । वह=धारण करता है । फेनू (फेन)=झाग ।

भावार्थ—कपटीमुनि ने राजा प्रतापभानु से कहा—हे राजन् ! सुनो, ससार मे उपाय तो बहुत है, पर वे कष्टसाध्य हैं (बडी कठिनता से बनने मे आते हैं) और इस पर भी सिद्ध हो या न हो (उसकी सफलता निश्चित नही है) । हा, एक उपाय बहुत सरल है, परन्तु उसमे भी एक कठिनता है ।

हे राजन् ! वह युक्ति तो मेरे हाथ मे है, पर मेरा जाना तुम्हारे नगर मे हो नही सकता । जब से पैदा हुआ हू, तब से आज तक मैं किसी के घर अथवा गाँव नही गया । परन्तु यदि नही जाता हू तो तुम्हारा काम बिगड़ता है मैं आज बडी द्विविधा मे पड गया हू । यह सुनकर बडे कोमल शब्दो मे राजा ने कहा—हे नाथ ! वेद मे यह नीति कही गई है कि—बडे लोग छोटो पर स्नेह करते ही हैं । पर्वत अपने सिरो पर तथा तृण (घास) को धारण किये रहते हैं । अगाध समुद्र अपने मस्तक पर फेन को धारण करता है और धरनी अपने सिर पर सदा धूलि को धारण किए रहती है ।

ऐसा कह कर राजा ने कपटीमुनि के चरण पकड लिए और कहा —हे स्वामी ! कृपा कीजिए । आप सज्जन है, दीनो पर दया करने वाले है । मेरे लिए आप कष्ट सहन कीजिए ।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और दृष्टान्त अलकर ।

चौ०—जानि नृपहि आपन आधीना । बोला तापस कपट प्रवीना ।
सत्य कहउँ भूपति सुनु तोही । जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही ।।१।।
अवसि काज मैं करिहउँ तोरा । मन तन बचन भगत तैं मोरा ।।
जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ । फलइ तबहिं जब करिअ दुराऊ ।।२।।
जौं नरेस मैं करौं रसोई । तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई ।।
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई । सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई ।।३।।

पुनि तिन्ह के गृह जेवँइ जोऊ। तव बस होइ भूप सुनु सोऊ॥
जाइ उपाय रचहु नृप एहू। संवत भरि संकल्प करेहू॥४॥

दो०–नित नूतन द्विज सहस सत बरेहु सहित परिवार।
मैं तुम्हरे संकल्प लगि दिनहिं करबि जेवनार॥१६८॥

भावार्थ—राजा को सब तरह से अपने वश मे जानकर कपटीमुनि उसे ब्राह्मणो को वश मे करने का उपाय बता रहा है। उसने प्रतापभानु से कहा–हे राजन्! सुनो मैं तुमसे सत्य कहता हू कि संसार मे मेरे लिए कोई वस्तु अलभ्य नहीं है। मैं तुम्हारा काम अवश्य करूगा, क्योंकि तुम मेरे मन, वचन, कर्म से भक्त हो। किन्तु योग, युक्ति, तप और मन्त्रो का प्रभाव तभी फलीभूत होता है जब वे गुप्त रखकर किये जाते हैं।

हे राजन्! यदि मैं रसोई बनाऊ और तुम परोसो और मुझको कोई न जाने, तो जो उस अन्न को खायेगा, वह तुम्हारे वश मे हो जायगा। हे राजन्! तुम घर जाकर यही उपाय करो और वर्षभर ब्राह्मणो को भोजन कराने का संकल्प करलो।

तुम नित्य नये एक लाख ब्राह्मणों को कुटुम्ब सहित निमन्त्रित करना और मैं तुम्हारे संकल्प काल तक अर्थात् एक साल तक भोजन बना दिया करूँगा।

चौ०–एहि विधि भूप कष्ट अति थोरें। होइहहिं सकल विप्र बस तोरें॥
करिहहिं विप्र होम मख सेवा। तेहिं प्रसंग सहजेहिं बस देवा॥१॥
और एक तोहि कहउँ लखाऊ। मैं ऐहि बेष न आउब काऊ॥
तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया। हरि आनब मैं करि निज माया॥२॥
तपबल तेहि करि आपु समाना। रखिहउँ इहाँ बरष परवाना॥
मैं धरि तासु बेषु सुनु राजा। सब विधि तोर सँवारब काजा॥३॥
गै निसि बहुत सयन अब कीजे। मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे॥
मैं तपबल तोहि तुरग समेता। पहुँचैहउँ सोवतहि निकेता॥४॥

दो०–मैं आउब सोइ बेषु धरि पहिचानेहु तब मोहि।
जब एकान्त बोलाइ सब कथा सुनावौं तोहि॥१६९॥

शब्दार्थ—मख=यज्ञ। लखाऊ=पहचान। हरि आनव=हर लाऊंगा। बरष परवाना=वर्ष प्रमाण (एक वर्ष तक) सवारव=सिद्ध करूंगा। तुरग=घोड़ा। निकेता=घर।

भावार्थ—कपटीमुनि ने राजा प्रतापभानु से कहा-हे राजन्! इस प्रकार अत्यन्त थोड़े से कष्ट से ही सारे ब्राह्मण तेरे वश में हो जावेंगे। ब्राह्मण हवन, यज्ञ और सेवा पूजा करेंगे, इससे देवता भी सहज ही वश में हो जायेंगे।

मैं तुमको एक और पहचान बता देता हूं कि मैं कभी इस रूप में नहीं आऊंगा। हे राजन्! मैं अपनी माया से तुम्हारे पुरोहित को हर लाऊंगा। उसको तप के बल से मैं अपने समान बनाकर यहां एक वर्ष रखूंगा, और मैं स्वयं उसका रूप धर कर सब प्रकार से तुम्हारा कार्य सिद्ध करूंगा।

हे राजन् अब रात बहुत बीत गई, इसलिए सो जाओ। हे राजन्! अब तीसरे दिन तुम्हारी हमारी मुलाकात होगी। मैं तप के बल से तुम्हें घोड़े सहित सोते ही मैं घर पहुँचा दूंगा।

मैं तुम्हारे यहां तुम्हारे पुरोहित के वेश में आऊंगा और जब तुमको एकान्त में बुलाकर सब कथा सुनाऊं, तब तुम मुझे पहचान लेना।

चौ०—सयन कीन्ह नृप आयसु मानी। आसन जाय बैठ छलग्यानी॥
श्रमित भूप निद्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकाई॥१॥
कालकेतु निसिचर तहँ आवा। जेहिं सूकर होइ नृपहि भुलावा॥
परम मित्र तापस नृप केरा। जानइ सो अति कपट घनेरा॥२॥
तेहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अति अजय देव दुखदाई॥
प्रथमहिं भूप समर सब मारे। बिप्र संत सुर देखि दुखारे॥३॥
तेहिं खल पाछिल बयरु सँभारा। तापस नृप मिलि मंत्र बिचारा॥
जेहिं रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी बस न जान कछु राऊ॥४॥
दो०—रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु।
अजहुँ देत दुख रवि ससिहि सिर अवसेषित राहु॥१७०॥

शब्दार्थ—सयन (शयन)=सोना। श्रमित=थका हुआ। भुलावा=भटकाया था। पाछिल बयरु=पिछला बैर। सभारा=स्मरण किया। मन्त्र विचारा

=षड्यन्त्र रचना । छय=नाश । सिर अवसेषित=सिर मात्र बचा हुआ ।

भावार्थ—राजा ने आज्ञा मानकर शयन किया और वह कपट-ज्ञानी आसन पर जा बैठा । राजा थका था, उसे खूब गहरी नींद आ गयी । पर वह कपटी कैसे सोता । उसे तो बहुत चिंता हो रही थी ।

उसी समय वहा कालकेतु नामका राक्षस आया, जिसने सूअर बन कर राजा को भटकाया था । वह कपटीमुनि का परम मित्र था और दस भाई थे जो बडे ही दुष्ट थे, किसी से न हारने वाले और देवताओ को दुःख देने वाले थे । ब्राह्मणो, संतो और देवताओ को दुखी देख कर राजा प्रतापभानु ने उन सबको पहले ही युद्ध में मार डाला था ।

उस दुष्ट ने पिछला वैर याद करके तपस्वी राजा से मिलकर सलाह विचारी (षड्यन्त्र किया) और जिस प्रकार शत्रुओ का नाश हो, वही उपाय रचा । भावीवश राजा (प्रतापभानु) कुछ भी न समझ सका ।

तेजस्वी शत्रु अकेला भी हो तो भी उसे छोटा नहीं समझना चाहिए । जिसका सिर मात्र बचा हुआ था, वह राहु आज तक सूर्य चन्द्रमा को दुःख देता है ।

काव्य सौन्दर्य—अनुप्रास और अर्थान्तरन्यास अलकार ।

चौ०—तापस नृप निज सखहि निहारी । हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी ॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई । जातुधान बोला सुख पाई ॥१॥
अब साधउँ रिपु सुनहु नरेसा । जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा ॥
परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई । बिनु औषध बिआधि बिधि खोई ॥२॥
कुल समेत रिपु मूल बहाई । चौथें दिवस मिलब मैं आई ॥
तापस नृपहि बहुत परितोषी । चला महा कपटी अतिरोषी ॥३॥
भानुप्रतापहि बाजि समेता । पहुँचाएसि छन माझ निकेता ॥
नृपहि नारि पहिं सयन कराई । हय गृहँ बाँधेसि बाजि बनाई ॥४॥
दो०—राजा के उपरोहितहि हरि लै गयउ बहोरि ।
लै राखेसि गिरि खोह महुँ मायाँ करि मति भोरि ॥१७१॥

शब्दार्थ—मित्रहि=मित्र को । जातुधान=राक्षस (कालकेतु) । साधउँ=काबू मे रख लूँगा । बिआधि=व्याधि, बीमारी । बाजि=घोडा । हयगृह=घुड-

साल। बनाइ=अच्छी तरह से। बहोरि=फिर। भोरि=भ्रम मे डाल कर। खोह =गुफा।

भावार्थ—कपटीमुनि अपने मित्र कालकेतु को देख कर प्रसन्न हो गया, उठकर उससे मिला तथा सुखी हुआ। अपने मित्र को उसने सारा हाल कह सुनाया। तब राक्षस ने आनन्दित होकर कहा—

हे राजन्! सुनो, जब तुमने मेरे कहने के अनुसार इतना काम कर लिया, तो अब मैंने शत्रु को काबू मे कर ही लिया समझो। तुम अब चिन्ता त्याग कर सो रहो। विधाता ने बिना ही दवा के रोग दूर कर दिया। अब मैं कुटु-म्ब सहित शत्रु का नाश करके चौथे दिन आकर तुम से मिलूँगा। कपटीमुनि (तपस्वी राजा) को इस तरह धैर्य बँधा कर वह महा छली और अत्यन्त क्रोधी राक्षस वहाँ से चल दिया।

उसने प्रतापभानु राजा को घोडे सहित क्षण भर मे घर पहुँचा दिया। राजा को रानी के पास सुलाकर घोडे को अच्छी तरह से घुडसाल मे बान्ध दिया।

फिर वह राजा के पुरोहित को उठा ले गया और माया से उसकी बुद्धि को भ्रम मे डाल कर उसे उसने पहाड की खोह मे ला रक्खा।

चौ०—आपु बिरचि उपरोहित रूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा॥
जागेउ नृप अनभएँ बिहाना। देखि भवन अति अचरजु माना॥१॥
मुनि महिमा मन महुँ अनुमानी। उठेउ गवँहि जेहि जान न रानी॥
कानन गयउ बाजि चढि तेहीं। पुर नर नारि न जानेउ केहीं॥२॥
गएँ जाम जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा॥
उपरोहितहि देख जब राजा। चकित बिलोक सुमिरि सोइ काजा॥३॥
जुग सम नृपहि गए दिन तीनी। कपटी मुनि पद रह मति लीनी॥
समय जानि उपरोहित आवा। नृपहि मते सब कहि समुझावा॥४॥
दो०-नृप हरषेउ पहिचानि गुरु भ्रम बस रहा न चेत।
बरे तुरत सत सहस बर बिप्र कुटुंब समेत॥१७२॥

शब्दार्थ—अनभएँ=न होने पर। बिहाना=सबेरा। गवँहिं=धीरे से। जाम जुग=दो पहर। मते=मन्त्रणा के अनुसार। बरे=निमन्त्रण दे दिया।

भावार्थ—स्वयं कालकेतु ने पुरोहित का रूप धारण कर लिया और वह उनकी सुन्दर शैया पर जा लेटा। राजा सवेरा होने से पहले ही जाग उठा और अपना घर देखकर उसको बड़ा आश्चर्य हुआ। मन में मुनि की महिमा का विचार कर वह धीरे से उठा, जिससे रानि को पता न लगे। फिर उसी घोड़े पर चढ़ कर वन को चला गया। यह बात नगर के किसी भी स्त्री-पुरुष को मालूम नहीं हुई।

दो पहर दिन बीत जाने पर राजा वन से लौटा। घर २ उत्सव होने लगे और बधावे बजने लगे। राजा ने जब पुरोहित को देखा, तब वह चकित होकर अपने उस कार्य का स्मरण करने लगा। वे तीन दिन राजा को तीन युग के समान बीते। उसकी बुद्धि कपटी मुनि के चरणों में लगी रही। निश्चित समय आया जानकर पुरोहित बना राक्षस आया और उसने राजा के साथ की हुई गुप्त मन्त्रणा के अनुसार अपने सब विचार उसे समझा कर कह दिए।

अपने गुरु को उस रूप में पहचान कर राजा अत्यन्त हर्षित हुआ। भ्रम-वश उसे यह होश न रहा कि यह कपटीमुनि है या कालकेतु राक्षस। उसने तो यही समझा कि पुरोहित के रूप में गुरुदेव पधारे हैं। उसने तुरन्त एक लाख उत्तम ब्राह्मणों को उनके कुटुम्ब सहित निमन्त्रण दे दिया।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास अलंकार।

चौ०—उपरोहित जेवनार बनाई। छरस चारि बिधि जसि श्रुति गाई॥
मायामय तेहिं कीन्हि रसोई। बिंजन बहु गनि सकइ न कोई॥१॥
बिबिध मृगन्ह कर आमिष रांधा। तेहि महुँ बिप्र माँसु खल साँधा॥
भोजन कहुँ सब बिप्र बोलाए। पद पखारि सादर बैठाए॥२॥
परुसन जबहिं लाग महिपाला। भै अकासबानी तेहि काला॥
बिप्रबृंद उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥३॥
भयउ रसोईं भूसुर माँसू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू॥
भूप बिकल मति मोहँ भुलानी। भावी बस न आव मुख बानी॥४॥
दो०—बोले बिप्र सकोप तब नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाय निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार॥१७३॥

शब्दार्थ—जेवनार=भोजन सामग्री। जसि=जैसा। बिजन=व्यञ्जन, भोज्य पदार्थ। भूसुर=ब्राह्मण। मूढ=मूर्ख।

भावार्थ—पुरोहित बने कालकेतु ने छः रस और चार प्रकार की भोजन सामग्री बनाई जैसा कि वेदों में वर्णित किया गया है। उसने मायामयी रसोई तैयार की और इतने प्रकार के व्यंजन बनाये कि जो गिनाये नहीं जा सकते।

उसने हर एक प्रकार के पशु का मांस पकाया और उसमें उस दुष्ट ने ब्राह्मणों का मांस मिला दिया। राजा प्रतापभानु ने सब ब्राह्मणों को भोजन के लिए बुलाया और चरण धोकर सब को आदर सहित बैठाया।

जब राजा परोसने लगा तब राक्षस कृत आकाशवाणी हुई—हे ब्राह्मणो तुम उठ उठ कर अपने घर चले जाओ यह अन्न मत खाओ, इसके खाने में बड़ी हानि है, रसोई में ब्राह्मण का मांस पका है। इस आकाशवाणी को प्रमाण मान कर सब ब्राह्मण उठ खड़े हुए। राजा की बुद्धि मोह वश भ्रम में थी, अतः यह स्थिति देख वह बहुत व्याकुल हो गया। होनहार वश उसके मुख से एक बात भी न निकली।

तब ब्राह्मण क्रोध सहित बोल उठे—उन्होंने कुछ भी विचार नहीं किया-अरे मूर्ख राजा! तू जाकर परिवार सहित राक्षस होगा।

चौ०-छत्र बंधु तैं बिप्र बोलाई। घालै लिए सहित समुदाई॥
ईस्वर राखा धरम हमारा। जैहसि तैं समेत परिवारा॥१॥
संबत मध्य नास तव होऊ। जलदाता न रहिहि कुल कोऊ॥
नृप सुनि श्राप बिकल अति त्रासा। भै बहोरि बर गिरा अकासा॥२॥
बिप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा॥
चकित बिप्र सब सुनि नभबानी। भूप गयउ जहँ भोजन खानी॥३॥
तहँ न असन नहिं बिप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा॥
सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई। त्रसित परेउ अवनीं अकुलाई॥४॥

दो० भूपति भावी मिटइ नहिं जदपि न दूषन तोर।
किएँ अन्यथा होइ नहिं बिप्र श्राप अति घोर॥१७४॥

शब्दार्थ—छत्रबन्धु=नीच क्षत्रिय। जैहसि=नष्ट होगा। त्रासा=भय। भोजनखानी=रसोई घर। सुआरा=रसोईया। असन=भोजन। अवनि=पृथ्वी।

भावार्थ—ब्राह्मण राजा को परिवार सहित राक्षस होने का शाप दे रहे हैं—रे नीच क्षत्रिय! तूने ब्राह्मणों को कुटुम्ब सहित बुलाकर नष्ट करना चाहा, किंतु ईश्वर ने हमारे धर्म की रक्षा की। अब तू परिवार सहित नष्ट होगा। एक वर्ष के भीतर ही तेरा नाश हो, तेरे वंश में कोई जल देने वाला भी न रहे। शाप सुन कर राजा भय के मारे अत्यन्त व्याकुल हो गया। फिर सुन्दर आकाशवाणी हुई। 'हे ब्राह्मणो! तुमने विचार कर शाप नहीं दिया। राजा ने कुछ भी अपराध नहीं किया है।' इस आकाशवाणी को सुनकर सब ब्राह्मण चकित हो गये। जब राजा ने वहाँ जाकर जहाँ रसोई बनी थी, देखा तब वहाँ न भोजन था और न रसोइया ब्राह्मण ही। राजा मन में बहुत चिंता करता हुआ लौट आया। उसने आकर ब्राह्मणों को पिछला सब वृतान्त कह सुनाया तथा वह बहुत ही भयभीत और व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब ब्राह्मणों ने कहा—

हे राजन! यद्यपि तुम्हारा दोष नहीं है, तो भी होनहार नहीं मिटता। ब्राह्मणों का शाप बहुत ही भयानक होता है, यह किसी तरह भी टाले टल नहीं सकता, यह झूठा नहीं हो सकता।'

चौ०—अस कहि सब महिदेव सिधाए। समाचार पुरलोगन्ह पाए॥
मोचहिं दूषन दैवहि देहीं। बिरचत हंस काग किय जेहीं॥१॥
उपरोहितहि भवन पहुँचाई। असुर तापसहि खबर जनाई॥
तेहिं खल जहँ तहँ पत्र पठाए। सजि सजि सेन भूप सब धाए॥२॥
घेरेन्हि नगर निसान बजाई। बिबिध भाँति नित होइ लराई॥
जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी॥३॥
सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा। बिप्रश्राप किमि होइ असाँचा॥
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निज पुर गवने जय जसु पाई॥४॥

दो०—भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ बिधाता बाम।
धूरि मेरुसम जनक जम ताहि ब्यालसम दाम॥१७५॥

शब्दार्थ—निसान=नगाड़ा, डंका। जूझे=लड़ कर मर गए। बाँचा=

बचा । वाम=विपरीत । व्याल=साँप । दाम=रस्सी । जम=यमराज ।

भावार्थ—ऐसा कह कर सब ब्राह्मण तो चले गए, किंतु जब नगर-वासियो को यह सब समाचार मिला, तब वे चिंतित होकर विधाता को दोष देने लगे—जिसने हस बनाते-बनाते कौआ कर दिया (ऐसे धर्मात्मा पुण्यात्मा राजा को राक्षस बना दिया)

पुरोहित को उसके घर पहुँचा कर असुर (कालकेतु ने कपटी तपस्वी को खबर दी । उस दुष्ट ने जहाँ-तहाँ पत्र भेजे, जिससे सब वैरी राजा सेना सजा-सजाकर (चढ) दौडे ।

और उन्होने डका बजाकर नगर को घेर लिया । नित्यप्रति अनेक प्रकार से लडाई होने लगी । प्रतापभानु के सब योद्धा शूरवीरो की करनी करके रण मे जूझ मरे । राजा भी भाई सहित खेत रहा ।

सत्यकेतु के कुल मे कोई नही बचा । ब्राह्मणो का शाप झूठा कैसे हो सकता था । शत्रु को जीतकर, नगर को फिर से बसा कर राजा विजय और यश पाकर अपने-अपने नगर को चले गए ।

याज्ञवल्क्यजी कहते है—हे भरद्वाज ! सुनो, विधाता जब जिसके विपरीत होते है, तब उसके लिए धूल सुमेरुपर्वत के समान भारी और कुचल डालनेवाली, पिता यम के समान कालरूप और रस्सी साँप के समान काट खानेवाली हो जाती है ।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास तथा उपमा अलकार ।

चौ०—काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा । भयउ निसाचर सहित समाजा ॥
दस सिर ताहि बीस भुजदडा । रावन नाम बीर बरिबडा ॥१॥
भूप अनुज अरिमर्दन नामा । भयउ सो कुंभकरन बलधामा ॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू । भयउ बिमात्र बधु लघु तासू ॥२॥
नाम बिभीषन जेहि जग जाना । बिष्नुभगत बिग्यान निधाना ॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे । भए निसाचर घोर घनेरे ॥३॥
कामरूप खल जिनस अनेका । कुटिल भयंकर बिगत बिबेका ॥
कृपा रहित हिंसक सब पापी । बरनि न जाहिं बिस्व परितापी ॥४॥

दो० उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप ।
तदपि महीसुर श्राप बस भए सकल अघरूप ॥१७६॥

शब्दार्थ—बरिबंडा=प्रचण्ड । विमात्र बन्धु=सौतेला भाई । घोर=प्रचण्ड । कामरूप=इच्छानुसार रूप धारण करने वाले । जिनस=जाति या प्रकार । विस्व परितापी=संसार को पीड़ा पहुँचाने वाला । महीसुर=ब्राह्मण । अघरूप=पाप रूप ।

भावार्थ—याज्ञवल्क्य भरद्वाज से कह रहे हैं—हे मुनि ! सुनिए ! समय पाकर वही राजा (प्रतापभानु) अपने परिवार सहित रावण नामक राक्षस हुआ, जिसके दस सिर और बीस भुजाएँ थीं । वह प्रचण्ड शूरवीर था । प्रतापभानु का छोटा भाई, जिसका नाम अरिमर्दन था, वह बलशाली कुम्भकर्ण बना । राजा का जो धर्मरुचि नाम का मन्त्री था, वह रावण का सौतेला छोटा भाई विभीषण हुआ, जिसे सारा संसार जानता है । वह विष्णु भक्त और विज्ञान का भण्डार था । राजा के जो पुत्र और सेवक थे, वे सब भयंकर राक्षस हुए । वे सब विभिन्न प्रकार के थे और मनमाना रूप धारण करने की क्षमता रखते थे । वे सब दुष्ट थे, कुटिल, भयंकर और विवेक रहित थे । वे क्रूर, हिंसक, पापी और संसार भर को दुःख देने वाले हुए जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता ।

यद्यपि वे पुलस्त्य ऋषि के पवित्र, निर्मल और अनुपम कुल में उत्पन्न हुए, तथापि ब्राह्मणों के शाप के कारण वे सब पापरूप हुये ।

चौ०—कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई । परम उग्र नहिं बरनि सो जाई ॥
गयउ निकट तप देखि बिधाता । मागहु बर प्रसन्न मैं ताता ॥१॥
करि बिनती गहि पद दससीसा । बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा ॥
हम काहू के मरहिं न मारें । बानर मनुज जाति दुइ बारें ॥२॥
एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा । मैं ब्रह्माँ मिलि तेहि बर दीन्हा ॥
पुनि प्रभु कुंभकरन पहिं गयऊ । तेहि बिलोकि मन बिसमय भयऊ ॥३॥
जौं एहिं खल नित करब अहारू । होइहि सब उजारि संसारू ॥
सारद प्रेरि तासु मति फेरी । मागेसि नीद मास षट केरी ॥४॥

दो०- गएँ बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र वर मागु ।
तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु ।।१७७।।

शब्दार्थ—बारें=छोडकर, बचाकर । पहिं=पास ।

भावार्थ—याज्ञवल्क्य कह रहे है—तीनो भाइयो ने अनेक प्रकार की तपस्या की-ऐसी प्रचड तपस्या जिसका वर्णन नही किया जा सकता । उसके तप को देखकर ब्रह्माजी उनके पास गये और बोले – हे तात ! मै प्रसन्न हूँ, वर माँगो । रावण ने विनय करके ब्रह्माजी के चरण पकड लिए और बोला हे जगदीश्वर ! सुनिए, वानर और मनुष्य इन दो जातियो को छोड कर हम और किसी के मारे न मरें ।

शिवजी कहते हैं कि—मैंने और ब्रह्मा ने मिल कर उसे वर दिया कि ऐसा ही हो, तुमने बडा तप किया है । फिर ब्रह्माजी कुम्भकर्ण के पास गये । उसे देख कर उनके मन मे बडा आश्चर्य हुआ ।

जो यह दुष्ट नित्य आहार करेगा तो सारा ससार ही उजड जायगा । ऐसा विचार कर ब्रह्माजी सरस्वती को प्रेरणा करके उसकी बुद्धि फेर दी, जिससे उसने छ महीने की नीद माँगी ।

फिर ब्रह्माजी विभीषण के पास गये और बोले—हे पुत्र ! वर मागो । उसने भगवान् के चरणकमलो मे निर्मल (निष्काम और अनन्य) प्रेम माँगा ।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास तथा 'पद-कमल' मे निरग रूपक अलकार ।

चौ०–तिन्हहि देइ बर ब्रह्म सिधाए । हरषित ते अपने गृह आए ।।
मय तनुजा मन्दोदरि नामा । परम सुन्दरी नारि ललामा ।।१।।
सोइ मयँ दीन्हि रावनहि आनी । होइहि जातुधानपति जानी ।।
हरषित भयउ नारि भलि पाई । पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई ।।२।।
गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी । बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी ।।
सोइ मय दानवँ बहुरि सँवारा । कनक रचित मनिभवन अपारा ।।३।।
भोगावति जसि अहिकुल बासा । अमरावति जसि सक्रनिवासा ।।
तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका । जग बिख्यात नाम तेहि लंका ।।४।।
दो०–खाईं सिंधु गभीर अति चारिहुँ दिसि फिरि आव ।
कनक कोट मनि खचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव ।।१७८(क)।।

शब्दार्थ—मय-तनुजा=मय दानव की पुत्री मन्दोदरी। नारि-ललामा=स्त्रियों में शिरोमणि। जातुधान=राक्षस। मझारी=में। वासा=रहना। सक्र-निवासा=इन्द्र के रहने की जगह। खचित=जड़ा हुआ।

भावार्थ—उन तीनों को वर देकर ब्रह्माजी चले गये और वे भी प्रसन्न होकर अपने घर लौट आये। मय नामक दानव की पुत्री, जिसका नाम मंदोदरी था, परम सुन्दरी थी और वह स्त्रियों मे शिरोमणि थी। उसी मन्दोदरी को लाकर मय ने रावण को समर्पित की, क्योंकि वह जानता था कि यह राक्षसों का राजा होगा। एक सुन्दर और अच्छी स्त्री को पाकर रावण प्रसन्न हो गया। तदनन्तर उसने जाकर दोनों भाइयों का विवाह कर दिया।

समुद्र के बीच त्रिकूट नाम का एक पर्वत था, वह ब्रह्मा के द्वारा बहुत ही दुर्गम बनाया गया था। उसी को मय दानव ने फिर से सजाया। उसमें मणियों से जड़े हुए सोने के अगणित महल थे। नागों की भोगवती और इन्द्र की अमरावती से भी यह नगरी अधिक सुन्दर और बाँकी थी और संसार में जो लंका के नाम से विख्यात हुई।

लंका के चारों ओर समुद्र की अत्यन्त गहरी खाई थी और मजबूत मणियों से जड़े हुए इसके सोने के परकोटे थे, जिसकी कारीगरी का वर्णन नहीं किया जा सकता।

काव्य-सौंदर्य—अनुप्रास और व्यतिरेक अलकार।

दो०—हरि प्रेरित जेहिं कलप जोइ जातुधानपति होइ।
सूर प्रतापी अतुल बल दल समेत बस सोइ॥१७८(ख)॥

भावार्थ—भगवान की प्रेरणा से जिस कल्प में जो राक्षसों का राजा (रावण) होता है, वही शूर, प्रतापी, अतुलित बलवान् अपनी सेना सहित उस पुरी में बसता है।

चौ०—रहे तहाँ निसिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर संघारे॥
अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे॥१॥
दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई॥
देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई॥२॥

फिरि सब नगर दसानन देखा। गयउ सोच सुख भयउ बिसेषा ॥
सुंदर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी ॥३॥
जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे ॥
एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा ॥४॥

शब्दार्थ—भट=योद्धा। सक्र (शक्र)=इन्द्र। जच्छपति=यक्षपति=कुबेर। कटकाई=सेना को। पराई गए=भाग गये। जान (यान)।

भावार्थ—पहले वहाँ बड़े-बड़े योद्धा राक्षस रहते थे। देवताओं ने उन सबको मार डाला। अब इन्द्र की प्रेरणा से वहाँ कुबेर के एक करोड़ रक्षक यक्ष लोग रहते हैं।

जब रावण को कहीं ऐसी खबर मिली, तब उसने सेना सजा कर किले को जा घेरा। उस बड़े विकट योद्धा और उसकी बड़ी सेना को देख कर यक्ष अपने प्राण लेकर भाग गये।

तब रावण ने घूम-फिर कर सारा नगर देखा। उसकी स्थान सम्बन्धी चिन्ता मिट गयी और उसे बहुत ही सुख हुआ। उस पुरी को स्वाभाविक ही सुन्दर और बाहर वालों के लिये दुर्गम अनुमान करके रावण ने वहाँ अपनी राजधानी कायम की।

योग्यता के अनुसार घरों को बाँट कर रावण ने सब राक्षसों को सुखी किया और एक बार वह कुबेर पर चढ़ दौड़ा और उससे पुष्पक विमान को जीत कर ले आया।

दो०—कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहुबल चला बहुत सुख पाइ ॥१७९॥

भावार्थ—फिर उसने जाकर एक बार खिलवाड़ ही में कैलास पर्वत को उठा लिया और मानो अपनी भुजाओं का बल तौल कर, बहुत सुख पाकर वह वहाँ से चला आया।

काव्य-सौंदर्य—उत्प्रेक्षा अलकार।

चौ०—सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई ॥
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई ॥१॥

अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता ॥
करइ पान सोवइ षट मासा। जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा ॥२॥
जौं दिन प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई ॥
समर धीर नहिं जाइ बखाना। तेहि सम अमित बीर बलवाना ॥३॥
बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू ॥
जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई ॥४॥
दो०—कुमुख अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय ॥१८०॥

शब्दार्थ—सहाई=सहायक। प्रतिभट= जोड का योद्धा। जाता=उत्पन्न हुआ। पान करइ=मदिरा पीता था। बारिदनाद=मेघनाद। लीक=गणना। परावन=भगदड। कुमुख=दुर्मुख (नाम)। कुलिसरद=वज्रदंत। निकाय=समूह, झुंड।

भावार्थ—रावण और उसके परिवार का वर्णन किया जा रहा है—

सुख, सम्पत्ति, पुत्र, सेना, सहायक, जय, प्रताप, बल, बुद्धि और बडाई—ये सब उसके नित्य नये वैसे ही बढते जाते थे, जैसे प्रत्येक लाभ पर लोभ बढता है।

अत्यन्त बलवान् कुम्भ कर्ण सा भाई था, जिसके जोड का योद्धा जगत् में पैदा ही नहीं हुआ। वह मदिरा पीकर छः महीने सोया करता था। उसके जागते ही तीनों लोकों में तहलका मच जाता था।

यदि वह प्रतिदिन भोजन करता, तब तो सम्पूर्ण विश्व ही चौपट (खाली) हो जाता। रणवीर ऐसा था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। लंका में उसके ऐसे असंख्य बलवान् वीर थे।

मेघनाद रावण का बडा लडका था, जिसका जगत् के योद्धाओं में पहला नम्बर था। रण में कोई भी उसका सामना नहीं कर सकता था। स्वर्ग में तो उसके भय से नित्य भगदड मची रहती थी।

इनके अतिरिक्त दुर्मुख, अकम्पन, वज्रदन्त, धूमकेतु और अतिकाय आदि ऐसे अनेक योद्धा थे जो अकेले ही सारे जगत् को जीत सकते थे।

काव्य सौंदर्य—वृत्यनुप्रास, छेकानुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार।

चौ०—कामरूप जानहिं सब माया । सपनेहुँ जिन्ह कें धरम न दाया ।
दसमुख बैठ सभाँ एक बारा । देखि अमित आपन परिवारा ॥१॥
सुत समूह जन परिजन नाती । गनै को पार निसाचर जाती ॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी । बोला बचन क्रोध मद सानी ॥२॥
सुनहु सकल रजनीचर जूथा । हमरे बैरी बिबुध बरूथा ॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई । देखि सबल रिपु जाहिं पराई ॥३॥
तेन्ह कर मरन एक बिधि होई । कहउँ बुझाइ सुनहु अब सोई ॥
द्विजभोजन मख होम सराधा । सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा ॥४॥
दो०—छुधा छीन बलहीन सुर सहजेहिं मिलिहहिं आइ ॥
तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ भली भाँति अपनाइ ॥१८१॥

शब्दार्थ—कामरूप=मनमाना रूप धारण करनेवाले । दाया=दया, करुणा । जन=सेवक । परिजन=कुटुम्बी । जूथा=यूथ, दल । बिबुध-बरूथा=देवताओं का समूह । बुझाई=समझाकर । मख=यज्ञ । सराधा=श्राद्ध ।

भावार्थ—सभी राक्षस इच्छानुसार रूप धारण करने वाले एव आसुरी माया जानने वाले थे । स्वप्न मे भी वे धर्म या दया को न जानते थे । एक वार सभा मे बैठे रावण ने अपने परिवार को देखा—अनेक पुत्र, पौत्र, कुटुम्बी और सेवक थे । राक्षसो की इतनी जातियाँ थी कि उन्हे कौन गिन सकता था । अपनी सेना को देखकर स्वभाव से ही अभिमानी रावण क्रोध और गर्व मे सनी वाणी बोला—हे राक्षसो ! तुम सब सुनो, देवता हमारे शत्रु हैं । वे सामने आकर के तो युद्ध करते नही, बलवान शत्रु को देखकर वे भाग जाते हैं । उनके मारने का एक ही उपाय है, वह मैं तुम्हे समझाकर बतलाता हूँ, तुम सब ध्यान से सुनो । उनके बल को बढाने वाले ब्राह्मण-भोजन, यज्ञ-हवन, और श्राद्ध है—तुम इन सब मे जाकर विघ्न उपस्थित करो ।

भूख से दुर्बल और बलहीन होकर देवता सहज ही मे आ मिलेंगे । तब उनको मै मार डालूँगा अथवा भलीभाँति अपने अधीन करके (सर्वथा पराधीन करके) छोड दूँगा ।

चौ०—मेघनाद कहुँ पुनि हँकरावा । दीन्ही सिख बलु बयरु बढावा ॥
जो सुर समर धीर बलवाना । जिन्ह कें लरिबे कर अभिमाना ॥१॥

तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुसासन काँधी॥
एहि बिधि सबही अग्या दीन्ही। आपुनु चलेउ गदा कर लीन्ही॥२॥
चलत दसानन डोलत अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहि सुर रवनी॥
रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा॥३॥
दिगपालन्ह के लोक सिधाए। सूने सकल दसानन पाए॥
पुनि पुनि सिंघनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि पचारी॥४॥
रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा॥
रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी॥५॥
किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहिं लागा॥
ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसवर्ती नर नारी॥६॥
आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता॥७॥

शब्दार्थ—हँकरावा=बुलवाया। बयरु=शत्रुता। बाँधी आनेसु=बाँध लाना। अनुसासन काँधी=आज्ञा मान कर। अवनी=पृथ्वी। स्रवहिं=गिर जाते हैं। सुररवनी=देव रमणियाँ। सकोहा=क्रोध सहित। खोहा=गुफा। पचारी=ललकार कर। आयसु=आज्ञा। विनीता=नम्रता पूर्वक।

भावार्थ—(रावण के बल प्रताप का वर्णन किया जा रहा है)।

फिर रावण ने मेघनाद को बुलाया और सिखा-पढाकर उसके बल और देवताओं के प्रति वैरभाव को उत्तेजना दी। फिर उसने कहा—हे पुत्र! जो देवता रण मे धीर और बलवान् हैं और जिन्हें लडने का अभिमान है, उन्हें युद्ध मे जीतकर बाँध लाना। बेटे ने उठकर पिताकी आज्ञा को शिरोधार्य किया। इसी तरह उसने सबको आज्ञा दी और आप भी हाथ मे गदा लेकर चल दिया।

रावण के चलने से पृथ्वी डगमगाने लगी और उसकी गर्जना से देव—रमणियों के गर्भ गिरने लगे। रावण को क्रोध सहित आते हुए सुनकर देवताओं ने सुमेरु पर्वत की गुफाएँ तकी (भागकर सुमेरु की गुफाओ का आश्रय लिया।)

दिक्पालो के सारे सुन्दर लोकों को रावण ने सूना पाया। वह बार-बार

भारी सिंह गर्जना करके देवताओ को ललकार ललकार कर गालियाँ देता था।

रण के मद मे मतवाला होकर वह अपनी जोडी का योद्धा खोजता हुआ जगत् भर मे दौडता फिरा, परन्तु उसे ऐसा योद्धा कही नही मिला। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल और यम आदि सब अधिकारी, किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और नाग–सभी के पीछे वह हठपूर्वक पड गया (किसी को भी उसने शान्तिपूर्वक न बैठने दिया)। ब्रह्माजी की सृष्टि मे जहाँ तक शरीरधारी स्त्री पुरुष थे, सभी रावण के अधीन हो गये।

डर के मारे सभी उसकी आज्ञा का पालन करते थे और नित्य आकर नम्रतापूर्वक उसके चरणो मे सिर झुकाते थे।

दो०–भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र ॥१८२(क)॥
देव जच्छ गधर्ब नर किंनर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुंदर बर नारि ॥१८२(ख)॥

शब्दार्थ—निजमत्र=इच्छानुसार। बरी=विवाह कर लिया।

भावार्थ—उसने भुजाओ के बल से सारे विश्व को वश मे कर लिया, किसी को स्वतन्त्र नही रहने दिया। इस प्रकार मण्डलीक राजाओ का शिरोमणि रावण अपनी इच्छानुसार राज्य करने लगा।

देवता, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य, किन्नर और नागो की कन्याओ तथा बहुत सी अन्य सुन्दरी और उत्तम स्त्रियो को उसने अपनी भुजाओ के बल से जीतकर व्याह लिया।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश अलकार। 'नर किन्नर' मे यमक।

चौ०–इंद्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ॥
प्रथमहिं जिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा। तिन्ह कर चरित सुनहु जो कीन्हा॥१॥
देखत भीमरूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥२॥
जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥३॥

सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव विप्र गुरु मान न कोई॥
नहिं हरि भगति जग्य तप ग्याना। सपनेहुँ सुनिअ न वेद पुराना॥४॥

शब्दार्थ—सन=से। भीमरूप=भयानक। निकर=समूह। परितापी=पीड़ा पहुँचाने वाले। निकाया=समूह।

भावार्थ—रावण ने मेघनाथ से जो कुछ कहा, उसे उसने मानो पहले से ही कर रखा था। मेघनाथ से बात करने से पूर्व रावण ने पहले जिन राक्षसों को जो आज्ञा दी थी, उन्होंने जो करतूतें कीं, उनका विवरण इस प्रकार है—

सब राक्षसों के समूह देखने में बड़े भयानक, पापी और देवताओं को दुःख देने वाले थे। वह असुर समुदाय बड़ा उपद्रव करता था और माया से अपने अनेक प्रकार के रूप बना लेता था। जिस तरह भी धर्म की जड़ें कटें, वह उन्हीं सब वेद विरुद्ध कामों को करता था। जिस जिस स्थान में राक्षस, गौ और ब्राह्मणों को पाते थे, वे उसी नगर, गाँव और पुर में आग लगा देते थे।

उनके डर से कहीं भी शुभ आचरण (ब्राह्मणभोजन, यज्ञ श्राद्ध आदि) नहीं होते थे। देवता, ब्राह्मण और गुरु को कोई नहीं मानता था। न हरिभक्ति थी, न यज्ञ, न तप और ज्ञान था। वेद और पुराण तो स्वप्न में भी सुनने को नहीं मिलते थे।

छं०—जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा।
आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना।
तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह वेद पुराना॥

भावार्थ—जप, योग, वैराग्य, तप तथा यज्ञ में देवताओं के भाग जाने की बात रावण कहीं कानों से सुन पाता, तो उसी समय स्वयं उठ दौड़ता। कुछ भी रहने नहीं पाता, वह सबको पकड़कर विध्वंस कर डालता था। संसार में ऐसा भ्रष्ट आचरण फैल गया कि धर्म तो कानों से भी सुनने में नहीं आता था, जो कोई वेद और पुराण कहता, उसको बहुत तरह से त्रास देता और देश से निकाल देता था।

सो०—बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहिं ।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्ह के पापहि कवनि मिति ॥१८३॥

भावार्थ—राक्षस लोग जो घोर अत्याचार करते थे, उसका वर्णन नही किया जा सकता। हिंसा पर ही जिनकी प्रीति है, उनके पापो का क्या ठिकाना !

चौ०—बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लपट परधन परदारा।
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥१॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी।
अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी ॥२॥
गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही ॥
सकल धर्म देखहि बिपरीता। कहि न सकइ रावन भयभीता ॥३॥
धेनु रूप धरि हृदयँ बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी ॥
निज संताप सुनाएसि रोई। काहू तें कछु काज न होई ॥४॥

शब्दार्थ—बाढे=बढ़ गये। गरुअ=भारी। झारी=झुंड, समूह।

भावार्थ—रावण राज्य मे क्या क्या होता था ! सुनिए। पराये धन और परायी स्त्री पर मन ललचाने वाले, दुष्ट, चोर और जुआरी बहुत बढ़ गये। लोग माता पिता और देवताओ को नही मानते थे और साधुओ की सेवा करना तो दूर रहा, उल्टे उनसे सेवा करवाते थे।

श्री शिवजी कहते हैं कि—हे भवानी ! जिनके ऐसे आचरण है उन सब प्राणियो को राक्षस ही समझना। इस प्रकार धर्म के प्रति लोगो की अतिशय ग्लानि (अरुचि, अनास्था) देखकर पृथ्वी अत्यन्त भयभीत एवं व्याकुल हो गई।

वह सोचने लगी कि पर्वतो, नदियो और समुद्रो का बोझ मुझे इतना भारी नही जान पडता जितना भारी मुझे एक परद्रोही (दूसरो का अनिष्ट करने वाला) लगता है। पृथ्वी सारे धर्मों को विपरीत देख रही है, पर रावण से भयभीत हुई वह कुछ बोल नही सकती।

अन्त मे हृदय मे सोच विचारकर, गौ का रूप धारण कर धरती वहाँ गयी जहाँ सब देवता और मुनि छिपे बैठे थे। पृथ्वी ने रोकर उनको अपना

दुःख सुनाया, पर किसी से कुछ काम न बना।

छं०—सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका।
संग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका॥
ब्रह्माँ सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई॥

भावार्थ—तब देवता, मुनि और गन्धर्व सब मिलकर ब्रह्माजी के लोक (सत्यलोक) को गये। भय और शोक से अत्यन्त व्याकुल बेचारी पृथ्वी भी गौ का शरीर धारण किए हुए उनके साथ थी। ब्रह्माजी सब जान गए। उन्होंने मन में अनुमान किया कि इसमें मेरा कुछ भी वश नहीं चलने का। तब उन्होंने पृथ्वी से कहा कि—जिसकी तू दासी है, वही अविनाशी हमारा और तुम्हारा दोनों का सहायक है।

सो०—धरनि धरहि मन धीर, कह बिरंचि हरि-पद सुमिरु।
जानत जन की पीर, प्रभु भंजिहि दारुन बिपति॥१८४॥

भावार्थ—ब्रह्माजी ने कहा—हे धरती! मन में धीरज धारण करके श्रीहरि के चरणों का स्मरण करो। प्रभु अपने दासों की पीड़ा को जानते हैं, वे तुम्हारी कठिन विपत्ति का नाश करेंगे।

काव्य-सौन्दर्य—सुन्दर पद मैत्री।

चौ०—बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई॥१॥
जाकें हृदयँ भगति जसि प्रीति। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहि रीति॥
तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ॥२॥
हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥३॥
अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥
मोर बचन सब के मन माना। साधु साधु करि ब्रह्म बखाना॥४॥
दो०—सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर सावधान मतिधीर॥१८५॥

शब्दार्थ—पयनिधि=क्षीर-सागर। अग=जो गमन न कर सके, अचर।

जग=जो चल-फिर सके। अग-जग-मय=चराचर में व्याप्त।

भावार्थ—सब देवता बैठ कर विचार करने लगे कि भगवान् को कहाँ पावें और कहाँ जाकर उनसे पुकार करें। किसी ने कहा कि भगवान् वैकुंठ में मिलेंगे, वहाँ जाना चाहिए और किसी ने कहा कि वे क्षीर-सागर में मिलेंगे।

जिस के हृदय में भगवान् के प्रति जैसी भक्ति और प्रीति होती है, भगवान् वहाँ उसके लिए सदा उसी रीति से प्रगट होते हैं। शिवजी कहते हैं—हे पार्वती ! मैं भी उस देव समाज में मौजूद था। अवसर पाकर मैंने भी एक बात कही—

मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान् सर्व व्यापक हैं—वे सब जगह समान रूप में विद्यमान हैं, और वे प्रेम से प्रकट होते हैं। देश, काल, दिशा और विदिशा में बताओ, ऐसा कौन सा स्थान है जहाँ भगवान् विद्यमान न हो।

भगवान् चराचरमय (चराचर में व्याप्त) होते हुए ही सबसे रहित हैं और विरक्त हैं (उनकी कहीं आसक्ति नहीं है)। वे प्रेम से प्रकट होते हैं, जैसे अग्नि। (अग्नि अव्यक्त रूप में सर्वत्र व्याप्त है, परन्तु जहाँ उसके लिये अरणिमन्थनादि साधन किये जाते हैं, वहाँ वह प्रकट होती है। इसी प्रकार सर्वत्र व्याप्त भगवान् भी प्रेम से प्रकट होते हैं।) मेरी बात सबको प्रिय लगी। ब्रह्माजी ने 'साधु, साधु' कह कर बड़ाई की।

मेरी बात सुन कर ब्रह्मा जी के मन में बड़ा हर्ष हुआ, उनका तन पुलकित हो गया और नेत्रों से (प्रेम के) आँसू बहने लगे। तब वे धीर-बुद्धि ब्रह्माजी सावधान होकर हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगे।

छं०—जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई॥१॥

शब्दार्थ—सिंधु-सुता=लक्ष्मी। कंता=स्वामी, पति। सोई=वे ही।

भावार्थ—हे देवताओं के स्वामी, सेवकों को सुख देने वाले, शरणागत की रक्षा करने वाले भगवान् ! आपकी जय हो ! जय हो !! हे गो-ब्राह्मणों का हित करने वाले, असुरों का विनाश करने वाले, समुद्र की कन्या (श्री लक्ष्मीजी)

के प्रिय स्वामी ! आपकी जय हो ! हे देवता और पृथ्वी का पालन करने वाले। आपकी लीला अद्भुत है उसका भेद कोई नहीं जानता। ऐसे जो स्वभाव से ही कृपालु और दीनदयालु हैं, वे ही हम पर कृपा करें।

काव्य-सौन्दर्य—अनुप्रास और पुनरुक्ति-प्रकाश अलंकार।

छ०—जय जय अविनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा।
अविगत गोतीत चरित पुनीत मायारहित मुकुंदा॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा।
निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा॥२॥

शब्दार्थ—अविगत=अज्ञेय। गोतीत=इन्द्रियों के ज्ञान से परे। पुनीत=पवित्र। मुकुन्दा=मुक्तिदाता। बासर=दिन।

भावार्थ—हे अविनाशी, सबके हृदय में निवास करने वाले, सर्वव्यापक, परम आनन्दस्वरूप, अज्ञेय, इन्द्रियों से परे, पवित्र चरित्र, माया से रहित, मुकुन्द (मोक्षदाता) ! आपकी जय हो ! जय हो ! इस लोक और परलोक के सब भोगों से विरक्त तथा मोह से सर्वथा छूटे हुए ज्ञानी मुनिवृन्द भी अत्यन्त अनुरागी (प्रेमी) बन कर जिनका रात-दिन ध्यान करते हैं और जिनके गुणों के समूह का गान करते हैं, उन सच्चिदानन्द की जय हो।

छ०—जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा॥
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरजूथा॥३॥

भगवान् हमारी सुधि ले। हम न भक्ति जानते हैं, न पूजा। जो संसार के जन्म-मृत्यु के भय का नाश करने वाले मुनियों के मन में आनन्द देने वाले और विपत्तियों के समूह को नष्ट करने वाले हैं, हम सब देवताओं के समूह मन, वचन और कर्म से चतुराई करने की बान छोड़कर उन भगवान् की शरण आये हैं।

काव्य सौन्दर्य—सुन्दर पद मैत्री।

छं०—सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना।
जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुन मंदिर सुखपुंजा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा॥४॥

शब्दार्थ—असेषा=सम्पूर्ण। द्रवउ=दया करे। भव-बारिधि-मन्दर=संसार रूपी समुद्र को मथने के लिए मन्दराचल पर्वत। पद-कन्जा=चरण-कमल।

भावार्थ—सरस्वती, वेद, शेषजी और सम्पूर्ण ऋषि कोई भी जिनको नहीं जानते, जिन्हें दीन प्रिय हैं ऐसा वेद पुकारकर कहते हैं, वे ही श्रीभगवान् हम पर दया करें। हे संसाररूपी समुद्र के मथने के लिए मन्दराचलरूप, सब प्रकार से सुन्दर, गुणों के धाम और सुखों की राशि नाथ! आपके चरण-कमलों में मुनि, सिद्ध और सारे देवता भय से अत्यन्त व्याकुल होकर नमस्कार करते हैं।

काव्य-सौन्दर्य—भव-बारिधि-मंदर में रूपक अलंकार।

दो०—जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह।
गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह॥१८६॥

भावार्थ—देवताओं और पृथ्वी को भयभीत जानकर और उनके स्नेहयुक्त वचन सुनकर शोक और सन्देह को हरने वाली गम्भीर आकाशवाणी हुई।

चौ०—जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥१॥

कस्यप अदिति महातप कीन्हा । तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा ॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा । कोसलपुरीं प्रगट नर भूपा ॥२॥
तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई । रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई ॥
नारद बचन सत्य सब करिहउँ । परम सक्ति समेत अवतरिहउँ ॥३॥
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई । निर्भय होहु देव समुदाई ॥
गगन ब्रह्मबानी सुनि काना । तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना ॥४॥
तब ब्रह्माँ धरनिहि समुझावा । अभय भई भरोस जियँ आवा ॥५॥
दो०—निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ ।
बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ ॥१८७॥

शब्दार्थ—लागि=लिए । सुरेसा=देवताओ के स्वामी । दिनकर=सूर्य । परमशक्ति=आद्याशक्ति (लक्ष्मी) । गुरुआई=भार । ब्रह्मवाणी=भगवान् की वाणी । जुड़ावा=शीतल हो गया । धरनिहि=पृथ्वी को । इहइ=यह ।

भावार्थ—आकाशवाणी द्वारा भगवान् कह रहे है—हे मुनियो, सिद्धो और देवताओ के स्वामियो ! तुम डरो मत । तुम लोगो की खातिर मैं मनुष्य रूप धारण करूँगा, और पवित्र सूर्य-वश मे मै अंशो सहित जन्म लूँगा । कश्यप और अदिति ने बड़ा भारी तप किया था और मैं उन्हे पहले ही वर दे चुका हूँ । वे अब दशरथ और कौशल्या के रूप मे मनुष्यो के राजा-रानी बनकर अयोध्यापुरी मे प्रकट हुए हैं । मैं उन्ही के घर जाकर रघुकुल मे श्रेष्ठ चार भाइयो के रूप मे अवतार लूँगा । मै नारद के सब वचनों को सत्य प्रमाणित करूँगा । मैं अपनी आद्याशक्ति के सहित अवतार लूँगा । मैं पृथ्वी के सब भार को हर लूँगा । हे देववृन्द ! अब तुम्हे चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है, तुम सब निर्भय होकर जाओ ।

आकाश मे हुई भगवान् की इस वाणी को सुनकर देवताओ का हृदय शीतल हो गया और वे शीघ्र ही लौट गये । तब ब्रह्माजी ने पृथ्वी को समझाया वह भी निर्भय होकर चली गई, क्योकि उसे ढाढस बँध गया था ।

देवताओ को यह सिखा कर कि वे सब वानर-शरीर धारण करके पृथ्वी पर जायें और भगवान् के चरणो की सेवा करें—ब्रह्माजी भी अपने लोक को चले गये ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न १—भक्तिकालीन राम-भक्ति शाखा की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करते हुए महात्मा तुलसीदास के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—भक्तिकाल की सगुण धारा मे दो शाखाएँ चली—एक राम-भक्ति-शाखा, और दूसरी कृष्ण-भक्ति शाखा। राम भक्ति शाखा मे अनेक कवि हुए, किन्तु वे सब तुलसी के व्यक्तित्व से इतने दब गये कि वे ख्याति प्राप्त न कर सके। अकेले तुलसीदास राम-भक्ति शाखा का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं।

राम-भक्ति शाखा की प्रमुख विशेषतायें—राम-भक्ति शाखा के कवियो ने राम के लोक-रक्षक रूप को लिया। राम विष्णु के अवतार हैं तथा वे शील शक्ति और सौन्दर्य से युक्त हैं। वे भक्त-भय-हर्ता और मर्यादा पालक हैं। राम सर्वांग-सम्पूर्ण आदर्श हैं, इसलिए राम काव्य आदर्शों की समष्टि है, उसमे गृहस्थ जीवन से लेकर सन्यास जीवन तक के आदर्श सन्निहित हैं। राम-भक्ति-काव्य मे जो प्रेम की अजस्रधारा बहती है, वह न लोक-बाह्य है और न एकांतिक, वह जीवन के बीच मे से बहती है। राम-काव्य की यह विशेपता है कि इसमे भारतीय जीवन की आदर्शमय सच्ची झलक देखने को मिलती है। इसके सब पात्र आदर्श और मर्यादापालक है। रामभक्ति काव्य मे समन्वय की भावना व्याप्त है। भक्ति के क्षेत्र मे ही नही, जीवन के हर क्षेत्र मे राम-भक्ति कवि समन्वय की भावना लेकर चले हैं। वे विघटन नही चाहते, वे हिन्दू-धर्म और सस्कृति को सगठित करने का प्रयास करते हैं। राम-भक्ति काव्य मे अश्लीलता उच्छृंखलता या स्वच्छन्दता को स्थान नही दिया गया, सब पात्र अपना-अपना कर्तव्य पालन करते हुए आदर्श की ओर उन्मुख चित्रित किए गए है। राम-काव्य मे प्रधानता 'भक्ति-रस' की है, किन्तु अन्य सब रसो से वह पुष्ट है। राम-भक्ति स्वामि-सेवक भाव की है। काव्य की दृष्टि से भी राम-काव्य उत्कृष्ट है, जिसमें भाव-पक्ष और लोक-पक्ष का पूर्ण सन्तुलन है।

तुलसीदास का व्यक्तित्व और कर्तृत्व

तुलसी का परिचय—तुलसीदास के जन्म, मृत्यु, वश, निवास-स्थान

आदि के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मत-भेद हैं। किन्तु अधिकाश विद्वानो का मत है कि तुलसी का जन्म राजापुर ग्राम मे संवत् १५५४ मे सरयूपारीण ब्राह्मण-वश मे हुआ था और इनकी मृत्यु सवत् १६८० मे श्रावण कृष्णा तृतीया को गगा के किनारे असी घाट पर हुई थी। इनके पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी बताया जाता है। तुलसी के बचपन का नाम रामबोला था। ये अभुक्त मूल नक्षत्र मे पैदा हुए थे, अत त्याग दिये गये थे और किसी दासी द्वारा इनका पालन-पोषण हुआ था। दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से इनका विवाह हुआ था। पत्नी मे इनकी अत्यधिक आसक्ति थी। पत्नी के फटकारने पर ही ये गृहस्थी त्याग कर सन्यासी बने थे। तुलसी पत्नी-भक्त से रामभक्त बन गये। नरहरिदास तथा महात्मा शेष सनातन इनके गुरु थे। तुलसी ने भारत भ्रमण किया, कोई तीर्थ स्थान ऐसा न होगा जहाँ ये न गये हो। फिर ये स्थाई रूप से राम की जन्म-भूमि अयोध्या मे आ बसे और अपने अन्तिम दिनो मे वे असी घाट पर रहे, जिसे आजकल तुलसी घाट कहते हैं।

तुलसीदास प्रकान्ड पण्डित थे, विद्वान थे, बहुश्रुत और ज्ञानी थे। वे सारे भारत मे घूम-फिर कर तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक परिस्थितियो का अध्ययन कर चुके थे। उन्हें हर बात का प्रत्यक्ष अनुभव था। नारी-प्रेम को राम-प्रेम मे परिवर्तित कर वे प्रेमी भक्त के रूप मे प्रसिद्ध हो चुके थे। अपने समकालीन कवियों एवं विद्वानो से उनका यथेष्ट परिचय था। टोडरमल, रहीम, जैनकवि बनारसीदास, कवि केशवदास, मधु-सूदन, सरस्वती आदि से तुलसी की घनिष्टता थी। कहते हैं कि रहीम और मानसिंह से तुलसी की प्रशंसा सुनकर स्वय अकबर भी एक बार तुलसी के दर्शनार्थ आया था।

तुलसी सच्चे सत थे। वे स्वभाव से सरल और उदार थे। वे भोग के अनन्तर तप की ओर प्रवृत्त हुए थे, इसलिए उनके वैराग्य में दण्ड या पाखण्ड नही था। वे सदाचारी और आडम्बर हीन थे। वे सदा सतोषी और भगवान् के भक्त थे। वे सहिष्णु भी गजब के थे। तुलसी को अपने जीवन काल मे बहुत विरोध सहना पड़ा। विभिन्न सम्प्रदाय वालों ने एव कट्टर-पंथियो ने

तुलसी पर समय-समय पर अनेक प्रहार किए जिनको तुलसी ने कलिकाल की महिमा समझ कर सहन किया। उन्होने समन्वयात्मक वुद्धि से काम लिया।

तुलसी की रचनाएँ—कुछ विद्वानो के मतानुसार तुलसी के अठारह ग्रंथ हैं और कुछ विद्वानो के कथनानुसार पच्चीस ग्रथ। किन्तु विद्वान् आलोचको ने अग्रलिखित केवल तेरह ग्रथो को तुलसीकृत स्वीकार किया है, शेष ग्रथो के सम्बन्ध मे उनका मत है कि वे तुलसी नामधारी अन्य व्यक्तियो की रचनाएँ हैं। तुलसी की प्रामाणिक रचनाएँ हैं—

१. रामलला नहछू, २ वैराग्य-सदीपनी, ३ वरवै रामायण, ४ पार्वती-मगल, ५ जानकी-मगल, ६ रामाज्ञा प्रश्न, ७ दोहावली, ८ कविता-वली, ९ हनुमान-बाहुक, १० गीतावली,, ११. कृष्ण-गीतावली, १२. विनय-पत्रिका और १३ रामचरित मानस।

तुलसी की सभी रचनाएँ उत्कृष्ट हैं और वे विभिन्न काव्य-शैलियो मे लिखी गई हैं। प्रत्येक ग्रन्थ के सम्बन्ध मे कुछ लिखना यहाँ सभव नही है। 'दोहावली' मे चातक-प्रेम सम्बन्धी चौतीस दोहे तुलसी का हृदय है जिनके द्वारा उन्होने भक्ति का आदर्श उपस्थित किया है। एक दोहा देखिए—

'एक भरोसो, एक वल, एक आस विस्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास ॥'

'कवितावली' तुलसी की प्रवन्ध और मुक्तक दोनो के बीच की रचना है, यह जितनी लोक-प्रिय है, उतनी ही महत्वपूर्ण भी है। 'गीतावली' गेय पदो मे है। साहित्यिक दृष्टि से इसका वहुत महत्व है। यह तुलसी की एक सरस और प्रौढ रचना है। इसमे विविध भावो और रसो की सुन्दर अभिव्यक्ति है। 'विनय-पत्रिका' तुलसी के आध्यात्मिक जीवन और साधना का दर्पण है। यह तुलसी की सर्वोत्कृष्ट रचना मानी जाती है और यह भक्तो का कठहार है। 'राम-चरित-मानस' तो हिन्दू सस्कृति का सार-भूत ग्रन्थ होने के कारण 'हिन्दू-वाइविल' कहलाती है। यह दोहा-चौपाई पद्धति पर अवधी भाषा मे लिखी गई एक अनुपम कृति है।

तुलसी काव्य का महत्व—तुलसीदास एक साथ सत, सुधारक, कवि,

लोक-नायक सब कुछ थे। तुलसी ने जो कुछ लिखा, 'स्वान्त सुखाय' लिखा, परन्तु उनकी प्रत्येक रचना में लोक-कल्याण की भावना छिपी हुई है। तुलसी के सामने कोई अपनाने योग्य आदर्श न था, इसलिए उन्होंने अपना मार्ग स्वयं बनाया। 'रामचरितमानस' लिख कर उन्होंने देशवासियों को श्रुति-सम्मत हरिभक्ति का पथ दिखलाया। तुलसीदास युग-प्रतिनिधि कवि थे। उनकी रचनाओं में तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण मिलता है। 'रामचरित मानस' के उत्तर काड में उन्होंने जो 'कलि-महिमा' गाई है, वह तत्कालीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण है। तुलसी की विशेषता इसमें है कि वे युग-प्रवृत्तियों में बहे नहीं। उन्होंने न नर-काव्य लिखा और न अपना कोई अलग सम्प्रदाय चलाया। तुलसी राम के भक्त थे और वे राम-भक्ति के प्रसार के द्वारा ही जनता को ऊँचा उठाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने समस्त प्रचलित काव्य-शैलियों में राम-नाम का गुण-गान किया और अपना अलग पथ न चला कर उन्होंने अपनी समन्वयात्मक बुद्धि के द्वारा सब बिखरे धागों को एक रज्जु में बट दिया, यह काम तुलसी जैसे अलौकिक प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति का ही था। आज भी, क्या शिक्षित और अशिक्षित, सब तुलसी का नाम जानते हैं और उनके 'मानस' से अपने मानस का मैल धोकर उसे उज्ज्वल और पवित्र बनाते हैं। तुलसी की कविता में कृत्रिमता नहीं, नैसर्गिक सौन्दर्य है। तुलसी की रस योजना, विविध भाव-व्यंजना, छन्द और अलंकार-योजना, दो काव्य-भाषाओं पर असाधारण अधिकार तथा विविध काव्य-पद्धतियों में पूर्ण सफलता आदि तुलसी को रस-सिद्ध कवीश्वर प्रमाणित करते हैं।

प्रश्न २—गोस्वामी तुलसीदास के काव्य-कौशल की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। (रा०वि०वि० सन् १९७०)

अथवा

तुलसी की काव्य-कला की समीक्षा कीजिए।

(रा० वि० वि० सन् १९६६)

अथवा

'कविता करके तुलसी न लसे,
कविता लसी पा तुलसी की कला'।

इस कथन का सत्य सत्य निरूपित कीजिए।

(रा० वि० वि० सन् १९६५)

उत्तर—किसी सस्कृत कवि ने कहा है—

'क्षणे-क्षणे यन्नयतामुपैति
तदेव रूप रमणीयताया।'

अर्थात् चिर-नूतनता ही रमणीयता का रूप है। विन, इस चिर-नूतनता के न साहित्यिक सौन्दर्य का महत्व है और न शारीरिक सौन्दर्य के दर्शन होते है, वही वास्तव मे कवि है, कलाकार है। तुलसी की रचनाओ मे भी यही बात है। उनकी किसी भी रचना को ले लीजिए, जितना आप मनन करेंगे, वह आपका उतना ही ध्यान आकर्षित करेगी और आपको आनन्द देगी, प्रत्येक वार आपको उसमे नवीन आकर्षण मिलेगा और यही वास्तव मे सच्चा काव्य-सौन्दर्य है।

तुलसी का उद्देश्य

काव्य-कला के सम्बन्ध मे तुलसी ने 'रामायण' मे अपना उद्देश्य इस प्रकार प्रकट किया है—

'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ-गाथा।
भाषा-निबन्धमतिमंजुलमातनोति ॥'

अर्थात् उन्होने 'रामचरितमानस' की रचना 'स्वान्त सुखाय' की है। तुलसी के हृदय मे कुछ है और वे उसे कहना चाहते हैं, वे कविता के रूप मे अपने उद्गारो को प्रकट करते हैं। हृदय की ऐसी ही तल्लीनता से कला की उत्पत्ति होती है। किंतु तुलसी की कला मे यह खूबी है कि वह 'स्वान्त सुखाय' होते हुए भी लोक-हित से पूर्णत सम्बन्ध रखती है। इस लोक-हित की भावना की प्रमुखता के कारण ही स्व० रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी को सर्वगुण-सम्पन्न भक्त-कवि माना है। वे कहते हैं—

'यदि कोई पूछे कि जनता के हृदय पर सबसे अधिक और विस्तृत अधिकार रखने वाला हिन्दी का सबसे बडा कवि कौन है, तो उसका एकमात्र यही उत्तर ठीक हो सकता है कि भारत-हृदय, भारती कठ भक्त चूडामणि गोस्वामी तुलसीदास।'

शुक्लजी की दृष्टि में वही काव्य श्रेष्ठ और उत्तम है जिससे अधिक से अधिक लोगों का कल्याण हो और आनन्द मिले। वास्तव मे श्रेष्ठ कविता कवि के हृदय मे उत्पन्न होकर सहृदय पाठको तक पहुँच कर उन्हें आनन्द-विभोर कर देती है। कविता के सम्बन्ध मे स्वय तुलसी ने अपना मत व्यक्त किया है—

जो कवित्त नहिं बुध आदर हीं।
सो स्रम बादि बाल-कवि कर हीं॥
कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कर हित होई॥'

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी की काव्य-कला 'स्वान्त सुखाय' होती हुई भी लोक-हितकारी हैं। तुलसी की कला मे 'सत्य, शिव सुन्दरम्' का सम्यक् सतुलन है, उसमे सत्यत्व, श्रेयत्व और प्रेमत्व तीनो का समावे है। तुलसी के हृदय से निकले उद्गार शुद्ध, सात्विक और सच्चे हैं।

काव्य-कला के दो पक्ष

काव्य-कला के दो पक्ष हैं—(i) अभ्यन्तर (अन्तरग) और (ii) वाह्य। अभ्यन्तर पक्ष को भाव-पक्ष कहते हैं और यही काव्य की आत्मा है। इस पक्ष मे कवि के भाव, विचार, अनुभूति और कल्पना पर विचार किया जाता है। वाह्य पक्ष का नाम कला-पक्ष है—यह काव्य का शरीर है। कला-पक्ष मे भाषा, शैली, छन्द, अलकार आदि पर ध्यान दिया जाता है। इसमे सन्देह नही कि काव्य-कला मे अधिक महत्त्व भाव-पक्ष रखता है, परन्तु काव्य-कला का पूर्ण उत्कर्ष वहीं देखा जाता है, जहाँ दोनो पक्षो में सुन्दर सामन्जस्य हो—भाव और उसकी अभिव्यक्ति दोनो ही सुन्दर हो, फिर कहना ही क्या ? अच्छे कवियो मे यह बात देखी जाती है कि ज्यो-ज्यो वे अनुभूति की गहराई मे उतरते हैं, उनके भावो मे उतनी ही तीव्रता आती जाती है और अभिव्यक्ति मे स्वत. सौंदर्य आ जाता है। तुलसी जैसे उत्कृष्ट कवि की कला मे दोनों पक्षों का पूर्ण समन्वय है।

तुलसी का भाव-पक्ष

तुलसी भावो के अगाध सागर हैं। अनुभूति की जिस गहराई और

व्यापकता तक तुलसी पहुँचे है, बहुत कम कवि पहुँच सके हैं। मानव-प्रकृति की जितनी थाह तुलसी ने ली है, किसी ने नही (सूरदास को छोडकर)। तुलसी की वास्तविकता अनुभूति, जहाँ से उन्हे सब प्रेरणाएँ प्राप्त होनी है, भक्ति की अनुभूति है और उसका आदर्श है चातक-प्रेम। इस सम्बन्ध मे स्व० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—'तुलसी का राम प्रेम चातक और मेघ जैसा है। चातक की याचना के भीतर जगत् की याचना है, क्योंकि मेघ भारतीय जनता के लिए लोक-हित का प्रतीक है।' इस सम्बन्ध मे तुलसी का यह दोहा याद आ जाता है—

'एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास।'

तुलसी के सभी ग्रन्थ इस प्रकार की गम्भीर भक्ति की व्यजना से भरे पड़े है, जिनका कि चरमोत्कर्ष 'विनय-पत्रिका' के पदो मे देखा जा सकता है। भक्ति-भावना के अतिरिक्त, मानव का कोई भी भाव ऐसा नही है जिसको तुलसी ने अपने काव्य मे स्थान न दिया हो। वे मानव-हृदय के कोने-कोने तक पहुँचे हुए हैं। जिनकी स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिकता के साथ मानव-भावो का तुलसी ने विश्लेषण किया है, उतना कदाचित् ही कोई कवि कर सका है। "तुलसी के 'मानस' मे जीवन की सभी परिस्थितियो का वर्णन मिलता है। ज्ञान और भक्ति, भक्ति के विभिन्न स्वरूप, राजधर्म, पतिव्रत-धर्म, भ्रातृ-प्रेम, मातृ-वत्सलता आदि अनेक प्रसगो की भाव-पूर्ण व्यजना 'मानस' मे है। वे विभिन्न पात्रो के द्वारा भावो की गहराई मे उतरकर उनके अन्तर्निहित रहस्यो का उद्-घाटन करने मे समर्थ हुए है। भाव पक्ष की सबलता के कारण ही उनके 'मानस' मे प्रसगानुकूल प्रेम, क्रोध, शोक, उत्साह, भय, आश्चर्य, हास निर्वेद, घृणा आदि भावो की सुन्दर व्यजना सफलता-पूर्वक हो सकी है।"

तुलसी आदर्श और मर्यादा के पोषक हैं। भरत की आत्म-ग्लानि, दशरथ का पुत्र प्रेम, सीता का सतीत्व, राम की मर्यादा आदि सभी भावो की व्यजना उत्कृष्ट बन पडी है। राम-वन-गमन के समय ग्राम-वधुओ की मनोदशा के वर्णन मे तो तुलसी ने अपने भाव-सौंदर्य का अपूर्व कोष ही खोल दिया है। तुलसी के काव्य मे यथास्थान कल्पना का सुन्दर योग उनके भावो और विचारो

की अभिव्यक्ति मे पूर्ण सहायक सिद्ध हुआ है। इस प्रकार तुलसी की काव्य-कला का अभ्यन्तर पक्ष बहुत ही उज्ज्वल और उत्कृष्ट बन पड़ा है।

तुलसी का कला-पक्ष

तुलसी का कला-पक्ष भी उनके भाव-पक्ष से कम सबल नही है। वे एक उच्चकोटि के कवि, विद्वान् और कला पारखी थे। वे भाषा के पण्डित थे। उनको भाषा पर पूर्ण अधिकार था। भाषा तुलसी के इशारे पर कठपुतली की तरह नाचती दिखलाई पडती है। भाषा का जो सरल, स्निग्ध और मधुर प्रवाह तुलसी की कविताओ मे दृष्टिगत होता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। तुलसी को दोनो काव्य-भाषाओं—अवधी और ब्रज—पर पूर्ण अधिकार था। सूर का केवल ब्रज भाषा पर ही और जायसी का केवल अवधी पर ही अधिकार था, पर तुलसी का अधिकार दोनो भाषाओ पर था। इसमे सन्देह नही कि तुलसी के हाथो मे पडकर ग्रामीण अवधी साहित्यिक भाषा बन गई तथा ब्रजभाषा ने भी संस्कृत की सुललित पदावली से एक नवीन परिधान पहन लिया। गोस्वामीजी की भाषा शुद्ध साहित्यिक तथा सब प्रकार के सौष्ठव और सौंदर्य से पूर्ण कही जा सकती है। तुलसी की भाषा रसानुवर्तिनी है, भाव के अनुसार उसका रूप भी मधुर तथा कर्कश बन जाता है।

तुलसी केशव की तरह चमत्कारवादी कवि नही (बरवै रामायण मे कुछ ऐसी झलक अवश्य मिलती है) थे। तुलसी की अलंकार-योजना बहुत सुन्दर और स्वाभाविक है। बलात् अलंकारो के प्रयोग से उन्होंने कविता-कामिनी के सौंदर्य को नष्ट नही किया है। इनके अलंकार भाव-व्यंजना मे पूर्ण योग देते है। यही कारण है कि तुलसी ने अधिकतर उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा आदि सादृश्य-मूलक अलंकारो का ही प्रयोग किया है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि तुलसी के काव्य मे अन्य अलंकारो को स्थान ही नही दिया गया। अन्य सब प्रकार के चमत्कार भी तुलसी की रचनाओ मे पाये है, किन्तु उनके प्रयोग मे कहीं भी अनौचित्य नही है।

लिए वीर, रौद्र आदि रसो के लिए छप्पय छन्द का, शृङ्गार के लिए सवैयो का एव अपने हृदय के मधुर भावो की व्यजना के लिए गीतो का प्रयोग किया है। उनके छन्दो की यह विशेषता है कि इनमे न यति-भग, गति-भग आदि दोष हैं और न भरती के शब्द ।

तुलसी ने अपने समय मे प्रचलित सब काव्य-पद्धतियो पर रचनाएँ की हैं और वे सबमे सफल हुए हैं। यह उनके उच्चकोटि के कलाकार होने का प्रमाण है। तुलसी की रस योजना, छन्द-योजना, अलंकर-योजना सब इतनी सुन्दर है कि उन्हे यदि रस-सिद्ध कवीश्वर कह दिया जाय तो असगत न होगा। तुलसी की काव्य-कला मे दोनो पक्ष पूर्णता को पहुँचे हुए हैं।

प्रश्न ३—तुलसीदास के काल की परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए बताइये कि क्या तुलसीदास को एक 'युग प्रतिनिधि कवि' कहा जा सकता है।

उत्तर—तुलसी ने जिस युग मे जन्म लिया, वह युग स्थिरता का नही था। वह सक्रान्ति-काल था, अव्यवस्था और अशान्ति का युग था। जीवन के किसी भी क्षेत्र मे व्यवस्था नहीं थी। समाज की दशा भी पतनोन्मुख थी। धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र मे उच्छृंखलता प्रसार पा रही थी।

राजनीतिक स्थिति

जिस समय तुलसी ने साहित्य-क्षेत्र मे पदार्पण किया, उस समय दिल्ली मे अकबर बादशाह शासन कर रहा था। कहते हैं उसमे उदारता और धार्मिक सहिष्णुता थी, परन्तु वह उसकी एक राजनीतिक चाल थी। हिन्दू-राज्य प्राय समाप्त हो चुके थे। हिन्दू-राजा मुगल-दरबार मे हाथ बाँधे खडे रहते थे और मुगल-बादशाह के इशारे पर नाचते थे। यहाँ तक कि राजपूतो ने मुगलो से रोटी-बेटी का व्यवहार तक आरम्भ कर दिया था। अकबर और जहाँगीर का अन्त पुर हिन्दू-नारियो से भरा था। फारसी पढने पर ही सरकारी नौकरी मिलती थी। सामन्तशाही का दौरदौरा था। विलासिता खूब रग जमा रही थी। हिन्दू-राजा प्रत्येक बात मे मुगल-बादशाहो की रीति-नीति का अनुकरण करने मे अपना सौभाग्य समझते थे। युद्ध भी चलते रहते थे। और साथ ही सामन्तो मे प्रतिस्पर्द्धा भी, जिनके कारण कितने ही परिवार अनाथ हो जाते

थे। देखने मे तो धार्मिक-सहिष्णुता थी किन्तु भीतर ही भीतर हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कृति को नष्ट किया जा रहा था।

धार्मिक स्थिति

तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का प्रभाव धार्मिक जगत् पर भी पड रहा था। धर्म प्राय अप्रत्यक्ष रूप मे राजनीति मे प्रभावित रहता है। हिन्दू-राजाओ के पतन के साथ-साथ धार्मिक जगत् मे उच्छृखलता ने जन्म लेकर नये-नये मत खडे कर दिए थे।

राज-नियन्त्रण के अभाव मे अनेक सम्प्रदायो, मत-मतान्तरो, साधना पद्धतियों एव सिद्धान्तो ने जन्म लेकर धार्मिक जगत् को विशृंखल कर दिया। धर्म के नाम पर दंभ और पाखण्ड का बोलबाला हो गया। वर्ण-व्यवस्था नष्ट हो गई, वाममार्गियो एव सिद्धों तथा नाथो ने अपनी गुह्य-साधना का प्रचार आरम्भ कर दिया। सूफी फकीरो का प्रभाव भी कम नही पड रहा था। प्रेम-मार्गी सूफी कवियो द्वारा रचित प्रेम-गाथाओ के बहाने इस्लाम के सिद्धान्त हिन्दुओ के हृदयो मे घर कर रहे थे। पीरो और औलियो की पूजा होने लगी थी। दूसरी तरफ, लोभ-लालच देकर या बल-प्रयोग द्वारा हिन्दुओ को यवन बनाया जा रहा था, उनके पवित्र स्थानो को देव-मन्दिरो को क्षति पहुँचाई जा रही थी। उनके साहित्य और सास्कृतिक सस्थाओ को नष्ट किया जा रहा था।

सामाजिक स्थिति

राज सत्ता हिन्दुओ के हाथ मे न थी, इस कारण धार्मिक अव्यवस्था के साथ-साथ सामाजिक अव्यवस्था भी चारो ओर फैल गई थी। प्राचीन शिक्षा पद्धति का लोप हो चला था। अशिक्षा के कारण लोग आचार-भ्रष्ट हो गये थे। वर्ण-व्यवस्था भग हो गई थी। समाज मे धूर्तों और पाखण्डियो का बोल-बाला था। ब्राह्मणो का पतन होने लगा था, नीच वर्ण के लोग सिर उठा रहे थे। अनेक कुप्रथाएँ फैली हुई थी। राज-घरानो मे उच्च कुल के लोगो मे विलासिता छाई हुई थी। अकबर का 'मीना बाजार' नैतिक पतन का एक अच्छा उदाहरण कहा जा सकता है। मुगलो का शासन सैनिक था, तलवार के बल पर चलता था, अत स्थायित्व के अभाव मे लोगों का जीवन शान्त नही

था। नाना प्रकार के कर-भार और अत्याचार से भी जन-साधारण पीडित थे। इस प्रकार देश की सामाजिक स्थिति पतनोन्मुख थी।

साहित्यिक स्थिति

तत्कालीन साहित्यिक स्थिति भी डाँवाडोल थी। दरबारो मे जिस साहित्य का सृजन होता था, उसमे लेश-मात्र भी साहित्यिकता न थी। राज-दरबार मे विलासिता, कामुकता और अश्लीलता का उद्घाटन ही तत्कालीन साहित्य का लक्ष्य बन गया था। कृष्ण-भक्त कवियों ने भी यही मार्ग अपना लिया था। कवि लोग आश्रय-दाता राजाओ और अमीरो की इस तरह प्रशसा करते थे मानो वे ईश्वर के अवतार हो। दूसरी तरफ कुछ उच्च वर्ग के लोग संस्कृत भाषा मे ही लिखते पढते थे, हिन्दी-भाषा मे लिखना वे अपना अपमान समझते थे। तुलसी के सामने ऐसा कोई साहित्यिक आदर्श न था, जिसे वे अपना सकें। साहित्य-क्षेत्र मे भी एक प्रकार की उच्छृंखलता ही थी।

तुलसी द्वारा किया गया कार्य

तुलसी सत, सुधारक, कवि, लोक-नायक सब कुछ थे। उन्होंने जो कुछ लिखा 'स्वान्त सुखाय' लिखा, किन्तु उनकी प्रत्येक रचना मे लोक-कल्याण की भावना छिपी हुई है। तुलसी ने अपना मार्ग स्वय बनाया और 'राम चरित मानस' लिख कर उन्होंने देश-वासियो को श्रुति सम्मत हरि-भक्ति का पथ दिखाया। तुलसी की विशेषता इस बात मे है कि वे युग-प्रवृत्तियो में नहीं बहे; उन्होने न नर-काव्य लिखा और न अपना अलग सम्प्रदाय चलाया। तुलसी राम के भक्त थे, और वे राम-भक्ति के सहारे ही जनता को ऊँचा उठाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने समस्त प्रचलित शैलियो और रूपो मे राम का ही गुण गाया और अपना अलग पथ न चला कर समन्वय-बुद्धि का ही परिचय दिया। आज भी क्या शिक्षित और क्या अशिक्षित सब तुलसी का नाम जानते हैं और उनके 'मानस' से अपने मानस की ज्वाला शान्त करते हैं।

युग-प्रतिनिधि-कवि

तुलसीदास युग-प्रतिनिधि कवि थे। उनकी रचनाओं मे तत्कालीन-परिस्थितियो का सुन्दर चित्रण मिलता है। 'रामचरितमानस' के उत्तर-काण्ड मे उन्होंने जो 'कलिमहिमा' गाई है, वह तत्कालीन परिस्थितियो का यथार्थ

चित्रण ही तो है। तुलसी के सम्बन्ध में नगेन्द्रदेव सिंह लिखते हैं—'तुलसी समाज-हित के सजग प्रहरी थे। वे जानते थे कि किस बात का समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा, अतः उनके पूरे साहित्य में एक भी पंक्ति ऐसी न मिलेगी जो लोक-विरोधी हो।" डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के मत में जैसे बुद्धदेव समन्वयकारी थे, गीता में समन्वय की चेष्टा है, उसी तरह तुलसीदास भी समन्वयकारी थे वे लोकनायक थे। डा० बल्देवप्रसाद मिश्र लिखते हैं—"तुलसी-मत न केवल मानव-धर्म और भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठ बातों को ही समेटे हुए है, वरन् वह गीता से लेकर गांधीवाद तक समस्त धर्म-प्रवर्तकों के सत्सिद्धान्तों को भी अपनी गोद में खिला रहा है।"

प्रश्न ४—प्रवन्धकार-कवि की दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास एवं केशवदास की तुलनात्मक समीक्षा कीजिए।

(राज० वि० वि० सन् १९७०)

अथवा

प्रबन्ध-काव्य की दृष्टि से 'रामचन्द्रिका' और 'रामचरितमानस' की तुलना कीजिए।

उत्तर—तुलसी और केशव दोनों ही प्रबन्धकार हैं। दोनों ने ही महाकाव्यों का प्रणयन किया है। दोनों ही कवि लब्ध प्रतिष्ठ और दोनों के ही महाकाव्य ख्याति-प्राप्त हैं। तुलसी ने 'रामचरितमानस' और केशव ने 'रामचन्द्रिका' महाकाव्य रचा है और दोनों की कथा और विषय भी एक ही हैं, अतः इन दोनों की तुलना प्रबन्धकार-कवि के रूप में अच्छी तरह से की जा सकती है। अब हमें यह देखना है कि ये दोनों कवि अपनी काव्य-साधना में कितना साम्य रखते हैं और इन्हें कितनी सफलता मिली है। ये दोनों कवि समकालीन भी हैं।

केशव और तुलसी दोनों ही हिन्दी-साहित्य में गौरव-पूर्ण स्थान रखते हैं, दोनों ही महाकवि हैं, किन्तु दोनों के क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं और जिन परिस्थितियों में रह कर दोनों ने काव्य-रचना की है, उनमें महान् अन्तर है।

तुलसी एक विरक्त महात्मा थे जिन्होंने सांसारिक विषय-वासना का

परित्याग कर अपना जीवन राम के चरणो मे लगा दिया था। उनको ख्याति सम्मान, आजीविका आदि की कोई चाह नही थी। उन्होने जो कुछ लिखा, 'स्वांत सुखाय' लिखा। केशवदास एक वैभवशाली विद्या-सम्पन्न कुल मे उत्पन्न हुए थे, जहाँ सब प्रकार के ठाठ थे, जहाँ मान-प्रतिष्ठा की भूख थी, आजीविका की चाह थी। केशव एक दरबारी कवि थे। उन्होने ओरछा-नरेश महाराजा इन्द्रजीत सिंह के अनुरोध से कविता की, दूसरो को प्रसन्न करने के लिए। केशव का जीवन ऐश्वर्य मे बीता। राज-दरबार मे रहकर केशव को दैनिक व्यवहार, राजनीतिक वाकपटुता, दाव-पेच, उक्ति-चातुर्य आदि का निकट से निरीक्षण करने का अवसर मिला था। इसके विपरीत तुलसी का जन्म एक निर्धन ब्राह्मण-कुल मे हुआ था, जहाँ विद्या और भोजन दोनो का अभाव था, भिक्षा-वृत्ति द्वारा उदर-पूर्ति करनी पडती थी। इस प्रकार तुलसी और केशव की परिस्थितियाँ भिन्न २ थी, जिनके फलस्वरूप दोनो की काव्य-साधना मे अन्तर होना स्वाभाविक है।

तुलसी संत पहले और कवि पीछे, केशव पडित पहले और कवि पीछे। यही कारण है कि तुलसी के मानस मे ज्ञान, भक्ति और प्रेम की अजस्र धारा प्रवाहित हुई है और केशव की रामचन्द्रिका मे छन्द, अलकार तथा पाडित्य-प्रदर्शन का अच्छा निर्वाह हुआ है। तुलसी समष्टिवादी थे, केशव व्यक्तिवादी। तुलसी की भावना, भक्ति, काव्य सब कुछ समष्टि के लिए है, किन्तु केशव का ध्यान समष्टि की ओर था ही नही। तुलसी मानव-जीवन के प्रतिनिधि कवि है, उनका काव्य-क्षेत्र विस्तृत है, उन्होने जीवन की सम्पूर्ण परिस्थितियो और दशाओ का सफलता पूर्वक चित्रण किया है। केशव का रचना-क्षेत्र सीमित है, उनकी रचनाओ मे जीवन के दर्शन नही होते है, कला के दर्शन होते है, उनमे वैसी तन्मयता और विभोरता नही जैसी तुलसी की रचनाओ मे उपलब्ध है। मानव-प्रकृति और बाह्य प्रकृति का जो यथार्थ रूप तुलसी के काव्य मे देखा जाता है, उसका केशव की रचनाओ मे सर्वथा अभाव है। केशव का ध्यान काव्य के अन्तरग की ओर था ही नही। तुलसी का ध्येय था लोक-संग्रह और लोक-रजन, केशव की दृष्टि लोक-कल्याण की ओर गई ही नही। वे सदा आत्म-प्रशसा या आश्रय-दाताओ की स्तुति मे ही लगे रहे।

प्रबन्ध-काव्य की दृष्टि से जितनी सफलता तुलसी को मिली है, केशव को उसकी आधी भी नहीं। इसका कारण है केशव का अलंकारवादी दृष्टिकोण। तुलसी की तरह केशव राम-कथा नहीं कहते, वे तो अवसर मिलते ही अलंकारों के चक्कर में पड़ जाते हैं, वर्णनों और संवादों की योजना में लगजाते हैं। कथा-वस्तु के समुचित विकास की ओर ध्यान न देकर केशव कथा-सूत्र को किसी वर्णन या संवाद में उलझा कर अपनी शब्द-चातुरी और उक्ति-चमत्कार की कारीगरी दिखाने लगते हैं। कथा के मार्मिक स्थलों में न रम कर वे नगर, दरबार, वाटिका आदि के वर्णन में अपने पांडित्य का प्रदर्शन करते हैं। चरित्र-चित्रण करने में तुलसी ने सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि से काम लिया है, केशव ने केवल बाह्य रूप का परिचय दिया है। तुलसी के पात्रों में जीवन की यथार्थता के जो दर्शन होते हैं, उनमें जो प्राण-प्रतिष्ठा है, केशव के पात्रों में न तो जीवन-दर्शन है और न नैतिक मर्यादा। रामायण में जैसी आदर्श पात्र-सृष्टि है, उसका 'रामचन्द्रिका' में अभाव है। केशव के हाथ में पड़ कर तो श्रीराम और भगवती सीता भी साधारण प्रेमी और प्रेमिका से प्रतीत होते हैं। अन्य पात्रों के विषय में तो कहना ही क्या ?

तुलसी का प्रकृति-चित्रण सुन्दर और सजीव है। तुलसी को प्रकृति से सहज प्रेम है, उनका हृदय प्रकृति की श्री, सुषमा एवं माधुर्य में पूर्ण रूपेण अनुरक्त है। केशव का हृदय प्रकृति-सौंदर्य में उतना नहीं रमता जितना अलंकार-सौन्दर्य में। यही कारण है कि उन्हें दंडक वन में पांडवों की प्रतिमा दिखाई पड़ती है और पंचवटी में शिव के रूप का दर्शन होता है।

संवाद केशव के सुन्दर हैं उनमें नाटकीयता है। तुलसी के संवादों में केशव के संवादों जैसी सजीवता उक्ति-वैचित्र्य और सतर्कता नहीं है। केशव का कला-पक्ष उत्कृष्ट है। अपनी छन्द-योजना, अलंकार-योजना, कल्पना-सौन्दर्य एवं उक्ति-वैचित्र्य तथा वाग्विदग्धता में केशव तुलसी से अवश्यमेव आगे निकल गये हैं, किन्तु भाव-पक्ष में तुलसी केशव को बहुत पीछे छोड़ गये हैं। युद्ध, प्रताप ऐश्वर्य, वीरता आदि का जैसा वर्णन केशव ने किया है, वैसा तुलसी से नहीं बन पड़ा है। तुलसी एक भाव-प्रवण संवेदन-शील कवि हैं और केशव एक पांडित्य-प्रदर्शन शील कलाकार। तुलसी कवि हैं, केशव आचार्य।

इसलिये केशव मे भावाभिव्यक्ति की न्यूनता और चमत्कार प्रदर्शन की अधिकता है।

तुलसी की रचनाओ मे काव्य के दोनो स्वरूपो-भाव और कला का सतुलित और समुचित विकास हुआ है। भाव-पक्ष तो तुलसी का प्रबल है ही, पर कला-पक्ष भी निर्बल नही। हाँ, केशव की तरह वे अपूर्व चमत्कार उत्पन्न करने मे ही नही लगे रहे। केशव का भाव-पक्ष बहुत ही निर्बल है, जहाँ कही वे भाव-पक्ष मे उतरे भी है, वहाँ भी वे कलात्मक सौन्दर्य मे फँस गये हैं। इसलिए जो भावोत्कर्ष हमे तुलसी मे देखने को मिलता है, वह केशव मे नही मिलता। जिन मार्मिक और भाव-पूर्ण स्थलो का जैसे राम का अयोध्या-त्याग, राम-भरत का मिलन, अशोक-वाटिका मे सीता, लक्ष्मण की मूर्छा आदि का वर्णन जिस सहृदयता के साथ तुलसी ने किया है, ऐसा केशव मे नही है, प्रत्युत ऐसे स्थलो पर तो केशव ने उलटे अलकार-प्रदर्शन की नीति अपना कर भावोत्कर्ष को आघात और पहुँचाया है।

रस-सृष्टि में भी दोनो कवियो से अन्तर है। वैसे दोनो कवियो ने ही अपने काव्यो मे नौ रसो का वर्णन किया है, किन्तु तुलसी के काव्यो मे रस-सृष्टि स्वत हो जाती है और केशव इसके लिए प्रयत्न करते से दिखाई देते हैं। केशव के रसो मे वह स्वाभाविकता नही जो तुलसी के रसो मे है। केशव की ममता शृ गार पर अधिक है, वे सब रसो का पर्यवसान शृ गार मे ही मानते हैं, किन्तु तुलसी मे सब रसो को यथा स्थान समान अवसर मिला है। तुलसी ने छन्दो, अलकारो एव रसो में सस्कृत कवियो की शैलियो का केशव की तरह अनुगमन नही किया, वे प्रत्येक क्षेत्र मे मौलिक हैं।

तुलसी की भाषा पूर्ण व्यवस्थित और प्रवाह-युक्त है। उन्होंने छद-योजना व अन्य किसी उद्देश्य मे शब्दो को कभी तोडा-मरोडा नही है। तुलसी को व्रज और अवधी दोनो भाषाओ पर समान अधिकार है। दोनो ही भाषाओ को तुलसी ने सस्कृत की तत्सम पदावली का उनमे समावेश करके ऊँचा उठाया है। केशव की भाषा केवल व्रज है, उस पर भी बुलेदखडी की छाप है। क्लिष्ट शब्दो के प्रयोग से भाषा मे दुर्बोधता आ गई है और प्रवाह नष्ट हो गया है। आवश्यकतानुसार केशव ने शब्दो को तोडा मरोडा भी है। तुलसी

की वर्णन-शैली केशव की वर्णन शैली की अपेक्षा अधिक रुचिकर और आकर्षक है।

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि प्रबन्धकार के रूप मे जितनी सफलता तुलसी को मिली है, उतनी केशव को नही। 'रामचरित मानस' आद्योपान्त एक प्रबन्ध-काव्य है, जब कि केशव की 'रामचन्द्रिका' मे मुक्तक काव्य के गुण अधिक है, वह ऐसी लगती है मानो वह लक्षणो के उदाहरण देने के लिए रचे गये पद्यो का एक क्रमानुक्रम सग्रह हो। केशव मे भावानुभूति की कमी है अत कुछ आलोचक उन्हे 'हृदय-हीन' कहते हैं, और क्लिष्ट भाषा के कारण कुछ उन्हें 'कठिन काव्य का प्रेत' कहते हैं, परन्तु तुलसी मे ये दोनों ही दुर्गुण नहीं है। तुलसी प्रत्येक क्षेत्र में मौलिक हैं, और इस दृष्टि मे वे बहुत ऊँचे हैं। तुलसी के समकक्ष सूर या जायसी ही खडे हो सकते हैं, केशव नही।

प्रश्न ५--'तुलसीदास ने अपने समय मे प्रचलित सभी काव्य-शैलियों मे लिखा और सभी के सौंदर्य की पराकाष्ठा अपनी दिव्य-वाणी में दिखाई।'--इस कथन की विवेचना करते हुये तुलसी-काव्य की विशेषताओं का उल्लेख कीजिये।

५ गंग आदि की कवित्त-सवैया-शैली—'कवितावली' इस शैली का श्रेष्ठ उदाहरण है।

६ विद्यापति, सूर आदि की पद शैली—इस शैली मे तुलसी ने 'गीतावली', 'कृष्ण गीतावली' और विनय पत्रिका' की रचना की है।

७. लोक गीत-शली—लोक मे प्रचलित विभिन्न गीत शैलियो मे भी तुलसी ने अपनी रचनाए की, जिनके उदाहरण 'जानकी मगल', 'पार्वती मंगल' 'रामलला-नहछू' आदि कहे जा सकते हैं।

इनके अतिरिक्त तुलसी ने अपने समय मे प्रचलित विभिन्न शैलियो मे काव्य रचना करके केवल उन्हें अपनाया ही नही, प्रत्युत उनमे जो दोष चले आ रहे थे, उनको भी दूर किया। उन्होने मुक्तक और प्रबन्ध दोनो शैलियो को अपनाया। प्रबन्ध काव्यो मे सम्बन्ध-निर्वाह और कथा-प्रवाह मे जो दोष थे, उन्हें दूर कर उनके प्रबन्ध-शैथिल्य को दूर किया। उनका 'रामचरितमानस' प्रबन्ध-काव्य की दृष्टि से निर्दोष और उत्तम कहा जा सकता है। इसी प्रकार उन्होने मुक्तक काव्य मे कुछ ऐसी रचनाए की है जो मुक्तक और प्रबन्ध-काव्य के बीच की हैं, जिन्हे हम प्रबन्धात्मक मुक्तक' कह सकते हैं। 'कवितावली' और 'गीतावली' ऐसी ही रचनाए हैं, जिनको न शुद्ध मुक्तक कहा जा सकता है और न शुद्ध प्रबन्ध-काव्य ही, क्योकि उनके पूर्वापर छदो और पदो मे सम्बध सा प्रतीत होता है, सर्वथा निरपेक्षता नही है, इसलिए इन्हें मुक्तक काव्य कहते सकोच होता है, तथा इनके क्रम और निर्वाह मे प्रबन्ध-काव्य जैसा सगठन नही, अत ये प्रबन्ध-काव्य भी नही कहे जा सकते। ऐसी स्थिति मे इन्हें प्रबधात्मक मुक्तक कहा जा सकता है और यह तुलसी का नया प्रयोग माना जा सकता है। इसी प्रकार तुलसी ने भावात्मक और लोकाभिव्यजक दोनो शैलियो को अपनाया है और दोनो मे अपूर्व समन्वय भी स्थापित किया है। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि तुलसी की लेखनी का संसर्ग पाकर समस्त प्रचलित काव्य-शैलियाँ चमक उठी।

तुलसी-काव्य की विशेषताए

तुलसी जैसा कवि न हुआ और न होगा। उनका काव्य गुणो की समष्टि है। तुलसी का क्षेत्र भी अन्य कवियो की अपेक्षा अधिक व्यापक और

विस्तृत है। तुलसी की वे रचनाएँ जो प्रामाणिक मानी जाती हैं, अच्छी संख्या में हैं।

तुलसी को मुक्तक, गीति और प्रबन्ध तीनों प्रकार के काव्यों में अपूर्व सफलता मिली है। तुलसी की काव्य-कला उत्कृष्ट कोटि की है, उसमें भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों का सुन्दर समन्वय है। तुलसी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समन्वय-बुद्धि लेकर चले हैं। तुलसी के काव्य में भक्ति-भावना और लोक-संग्रह दोनों का अपूर्व सम्मिलन है। इनकी रचना 'स्वान्तः सुखाय' होती हुई भी लोकहितकारी है। इन्होंने अपने काव्य में असमर्यादित कोई बात नहीं कही सर्वत्र मर्यादा का पालन किया है। तुलसी का चरित्र-चित्रण अद्वितीय और अनुपम है। तुलसी का काव्य न अधिक सरल है और न जटिल, एक साधारण जन से लेकर विद्वान तक के मन को वह मोहने वाला है। तुलसी का काव्य सत्यं, शिव और सुन्दरम् का एक सुन्दर नमूना है। तुलसी खंडन-मण्डन के चक्कर में नहीं पड़े। उनका ध्येय था—सब को राम-रसायन देकर देश और समाज का कल्याण करना, और तुलसी को इसमें पर्याप्त सफलता भी मिली है।

प्रश्न ६—'तुलसीदास समन्वयकारी कवि थे'। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस मत की उपयुक्त उदाहरण देते हुए पुष्टि कीजिये।

उत्तर—तुलसी सच्चे संत और सुधारक थे। वे राम के अनन्य भक्त थे, और राम-भक्ति के द्वारा ही वे देश और समाज को ऊँचा उठाना चाहते थे। तुलसी को लोक और शास्त्र दोनों का पूर्ण अनुभव था। उन्हें तत्कालीन समस्त परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान था। वर्षों देशाटन करने से वे देश की राज-नीतिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक और नैतिक दशाओं से भलीप्रकार परिचित थे। वे शास्त्रों के गम्भीर अध्ययन के समान ही विविध लोक-परम्पराओं का अध्ययन भी कर चुके थे। वे तत्कालीन धार्मिक ढाँचे से संतुष्ट न थे, वे हिन्दू-समाज को सुधारना चाहते थे। इसलिए वे अपूर्व समन्वय-शक्ति लेकर हिन्दी-जगत् के सामने आए। उनका 'रामचरितमानस' की रचना करने का उद्देश्य ही जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से भेद-भाव हटाकर एकता (सामंजस्य) स्थापित करना था। तुलसी की प्रकृति समन्वयात्मक थी। उनकी समन्वयात्मक प्रतिभा के दर्शन हम विभिन्न क्षेत्रों में करते हैं।

दार्शनिक विचारो में समन्वय

तुलसी धर्म-क्षेत्र मे फैले भेद-भाव को मिटाना चाहते थे। अत सर्व-प्रथम तुलसी ने निर्गुण और सगुण मे समन्वय स्थापित किया— सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा।' तुलसी के राम 'ब्रह्मा विष्णु नचावन हारा' भी हैं और विष्णु के अवतार भी हैं—वह सगुण और निर्गुण दोनो के प्रतीक हैं। तुलसी ने नाम को ब्रह्म और राम से भी बडा माना है। एक ओर वे 'निजानन्द निरुपाधि अनूपा' कहते हैं तथा दूसरी ओर वे भक्तो के लिए राम को अवतार लिवा देते हैं। उन्होने द्वैतवाद और अद्वैतवाद मे समन्वय किया। शकर के अद्वैतवाद तथा रामानुज के विशिष्टाद्वैत के समन्वय के अनेक उदाहरण 'मानस' और 'विनय-पत्रिका' मे भरे पडे है।

धार्मिक भावना मे समन्वय

तुलसी राम के अनन्य भक्त थे वे ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ठ समझते थे, किन्तु वेद-शास्त्र निहित विचारो से वे विरोध नही रखते थे। भक्त होते हुए भी ज्ञान की महत्ता स्वीकार करते थे। 'ज्ञानहि भक्तिहि नहि कछु भेदा,' कहकर दोनो का सापेक्ष महत्त्व दिखलाते है। तुलसी के अनुसार भक्ति से निर्मल ज्ञान पैदा होता है और ज्ञानयुक्त भक्ति से भव-बधन से छुटकारा मिलता है। इस प्रकार तुलसी ने भक्ति, ज्ञान और कर्म मे समन्वय स्थापित किया है। तुलसी ने धर्म के बाह्यरूपो, व्रत-उपवास, पाठ-पूजा स्नान-ध्यान, तिलक-मुद्रा आदि मे भी आस्था प्रकट की है। वे वर्ण-व्यवस्था और आश्रम-व्यवस्था मे भी विश्वास रखते हैं। तुलसी ने धर्म के इन वाह्य-स्वरूपो की न निन्दा की और न खण्डन किया। तुलसी भक्ति अन्ध-भक्ति नही है, उन्होने भक्ति का विरति-विवेक से सामजस्य कर दिया है। अपने प्रभु राम में तुलसी ने शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वय कर दिया है। तुलसी ने शैवो, वैष्णवो तथा शाक्तो के बीच भेद-भाव हटाकर उन्हें निकट सम्पर्क मे ला दिया। तुलसी राम के अनन्य उपासक होते हुए भी स्वय शिवोपासना करते थे। वे राम-कथा मे शिव-कथा जोडकर दोनो की भक्ति का अन्योन्याश्रम सम्बध स्थापित करते हैं और बल देते हैं कि राम-भक्त होने के लिए शिव-भक्त होना आवश्यक है। तुलसी

यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि राम और शिव दोनो एक ही शक्ति हैं। उन्होंने राम के मुख से—

'शिव-द्रोही मम दास कहावा।
सो नर सपनेहु मोहि न भावा॥

कहलवा कर दोनो सम्प्रदायो के परस्पर विरोध को समूल नष्ट कर दिया है। इतना ही नही, तुलसी ने सर्वदेव-समन्वय, त्रिदेव समन्वय तथा भक्ति के विभिन्न साधनो मे भी अपनी समन्वय बुद्धि का परिचय दिया है। तुलसी ने वास्तव मे धर्म की अन्तरात्मा और वाह्य-रूप का ऐसा अद्भुत सामजस्य किया है कि उनका किसी भी मत या धर्म मे द्वेष नही है। उन्होंने वैष्णव धर्म का जो व्यापक रूप सामने रखा है, उसमे शैव, शाक्त, पुष्टिमार्गी तथा हिन्दु-धर्म के अन्य सव सम्प्रदाय सरलता से समा सकते हैं।

शैली समन्वय

तुलसी एक उत्कृष्ट कोटि के कलाकार थे। अत उन्होंने अपने समय में प्रचलित सभी काव्य-शैलियो मे काव्य-रचना की और अपूर्व सफलता प्राप्त की। तुलसी के समय मे चारणो की छप्पय-शैली कवीर आदि की दोहा-शैली, जायसी की दोहा-चौपाई, रहीम की बरवै-शैली विद्यापति सूर आदि की पद-शैली तथा गग आदि की कवित्त सवैया-शैली प्रचलित थी। तुलसी ने इन सभी शैलियो मे समन्वित रूप का अपने काव्य मे उपयोग किया है।

भाषा-समन्वय

तुलसी ने संस्कृत और हिन्दी का समन्वय किया। व्रज और अवधी दोनो भाषाओं मे काव्य-रचना करके तुलसी ने दोनो को समान महत्त्व देकर दोनो का समन्वय किया। उनका दोनो भाषाओ पर असाधारण अधिकार था।

वस्तु-समन्वय

तुलसी ने जिन-जिन ग्रन्थो मे अपनी कथा-वस्तु ली है उदाहरण के लिए वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक आदि, उन सबकी वस्तुओ का अपने काव्य मे समन्वय कर लिया।

भाव-पक्ष और कला-पक्ष का समन्वय

कला-पक्ष और भाव-पक्ष का जितना सुन्दर समन्वय तुलसी मे मिलता है, वैसा बहुत ही कम कवियो मे देखने मे आता है। भाव और भाषा दोनो पर तुलसी को पूर्ण अधिकार है। उनके भावो, विचारो और अनुभूतियो के अनुसार ही उनकी अभिव्यक्ति की गई है। दोनो पक्षो के सुन्दर समन्वय से तुलसी की काव्य-कला चरम-उत्कर्ष पर पहुँच गई है।

कवित्व और साधुता का समन्वय

तुलसी एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनमे साधुता और कवित्व का अपूर्व समन्वय पाया जाता है। तुलसी मे न धार्मिक कट्टरता है और न सन्त-कवियो की सी अटपटी वाणी। न वे एकदम लोक-मर्यादा के रूप मे सासारिक चित्र अङ्कित करते हैं जिनमे न धर्म-भावना है और न आध्यात्मिकता। उन्होने धार्मिक-विश्वासो, लोक-मान्यताओ आदि विविध भावो को एक सूत्र मे इस तरह बाँधा है कि उसमे उनका बडा से बडा विरोधी भी विश्वास रखता है, उनकी कटु-उक्तियो मे भी पवित्र तटस्थता है। यह सब तुलसी की अद्वितीय कवित्व-शक्ति और अनन्य साधुता के समन्वय का ही परिणाम है कि तुलसी की रचनाएँ एक ओर विमल भक्ति का प्रसार करती हैं और दूसरी ओर वे मानव-जीवन के विविध पक्षो का स्पर्श कर उदात्त भावनाओ को जगाती हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार तुलसी की रचनाओ मे यथार्थ और आदर्श का, कवित्व और साधुता का, ज्ञान और भक्ति का, विचार और भावना का, व्यक्ति और समाज का, आध्यात्मिकता और भौतिकता का अपूर्व सामंजस्य है। इतना ही नही, तुलसी ने तो पण्डित-मूर्ख, भक्त-कर्मकाण्डी, राजा-प्रजा, पति-पत्नी आदि सभी मे समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया है। इसी अपनी अपूर्व सामजस्य-बुद्धि के कारण वे काव्य-सृष्टा के साथ-साथ समाज-सुधारक भी बन गये और लोक-नायक कहलाये। अपनी समन्वय-शक्ति के बल पर ही उन्होने समूचे समाज को जो विशृ खल, अस्त-व्यस्त और जर्जरित हो गया था, एक सूत्र मे बाधा। यह सब उनके निश्छल, आडम्बर-विहीन, सरल और सच्चे साधु-जीवन का प्रभाव था।

प्रश्न ७—तुलसी की लोक-प्रियता के कारणो का उल्लेख करते हुये तुलसी-साहित्य के गुणावगुणों पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिये।

उत्तर—तुलसी की लोक-प्रियता के अनेक कारण हैं। सर्व-प्रथम तुलसी का व्यक्तित्व ही ऐसा है जो सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। उनका जीवन आडम्बर विहीन था, सरलता की वे प्रतिमूर्ति थे, आत्म-विश्वास उनमे कूट-कूट कर भरा था। अपने आराध्य के प्रति उनका अटूट विश्वास था, एक-निष्ठ भक्ति थी, उद्गार उनके सच्चे थे। वे ख्याति-लाभ से दूर रहकर निष्काम भावना से समाज-सेवा कर रहे थे।

(i) तुलसी युग-प्रतिनिधि कवि थे। उन्होंने तत्कालीन समाज का जीता-जागता चित्र सामने रखा है। उन्होने अपने समय की विभिन्न परिस्थितियों का केवल यथार्थ चित्रण ही नही किया, उन्हे परखा और मोड़कर समाज के अनु-कूल भी बनाया। उन्होंने तत्कालीन निराश जनता को जीवन का अमर संदेश भी दिया। तत्कालीन लोक-जीवन को ऊँचा उठाने मे तुलसी का पूर्ण हाथ था।

(ii) तुलसी व्यवस्था प्रेमी थे। वे जीवन के किसी भी क्षेत्र मे उच्छृ-ङ्खलता पसन्द नही करते थे। वे पुरातन वस्तु को पूर्णतः नष्ट करके नव-निर्माण के पक्ष मे नहीं थे। वे पुरातन वस्तु को ही, उसका कुत्सित और हानि-कारक अंश निकाल कर, नवीन बनाना चाहते थे। तुलसी मे प्राचीन-नवीन का संगम है। उन्होंने अपने समय में प्रचलित रीति-रिवाजों, संस्कारों विश्वासों मान्यताओं, उपासना-विधियों, मत-मतान्तरों एवं सिद्धान्तों का विरोध नहीं किया, न उनका खण्डन-मण्डन किया, प्रत्युत उन्होंने अपनी समन्वयात्मक प्रतिभा से सबका समन्वय स्वीकार करते हुए, उनका मत-भेद दूर कर, उनमें एकता स्थापित की। इस प्रकार तुलसी ने किसी भी सम्प्रदाय या वर्ग को अप्रसन्न नहीं किया।

(iii) तुलसी समाज-हित के सजग प्रहरी थे। वे जानते थे कि किसी बात का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है। अतः उनके पूरे साहित्य में एक भी ऐसी बात नहीं मिलेगी जो लोक-विरोधी हो। वे मर्यादावादी थे, उन्होंने एक भी अमर्यादित बात नहीं कही।

(iv) तुलसी की प्रकृति समन्वयात्मक थी। उन्होने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे भेद-भाव हटा कर सामंजस्य स्थापित किया। उन्होने द्वैत, अद्वैत और विशिष्टा-द्वैत मे एकता स्थापित की। भक्ति, ज्ञान और कर्म मे समन्वय स्थापित किया, शाक्तो, वैष्णवो और शैवो का मनोमालिन्य दूर कर उन्हे एक साथ एक धरातल पर खडा किया। इस प्रकार तुलसी ने अपनी समन्वयात्मक प्रतिभा से अपने समय मे प्रचलित समस्त विरोधिनी प्रवृत्तियो का परिहार करके यथार्थ और आदर्श का, कवित्व और साधुता का, विचार और भावना का, व्यक्ति और समाज का तथा आध्यात्मिकता और भौतिकवाद का अपूर्व समन्वय किया है।

(v) तुलसी की प्रकृति सार-ग्राहिणी थी। उन्होने सार-ग्रहण करने मे अद्भुत क्षमता का परिचय दिया है। उनकी रचनाएँ 'नानापुराण-निगमागम-सम्मत हैं। मानव-प्रकृति के वे पक्के पारखी थे, उन्हे उसका सूक्ष्म ज्ञान था। उनका रामचरितमानस' मानव-प्रकृति के सूक्ष्म विश्लेषण से ओत-प्रोत है। उसका प्रत्येक पात्र पाठक के हृदय पर अपनी अमिट छाप जमा देता है। मानव-प्रकृति के जितने अधिक रूपो के साथ गोस्वामीजी के हृदय का रागात्मक सामजस्य हम देखते है, उतना अधिक हिन्दी भाषा के और किसी कवि के हृदय का नही। सार ग्राहिणी प्रवृति के कारण ही वे लोक-प्रिय साहित्य के द्वारा साधना का मार्ग प्रशस्त बना सके हैं। यह उनकी सार-ग्राहिणी प्रवृत्ति का ही परिणाम है कि उनकी राम-भक्ति मे सम्पूर्ण हिंदू-धर्म समाया हुआ है। इस सम्बन्ध मे डा० बल्देवप्रसाद मिश्र का कथन पठनीय है—

'तुलसी-मत न केवल मानव-धर्म और भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठ बातों को ही समेटे हुये है वरन् यह गीता से लेकर गाधीवाद तक समग्र धर्म-प्रवर्तकों के सत्सिद्धान्तो को भी अपनी गोद मे खिला रहा है।'

(vi) तुलसी ने अपने काव्य मे लोक-कल्याण एव सयमित जीवन पर जोर दिया है। उन्होने हिंदू-गृहस्थ-जीवन और दाम्पत्य-प्रेम के अनन्यतम चित्र उपस्थित किये हैं। सम्पूर्ण हिंदी-साहित्य मे प्रेम का ऐसा सुंदर, सयमित और दाम्पत्य-भावपूर्ण चित्रण और कही नही है जैसा तुलसी के 'राम चरितमानस' मे है। साथ ही तुलसी-काव्य मे बुद्धिवाद और हृदयवाद का

विशुद्धतम रूप ही नहीं मिलता, प्रत्युत दोनो के सुदर सामजस्य के भी दर्शन होते हैं।

(vii) तुलसीदास एक साथ भक्त, कवि और विचारक हैं। उनमें कवित्व के साथ-साथ साधना का भी अपूर्व सगम है। उनकी रचनाएँ 'स्वान्त सुखाय' होते हुए 'लोक-हिताय' अधिक हैं। तुलसी सिद्ध और भविष्य द्रष्टा थे। वे कलि-प्रेरित भौतिकवादी प्रवृत्तियो का अध्ययन कर चुके थे। उन्होने 'राम-चरितमानस' के उत्तर काड मे 'कलि-महिमा' के अन्तर्गत जिस पथ-भ्रष्ट भौतिकवादी समाज का नग्न चित्र प्रस्तुत किया है, वह हमारी आज की समाज ही है। उन्होंने अमोघ राम-रसायन देकर समाज का शाश्वत कल्याण किया है। केवल उत्तर भारत मे ही नही, आधुनिक युग मे तो समग्र भारत मे, यहाँ तक कि कतिपय सभ्य कहे जाने वाले अन्य देशो मे भी तुलसी और तुलसी की रामायण का आज इतना सम्मान हो रहा है कि कदाचित् ही इतना सम्मान अन्य किसी कवि अथवा ग्रथ ने प्राप्त किया हो। विभिन्न भाषाओ मे तुलसीकृत रामायण का अनुवाद होना इस कथन का प्रमाण है।

(viii) काव्य-कला की दृष्टि से तुलसी का स्थान सर्वोपरि है। जैसा काव्य-सौष्ठव तुलसी की रचनाओ मे मिलता है, वैसा बहुत ही कम कवियो मे देखने को मिलता है। भाव-पक्ष और कला-पक्ष का तुलसी की रचनाओ मे अपूर्व समन्वय है, ऐसा सुदर समन्वय विरले ही कवियो की काव्य-कला मे मिलेगा। हृदय के विविध भावो की जितनी गम्भीर व्यजना तुलसी मे मिलती है, उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। चरित्र-चित्रण में तो तुलसी की तुलना ससार के गिने-चुने कवियो मे ही की जा सकती है। तुलसी भाषा के तो पडित थे, भाषा उनके इशारे पर कठपुतली की तरह नाचती थी। भाव के अनुसार भाषा को कोमल, मधुर अथवा कर्कश बना लेना तुलसी जैसे कलाकार का ही काम था। तुलसी की भाषा के सम्बन्ध में वयोवृद्ध डा० गुलाबराय एम०ए० लिखते हैं कि 'तुलसी ने भाषा की शक्तियों का पूर्ण उपयोग कर उसमे गति और शक्ति दोनों उत्पन्न कर दी हैं। यह हमारे हृदय को स्पर्श कर उनका सदेश हम तक पहुँचाने मे समर्थ होती है।

(ix) तुलसी के सम्बन्ध में विद्वान् आलोचकों के मत। तुलसी के

कवित्व पर मुग्ध होकर श्री विश्वप्रकाश दीक्षित ने जो अपने उद्‌गार प्रकट किए हैं, वे उल्लेखनीय है। वे कहते है—'तुलसीदास की जैसी काव्य-प्रतिभा लेकर दूसरा कवि जन्मा ही नही। उनका जैसा प्रभावशाली व्यक्तित्व, एक-निष्ठ, परम भक्त, युग-युग का प्रतिनिधि, भविष्य द्रष्टा, भविष्य-स्रष्टा समन्वय की बुद्धि और सार-ग्राहिणी दृष्टिवाला, सूक्ष्म-निरीक्षक, उपदेष्टा, प्रचारक, धर्म-संस्थापक दूसरा कवि हिंदी मे नही है'। तुलसी के सम्बध मे स्वर्गीय रामचंद्र शुक्ल के विचार भी मनन करने योग्य है, वे कहते हैं—'यदि कोई पूछे कि जनता के हृदय पर सबसे अधिक विस्तृत अधिकार रखने वाला हिंदी का सबसे बडा कवि कौन है, तो उसका एक मात्र यही उत्तर ठीक हो सकता है कि भारत-हृदय, भारतीकंठ, भक्त-चूडामणि गोस्वामी तुलसीदास'। तुलसी की लोक-प्रियता दिखाने के लिए ये दो मत ही पर्याप्त हैं।

(x) **तुलसी का प्रभाव साहित्य और समाज पर** कितना पडा है तथा पड रहा है, यह अपरोक्ष नही, और प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण की आवश्यकता भी नही। तुलसी के लोक-प्रिय और प्रभावशाली साहित्य के सामने परवर्ती कवियो के सब प्रयत्न फीके पड गये। तुलसी जैसा न राम-भक्त ही दिखलाई दिया और न रससिद्ध कवि ही। रही बात समाज की, सो प्रत्यक्ष देख ही रहे हैं कि शिक्षित और अशिक्षित दोनो वर्गों पर तुलसी का समान प्रभाव है। उन्होंने अध्यात्म के गूढ से गूढ मर्मों को, दर्शन-शास्त्र के जटिल सिद्धान्तो को अत्यन्त सरल करके सरल लोक-भाषा मे प्रस्तुत किया है जिसमे सब लाभान्वित हो सकें। ये ही सब बातें तुलसी की लोक-प्रियता के कारण हैं।

तुलसी-साहित्य के गुणावगुणों पर टिप्पणी—तुलसी साहित्य के गुणावगुणो के सम्बध मे केवल इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि तुलसी-साहित्य मे गुण ही गुण हैं, उसमे दोष हैं तो यही कि तुलसी ने नारी-निन्दा की। परतु ऐसे कुछ दोष भी हो तो वे उनके गुणो के प्रकाश मे छिप जाते है, दिखलाई ही नही देते। ईश्वर के अतिरिक्त कौन ऐसा है जो पूर्ण और निर्दोष हो। तुलसी एक मानव थे, उनमे व उनके द्वारा रचे हुए साहित्य मे कुछ दोषो का पाया जाना कोई आश्चर्य-भरी बात नही। किंतु ये दोष भी उसे ही मिल सकेंगे जो केवल दोष ढूँढने मात्र का ही प्रयास करे। हमारी दृष्टि मे तो तुलसी-

साहित्य मे गुण ही भरे हैं, अवगुण नही। यदि हम सहृदयतापूर्वक उन सब परिस्थितियो पर विचार करें जिनके अधीन तुलसी को रहना पडा और काव्य सृजन करना पडा, तो हमे तुलसी-साहित्य मे एक भी दोष न मिलेगा।

प्रश्न ८—तुलसीदास जी के 'रामचरितमानस' के 'बालकाड' मे आये हुए 'मानस-रूपक' को अपने शब्दों मे लिख कर 'मानस-रूपक' के महत्व पर प्रकाश डालिए। (राज०वि०वि० सन् १९६९-७०)

उत्तर—राम-काव्यकारो के समान तुलसी ने अपनी राम-कथा का नाम रामायण क्यो नही रखा? रामचरितमानस क्यो रखा? तुलसी ने स्वय बालकाड मे इसके नाम करण के सम्बन्ध मे उल्लेख कर दिया है।

रामचरित की रचना सर्व-प्रथम महादेवजी ने अपने मानस (मन) मे की और कितने ही दिनो तक इसे अपने मन मे ही रखा। तदनन्तर उत्तम अवसर जान कर उन्होंने इसे पार्वती को सुनाया। महादेवजी ने अपने हृदय में विचार कर और प्रसन्न होकर इसका नाम 'रामचरितमानस' रखा।

'मानस' शब्द के तीन अर्थ हैं—(१) मन, चित (२) मानसरोवर (३) रामचरितमानस (काव्य)। तुलसीदासजी ने 'मानस' का अर्थ मानसरोवर लेकर जो 'मानस' पर मानस का रूपक बाँधा है, वह बहुत लम्बा और सुन्दर है। यह रूपक कवि की कल्पना और प्रतिभा का परिचायक है। इतने लम्बे साग रूपक का उदाहरण शायद ही कही मिले।

मानस रूपक

तुलसी ने 'मानस' के ऊपर 'मानसरोवर' का आरोप किया है। इस मानसरोवर मे साधु-संत रूपी मेघो से, जो राम का सुयश रूपी वारि बरसा, वह पवित्र बुद्धिरूपी पृथ्वी पर पड़ कर एव सिमिट कर कानरूपी मार्ग से चला और मानस-रूपी श्रेष्ठ स्थान पर एकत्र होकर स्थिर हो गया। इस तरह मानस की रचना हुई।

'रामचरितमानस' मे जो सात काड हैं, वे ही इस सरोवर की सात सीढ़ियाँ हैं, राम की महिमा का वर्णन ही इस सुन्दर सरोवर की गहराई है। राम और सीता का सुयश ही इसमें सुधोपम जल है। इसमें जो उपमाएँ दी गई हैं, वे ही तरंगें हैं। सुन्दर चौपाइयाँ खूब फैली हुई कमलिनियाँ हैं और

काव्योक्तियाँ सुन्दर सीपियाँ है जो मोती उत्पन्न करती हैं, इसमे जा सुन्दर छन्द, सोरठे और दोहे हैं, वे ही इसमे रंग-विरगे कमल हैं। अनुपम अर्थ, सुन्दर-और ललित भाषा ही इस सरोवर के फूलो मे पराग, मकरंद और सौरभ है। पुण्यात्मा भक्तो के समूह ही इसमे भौंरो की सुन्दर पंक्तियाँ है, ज्ञान, वैराग्य और विचार ही हस हैं, ध्वनि, व्यग्य, वक्रोक्ति आदि ही मनोहर मछलिया हैं। धर्म, कर्म, जप, तप, योग आदि इस सुन्दर सरोवर के जलचर-जीव हैं। पुण्यात्मा-जनो के, साधुओ के और राम नाम के गुणो के गान ही जल-पक्षी हैं। सतो की सभा ही इसके चारो ओर की अमराई है, श्रद्धा ही वसन्त ऋतु है।

अनेक प्रकार से भक्ति का निरूपण, क्षमा, दया और दम लताओ के मडप हैं। शम, यम, नियम इसके फूल हैं और ज्ञान ही इसका फल है, श्रीहरि के चरणो मे प्रेम ही इस ज्ञान रूपी फल का रस है। कथा सुनकर जो रोमाञ्च होता है, वही वाटिका, वाग और वन हैं, कथा सुनकर जो सुख होता है, वही पक्षियो का विहार है। निर्मल मन ही माली है। 'रामचरित-मानस, का जो पाठ करते है, वे ही इस सरोवर के चतुर रख वाले हैं और जो आदर के साथ इसे सुनते हैं, वे ही इसके अधिकारी देवता हैं। जो अत्यत दुष्ट और विषयी जीव है, वे अभागे वगुले और कौए है जो इसके समीप नही जाते, क्योकि वहाँ वे अपना खाद्य-पदार्थ (विषय-रस के नाना प्रसग) नही पाते।'

इस सरोवर तक विना राम कृपा के कोई नही आ सकता। क्योकि यहाँ तक आने मे अनेक कठिनाइयाँ हैं—घोर कुसग ही भयानक मार्ग है, कुसगियो के वचन ही वाघ, सिंह और साँप हैं, घर-गृहस्थी के झंझट ही विशाल पर्वत है, मोह, मद, मान ही वीहड वन है तथा नाना प्रकार के कुतर्क ही मार्ग को रोकनेवाली भयानक नदियाँ है।

जिन पथिको के पास मार्ग के लिए श्रद्धारूपी सवल नही है और न सतो का साथ ही है, उनके लिए यह सरोवर अगम है। कोई व्यक्ति कष्ट उठाकर यदि इस सरोवर तक पहुँच भी जाय, तो उसे वहाँ नीद-रूपी शीतज्वर आ जाता है या जडता रूपी जाडा लगने लगता है, जिससे वह अभागा इसमे स्नान नही कर पाता। वह वैसे ही लौट जाता है। किन्तु जिस पर रघुनाथजी

की कृपा होती है, उसे मार्ग मे कोई विघ्न नही सताते। वह इसमे मज्जन पर त्रिताप से मुक्त हो जाता है। रूपक के अन्त में तुलसीदास जी ने क्या ही सार-गर्भित बात कही है—

'जो नहाइ चह एहिं सर भाई।
सो सतसंग करउ मन लाई ॥'

मानस-रूपक का महत्व

मानस-रूपक का महत्व यह है कि इसके द्वारा तुलसीदासजी ने 'मानस' की विषय-वस्तु को सामने रख दिया है। उन्होंने यह बतलाया है कि जो सच्चरित्र और पवित्रात्मा हैं, वे शीघ्र ही राम-भक्ति को प्राप्त कर लेते हैं, और जो दुष्ट और विषयी हैं, वे बिना संयम-साधना के तथा साधु-संग के राम-भक्ति को नही प्राप्त कर सकते। हरि-चरणो मे निश्छल प्रेम होना ही जीवन का सार है और यह प्रेम प्राप्त होता है सत्सग से। जब तक इस मानसरोवर मे स्नान न कर लिया जाय तब तक उसके भय-ताप की शांति नही होती—

'सोई सादर सर मज्जनु करई।
महाघोर त्रय ताप न जरई ॥'

आगे रूपक को जारी रखते हुए तुलसी कहते हैं कि इस मानस-सरोवर से कीर्ति रूपी सरयू निकल कर राम भक्ति रूपी गंगा मे मिलती है। राम-लक्ष्मण ने युद्ध मे जो पवित्र यश प्राप्त किया, वह महानद सोत है, वह भी इसमें आ मिलता है। इस प्रकार यह त्रिधारा रूपी नदी राम-स्वरूप रूपी समुद्र की ओर प्रवाहित हो रही है। जो कोई इस पवित्र नदी मे स्नान कर लेता है, उनके सब पाप, ताप और दोष मिट जाते हैं। इसके जल का पान करने से—

मिटहिं पाप परिताप हिए तें'

इस प्रकार तुलसी ने 'मानस' का बडा भारी माहात्म्य बताया है।

प्रश्न ९—'बालकाण्ड' के आधार पर तुलसी के धार्मिक विचारों का विवेचन करते हुए यह बतलाइए कि वे किस मत को मानने वाले हैं?

उत्तर—तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' मे और अन्यत्र भी जिस धर्म का उल्लेख किया, है वह वेद-विहित लोक धर्म है, वह नाना-पुराण-निगमा-

गम सम्मत है। वह इतना व्यापक और विस्तृत है कि उसमे सभी मत-मतान्तर एवं सम्प्रदाय पारम्परिक वैर-विरोध की भावना त्याग कर समा जाते हैं। तुलसी ने हरि-भक्ति पथ चलाया, जिसके अनुसार अधम से अधम भी राम का नाम लेकर मुक्त हो सकते है। तुलसी ने निर्गुण और सगुण के बीच कोई तात्विक अन्तर नही माना। निर्गुण ही भक्तो के प्रेम-वश सगुण रूप धारण कर लेता है। तुलसी ने नाम को राम से भी बडा बताया, क्योकि नाम मे नामी मे अधिक शक्ति होती है।

तुलसी राम-भक्त थे। उन्होने भक्ति का पथ प्रशस्त किया और छल छद्म-रहित राम-भक्ति मे लीन होना ही धर्म माना, किन्तु यह भक्ति बिना ज्ञान के उत्पन्न नही होती और ज्ञान बिना गुरु के नही मिलता इसलिये तुलसी ने गुरु को विधाता से भी बढकर माना है—

'राखेउ गुरु जो कोप विधाता।
गुरु विरोध नहिं कोउ जग-त्राता॥'

तुलसी के विचारानुसार भक्ति और प्रेम मे भी कोई तात्विक अन्तर नही है। भक्ति मे अनन्य प्रेम की निष्ठा का ही तो महत्व है। इसी प्रकार तुलसी ने भक्ति और ज्ञान दोनो को महत्व दिया है और दोनो को सापेक्ष मानते हुए दोनों को मोक्ष प्राप्ति का साधन बताया है। स्वय भक्त होते हुए भी तुलसी ने कभी ज्ञान कर्म या उपासना का विरोध नही किया। वे कहते हैं—

'ज्ञानहिं भक्तिहिं नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव सम्भव खेदा॥'

इस प्रकार तुलसी ने भक्ति, ज्ञान और कर्म मे समन्वय स्थापित कर दिया।

तुलसी ने धर्म के बाह्य स्वरूपो को भी मान्यता दी है, उन्होने व्रत, उपवास, पूजा-पाठ, तिलक, छापा आदि मे भी आस्था प्रकट की है। वे वर्ण-व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था मे भी विश्वास रखते हैं। तुलसी की भक्ति वास्तव मे श्रुति-सम्मत और विरति-विवेक से युक्त है।

तुलसी ने किस मत का अवलम्बन किया, यह कहना कठिन है क्योंकि तुलसी का ध्येय मत-मतान्तरों के चक्कर में न पड़कर धार्मिक जगत में एकता स्थापित करना था। तुलसी के समय में धार्मिक क्षेत्र में सबसे अधिक अशान्ति थी। शाक्त, शैव और वैष्णव परस्पर एक-दूसरे के इतने विरोधी थे जितने कि हिन्दू और मुसलमान आपस में थे। निम्न श्रेणी के मानव ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक के गुरु बन रहे थे, जैसा कि तुलसी ने 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड में लिखा है—

'बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम तें कछु घाटि ?
जानहिं ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि देखावहिं डाँटि ॥'

ऐसी विषम परिस्थितियों में तुलसी ने हिंदू-धर्म का वह निर्मल स्वरूप, जो सर्वमान्य हो और सर्व-सुखकर हो, प्रतिष्ठित करने का बीड़ा उठाया और जो दम्भ पाखंड और द्वेष का नाश कर धार्मिक जगत् में सच्ची शान्ति स्थापित करे। सम्भवतः तुलसी ने इसी उद्देश्य से 'रामचरितमानस' का निर्माण किया, जो हिंदू-धर्म का प्राण है। राम-भक्ति के बल पर तुलसी आत्मोन्नति के उस धरातल पर जा पहुँचे थे जहाँ से वे विभिन्न मतों, सिद्धान्तों और वादों को एक ही लक्ष्य पर पहुँचने के विभिन्न मार्ग समझते थे। तुलसी का हृदय उदार और विशाल था, उन्होंने समन्वयात्मक बुद्धि से काम लिया, विरोध किसी से भी प्रकट न किया।

तुलसी ने ब्रह्म का निरूपण अद्वैतवादियों की तरह किया है, वे उसे अज, अरूप, अनीह, अविनाशी आदि मानते हैं, साथ ही सर्व-व्यापक भी। वे उन्हीं की तरह जड़-चेतन जगत् को राममय मानते हैं—

"जड़-चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि ।
बन्दउँ सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि ॥"

वे अद्वैतवाद के इस सिद्धान्त को भी स्वीकार करते हैं कि माया के कारण ही जीव अपने को ईश्वर से भिन्न मानने लगता है, परन्तु यदि वह अज्ञान रूपी माया का नाश करदे तो फिर वह एक-रूप हो जाय, उसमें और ईश्वर में कुछ भी भेद नहीं रहे। किन्तु तुलसी का मायावाद शङ्कर के माया-

वाद से भिन्न हैं। शङ्कर के अद्वैतवाद के अनुसार माया मिथ्या भ्रम के अतिरिक्त कुछ भी नही है जबकि तुलसीदास ने माया के दो भेद माने है—अविद्या और विद्या। विद्या रूपी माया ही ईश्वर की प्रेरणा मे ससार की रचना करती है। तुलसी की यह माया-सम्बन्धी व्याख्या विशिष्टाद्वैत के अनुसार है। किंतु साथ ही तुलसी ने शुद्धाद्वैत के इस सिद्धान्त को भी स्वीकार किया है कि जीव ईश्वर के अनुग्रह से ही उसके स्वरूप को समझ सकता है। साथ ही, वे जीव और ईश्वर मे भेद भी मानते है—

'जीव अनेक, एक श्रीकन्ता।
पर-वश जीव, स्ववस भगवन्ता॥'

किन्तु वे विशिष्टाद्वैत के अनुसार जीव को ईश्वर का अंश भी मानते है—

'ईश्वर अंश जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी॥'

इस तरह तुलसी किसी एक वाद के नही चिपके, प्रत्युत उन्होंने अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और शुद्धाद्वैत तीनो का समन्वय करने का प्रयत्न किया है।

तुलसी ने भक्ति-पथ को सबसे सरल बताया है, क्योंकि ज्ञान मे व्यक्ति-विशेष को स्वय अपने बल पर चलना पडता है जबकि भक्ति मे भक्त की रक्षा का सब भार भगवान् पर रहता है। तुलसी ने जिस भक्ति का निरूपण किया है, वह न कर्म से निवृत्त होती है और न ज्ञान की उपेक्षा करती है—वह एकातिक नही है। उसमे कर्म, ज्ञान और भगवत्प्रेम तीनो का समन्वय है। साथ ही उसमे लोक-पक्ष को भी नही छोडा गया है।

इस तरह तुलसी ने अपनी समन्वयात्मक बुद्धि से धार्मिक सूत्रो को एक मे बाँधने का प्रयत्न किया और अपने को किसी एक मत या सिद्धान्त से सम्बद्ध न रखकर अपने धार्मिक दृष्टिकोण को विशाल रखा। साराश यह है कि तुलसी राम के अनन्य उपासक है, परन्तु उनकी आस्था सब पर है और कम से कम वे विरोध तो किसी से भी प्रकट नही करते।

प्रश्न १०—'बालकाड' के आधार पर तुलसी के इस कथन की सत्यता सिद्ध कीजिए—

'ब्रह्म राम तें नामु बड'

उत्तर—तुलसी ने राम की अपेक्षा राम के नाम को अधिक महत्व दिया है—'बन्दउँ नाम राम रघुवर को'। कारण यह है कि तुलसी के राम साधारण राम (केवल दशरथ-पुत्र) नहीं हैं, वे 'विधि, हर विष्णु नचावन हारे' हैं। किंतु तुलसी ने नाम को महत्व इसलिए दिया है कि नाम वेदों का प्राण है, वह निर्गुण भी है और गुणों का भंडार भी—

'विधि हरि हर मय वेद प्रान सो।
अगुन अनूपम गुन निधान सो॥'

राम का नाम महामंत्र है जिसे शिव दिन-रात जपा करते हैं। नाम की महिमा गणेशजी और वाल्मीकि जानते हैं—

'महिमा जासु जान गन-राऊ।
प्रथम पूजि अत नाम प्रभाऊ॥
जान आदि कवि नाम प्रतापू।
भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥'

तुलसीदास नाम और नामी में ऐसा ही अन्तर मानते हैं जैसा स्वामी और सेवक में होता है। नाम के पीछे नामी चलता है। तुलसीदास के रूप को भी नाम के ही अधीन बताया है, क्योंकि बिना नाम के न रूप की पहचान होनी है और न गुण की। सगुण और निर्गुण के बीच में नाम ही सुन्दर साक्षी है, वही दुभाषिया है—

'अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी।
उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी॥'

नाम की बड़ी महिमा है। नाम जप कर योगी और विरक्त जन ब्रह्म-सुख का अनुभव करते हैं। चार प्रकार के भक्त हैं, उन सब के लिए नाम ही आधार है। चारों युगों और चारों वेदों में नाम का ही प्रभाव है, परन्तु कलियुग में तो नाम को छोड़ कर दूसरा कोई साधन ही नहीं है जिससे उद्धार हो सके। तुलसी ने नाम को निर्गुण और सगुण दोनों से बड़ा बताया है, क्योंकि ये दोनों नाम के वश में हैं। इन दोनों का जानना कठिन है, परन्तु नाम से दोनों ही सुगम बन जाते हैं। ब्रह्म (निर्गुण) एक है, व्यापक है, अविनाशी है—वह अगोचर है। परन्तु नाम का निरूपण करके यत्न करने से वह

इस तरह प्रकट हो जाता है जैसे रत्न का नाम जानने से उसका मूल्य । सगुण राम से भी नाम बडा है, क्योकि राम ने तो अहल्या, शबरी, जटायु आदि कतिपय भक्तो का ही उद्धार किया है, परन्तु नाम ने न जाने कितने पतितो की नैया पार लगा दी । राम ने कुछ ही भक्तो के दु ख-दोषो को दूर किया होगा, परन्तु नाम ने असख्य भक्तो के दु ख-दोषो का अन्त कर दिया । इस प्रकार तुलसीदास ने नाम को निर्गुण और सगुण दोनो से बडा बताया है ।

नाम वरदान देनेवालो को भी वर देनेवाला है । इसीलिए तो शिवजी ने सौ करोड रामचरित्र मे राम-नाम को सार-रूप वतलाया है । राम-नाम की वडी महिमा है—यहाँ तक कि स्वय राम भी नाम के गुणो का वर्णन नही कर सकते—'रामु न सकइ नाम गुन गाई ।' नाम का महत्त्व इस कलिकाल मे तो बहुत ही अधिक है, क्योकि—

"नाम काम-तरु काल कराला
सुमिरत समन सकल जग जाला
नहिं कलि करम न भगति विवेकू
राम नाम अवलम्बन एकू

देव फाइन आर्ट प्रेस, जयपुर-३